॥ ओ३म् ॥

विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

आर्य

प्रकाशक : राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा
आर्य समाज भवन, शिवाजी कॉलोनी, रोहतक, हरियाणा

आर्य



राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा



राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा

प्रकाशकः

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा

E-mail : arya@aryanirmatrisabha.com
Web : www.aryanirmatrisabha.com

'आर्य'

संस्करण- प्रथम- ५,०००

संस्करण- द्वितीय- १०,०००

मूल्य : ₹ १००/-

सृष्टिसंवत्-१,९६,०८,५३,१२४

कार्तिक कृष्ण, अमावस्या २०८० वैक्रमाब्द

तदनुसार १३ नवम्बर २०२३

दीपावली पर्व (ऋषि दयानन्द बलिदान दिवस)

स्वत्वाधिकार - राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा

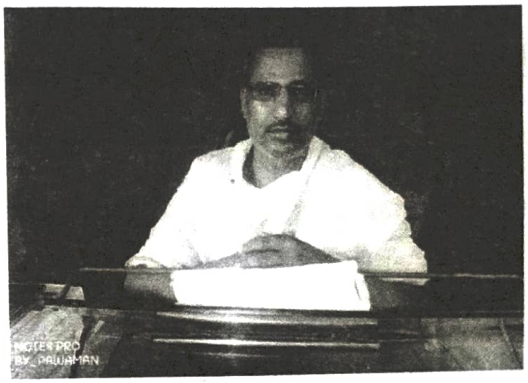
आर्य समाज भवन, शिवाजी कॉलोनी,

रोहतक, हरियाणा- १२४००१

मुद्रक : आर्यावर्त्त प्रैस

-- निवेदन --

आत्मीय बन्धुओं एवं भगिनियों!



आचार्य हनुमत् प्रसाद

आप सभी ने **पूज्य पं० परमदेव मीमांसक जी** द्वारा लिखित पुस्तक **'समाज'** पढ़ी होगी, अब **'आर्य'** यह पुस्तक आपके हाथों में है, आर्य एवं आर्या से सम्बन्धित वर्त्तमान कालिक जो भी प्रश्न कार्य क्षेत्र में सम्मुख आये हैं, उन सभी प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में है, पुस्तकें आर्य जगत में एवं साहित्य जगत में प्रति वर्ष सहस्रों की संख्या में लिखी जाती हैं, कुछ प्रसिद्धि के लिए, कुछ शौक के लिए, कुछ धनार्जन के लिए, कुछ काल्पनिक, कुछ पौराणिक, कुछ शास्त्रीय, कुछ पिष्टपेषण तो कुछ नवीन शोधों पर आधारित होती हैं। सोशल मीडिया के इस काल में तो प्रत्येक व्यक्ति ही लेखक है। किन्तु प्रथम प्रयोग अर्थात् कार्य क्षेत्र में प्रत्यक्षीभूत और तदुपरान्त लेखन, **यह इस पुस्तक का वैशिष्ट्य है।** आचार्य श्री ने अपने महनीय तप, त्यागपूर्ण जिस कार्य साधना को पिछले सत्रह वर्षों में अहर्निश जिया है, पग-पग पर जिसके लिए मान-अपमान, स्नेह-तिरस्कार, स्तुति-निन्दा (गालियाँ) आदि सभी कुछ सहा है, उस परम पवित्र एवं पुण्यदायी कार्य को यदि कम से कम अक्षरों में अभिव्यक्त करना हो तो उसको **'आर्य'** ही कहा जाएगा। जो ऋषिवर दयानन्द जी की उत्कट अभिलाषा के अनुरूप मानव मात्र को **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ...'** आर्य बनाते हुए ही उद्दीप्त हो रहा है।

आचार्य प्रवर जिस विधा से कार्य करते व करवाते हैं, वह भी अपूर्व है, वर्णाश्रम धर्म की पुनर्स्थापना के लिए जो प्रयोग उनके द्वारा किए जा रहे हैं, वे सभी बहुधा आर्य जनों की भी पकड़ में नहीं आ पाते, जबकि स्थूल रूप से दिखाई देते हैं, तब फिर संगठन संरचना के सूक्ष्म तत्वों को जान पाना तो अतीव दुष्कर है। ऐसा अनुभव इस **'आर्य'** पुस्तक के लेखनोपरान्त हम सभी

आचार्यगणों के सम्मुख आया जब आचार्य श्री ने अपना पूर्ण परिश्रम कर मुद्रण से पूर्व पुस्तक को **'आचार्य परिषद्'** के सम्मुख रखा, लगभग चौबीस घंटो की बैठकों में सम्पूर्ण पुस्तक पर विशुद्ध चर्चा सम्पन्न होने के उपरान्त ही मुद्रण योग्य मानकर आत्मार्पित एवं लोकार्पित करने हेतु प्रकाशनार्थ भेजा गया। यह एक ऐसी परम्परा का वरण था जो कभी सत्ववृत्ति सम्पन्न ऋषियों के काल में रही होगी। वर्त्तमान में तो इस परम्परा का दिग्दर्शन कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। और इसी के साथ यह निश्चित हो गया कि- भविष्य में 'आर्य महासंघ' के अनुषांगिक संगठनों में राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा, राष्ट्रीय आर्य संरक्षिणी सभा, राष्ट्रीय आर्य क्षत्रिय सभा, राष्ट्रीय आर्य छात्र सभा, राष्ट्रीय आर्यराज सभा, आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य गुरुकुल महाविद्यालय, आर्या गुरुकुल महाविद्यालय, पाणिनि अनुसंधान संस्थान, आर्य समाज आदि के जो भी आर्य, उपदेशक, प्रवक्ता एवं आचार्य पुस्तक लेखन करेगें उन्हें उस पुस्तक को 'आर्य विद्या सभा' के सम्मुख प्रस्तुत करना होगा, जब **'आर्य विद्या सभा'** पुस्तक को आवश्यक व योग्य मानेगी तभी उसका मुद्रण होगा। स्वेच्छा से पुस्तक लिखने व प्रकाशित करने की स्वच्छन्दता किसी को भी न रहेगी। हम सभी देख ही रहे हैं कि ऋषिकृत् ग्रन्थ ही सर्वोपरि हैं, उन्हीं ऋषिप्रोक्त सिद्धान्तों के यथावत् प्रकाशनार्थ प्रवचन- लेखन आवश्यक है। **'आचार्य परिषद्'** ने उसी पवित्र भावना से युक्त होकर यह **'आर्य-आर्या'** पुस्तक आत्मार्पित एवं लोकार्पित की है। सभी आर्य/आर्या इसका समुचित पठन करके ऋषि निर्दिष्ट आर्यपथ पर इतोपि दृढ़तम रीति से संगठित रहते हुए आगे बढ़ेंगे। यही प्रार्थना है। इत्योम् शम् ।।

-ऋषि पथानुगामी

हनुमत् प्रसाद

आचार्य हनुमत् प्रसाद
अध्यक्ष,
आर्य महासंघ, आर्यावर्त

-- प्राक्कथन --



आर्य समाज के मन्तव्यों से सहमत सज्जन समझ सकते हैं कि 'आर्य' समस्त विश्व के मनुष्यों के लिए अति उत्तम उपाधि है। 'आर्य' किसी भी भाषा का सबसे सुन्दर विशेषण है। 'आर्य' जाति ही यथार्थ में मनुष्य कहलाने की योग्यता रखती है। हमारे देश का प्राचीन इतिहास इसका साक्षी है। परन्तु यहां प्रश्न उठता है कि ऐसे 'आर्य' की पहचान क्या है? कैसे उसकी जांच परख की जा सकती है? अमुक व्यक्ति 'आर्य' है या नहीं- इसका प्रमाण कौन देगा? उसके गुण, कर्म, स्वभाव, व्यवहार इस आर्यत्व का मापदंड हैं या कोई सार्वदेशिक/प्रतिनिधि सभा इसका निर्णय करेगी? क्या यह योग्यता अनुवांशिक है या इसे अर्जित किया जा सकता है? वो कौन से सिद्धांत हैं जो किसी भी सामान्य जन को श्रेष्ठता की ऊंचाइयों तक पहुंचा सकते हैं? क्या 'आर्य' सदैव संगठित रहता है या स्वच्छंदता उसका जन्म सिद्ध स्वभाव है? क्या वेद की आज्ञा- 'संगच्छध्वं .....' केवल पाठ मात्र के लिए है या इसका पालन भी करना चाहिए?

वर्तमान में आर्य समाज की स्थिति हमें पुकार रही है कि हम इन प्रश्नों पर अवश्य विचार करें। ऐसा लगता है कि अधिकांश आर्य समाज के सदस्य व पदाधिकारी इन प्रश्नों के उत्तर से या तो अनभिज्ञ हैं या फिर निश्चय से भ्रमित हैं। 'संशयात्मा विनश्यति' - इस कारण से वो आर्य समाज, जिसे सारी मानव जाति का आर्यकरण करना था, आज वो अपने अस्तित्व के संकट से जूझ रहा है। ऋषि दयानंद के अदम्य साहस, पुरुषार्थ, त्याग, बलिदान और उनकी वेद विद्या से आप्लावित यह 'आर्य समाज' नामक पवित्रतम संगठन आज अपनी अंतिम सांस गिन रहा है। उद्धार की बाट जोह रहा है। प्रत्येक प्रबुद्ध

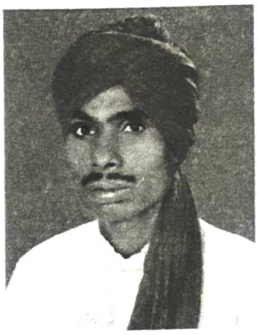
आर्य जन अत्यंत चिंतित हैं। जिज्ञासु समाधान ढूंढ रहे हैं। हम सभी भी प्रयत्नशील हैं।

सौभाग्य से सांगोपांग वेद विद्या के अनुपम विद्वान् 'पं० परमदेव मीमांसक' जी को कोटि कोटि नमन कि उन्होंने 'आर्य' इस पुस्तक के माध्यम से इस विषय पर हम सब का मार्गदर्शन किया है। पराधीनता के काल खण्ड में कभी वीर सावरकर ने कहा था कि यह आर्य समाज वो संस्था है जिसने हिन्दुओं के ठण्डे रक्त में उष्णता भर दी है। इस आर्य समाज के फैलाव के कारण से ही देश गुलामी की जंजीरों को तोड़ पाया। कुछ वर्ष पूर्व तक विद्वत् जन इसी आर्य समाज की स्थिति की समीक्षा कर कहते थे कि इसकी तो अब अंत्येष्टि भी हो चुकी है। वो कौन सी गड़बड़ी, गलत अवधारणाएं, प्रक्षेप या आलस्य प्रमाद इस परिस्थिति के कारण हैं ? यह 'आर्य' पुस्तक इन सब परिस्थितियों की विवेचना कर हमें वेद विद्या और तर्क से युक्त समाधान प्रस्तुत कर रही है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इससे आर्य जाति के ठण्डे पड़ चुके रक्त में निश्चित ऊष्णता का संचार होगा। इसे पढ़ और समझ कर आर्य भावना वाले लोग नवजीवन को प्राप्त कर सकते हैं। तब यह बिखरा हुआ आर्य समाज संगठित हो विश्व में पुनः अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सकता है। बस आवश्यकता है गम्भीरता व सकारात्मक भाव से इस पुस्तक के एक-एक वाक्य को पढ़ने, समझने और उस पर चलने की। इसी आशा और विश्वास के साथ 'पं० परमदेव मीमांसक' जी को आभार व्यक्त करते हुए यह पुस्तक 'आर्य' आप को समर्पित है।

जितेन्द्र आर्य

- आचार्य जितेन्द्र आर्य
केन्द्रीय अध्यक्ष,
राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा

मन की बात.....



इस देश के मूल निवासी शूद्र हैं क्योंकि शूद्र आर्य है। शूद्र को आर्य से अलग मानने वाला महामूर्ख है, ऐसे व्यक्ति न तो कभी इतिहास पढ़ते और न वेद-शास्त्रों का अध्ययन करते हैं । केवल इधर-उधर की सुनकर गलत धारणाओं में जीवन बिता देते हैं। बहुत ही चालाकी के साथ वामपंथी लोग आर्यों के प्रति जहर घोलने में दिन-रात लगे रहते हैं,फिर भी आज तक यह सिद्ध नहीं कर पाये कि आर्य बाहर से आये थे।

वास्तव में आर्य कौन है? एक आर्य क्या सोचता है? क्या मानता है ? क्या नहीं मानता? यह सब इसी पुस्तक का मुख्य विषय है। पुस्तक के लेखक वेदों के परम विद्वान् आचार्य परमदेव मीमांसक जी ने सैकड़ों पुस्तकों का अध्ययन करके ,निस्वार्थ जीवन यापन करके और लाखों लोगों को सत्य सिद्धान्तों का बोध करवा कर यह सिद्ध कर दिया है कि आर्य कोई जाति का नाम नहीं है, आर्य कोई सम्प्रदाय नहीं है, आर्य कोई काला गोरा नहीं होता, आर्य कोई वंश परम्परा नहीं है, केवल श्रेष्ठ गुणों को अपने जीवन में धारण करने वाला व्यक्ति ही आर्य होता है।

वेद-शास्त्रों और इतिहास में हजारों प्रमाण उपलब्ध है कि एक शूद्र का पुत्र भी विद्या पढ़कर ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य बन सकता है तथा एक ब्राह्मण का पुत्र भी विद्या हीन होने पर शूद्र आदि वर्णों को प्राप्त हो जायेगा। इस व्यवस्था को राजा और समाज के लोगों ने मिलकर करोड़ों वर्षों तक धरती पर चलाया है । दुर्भाग्य से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व महाभारत का युद्ध हुआ और कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था का स्थान जन्म जात वर्ण

व्यवस्था ने ले लिया है। जो शूद्र शब्द सेवक और विद्वान् के सहयोगी के रूप में प्रयोग किया जाता था, उसी शूद्र शब्द को नीच, गुलाम, अछूत अर्थ में प्रयोग किया जाने लगा। उनको विद्या पढ़ने से रोका गया, छुआछूत का व्यवहार किया गया और अनेक प्रकार के अत्याचार भी किये गए। राजाओं की फूट का लाभ स्वार्थी और नामधारी ब्राह्मणों ने उठाया। उसके बाद विदेशी लोगों ने आर्य और शूद्र के बीच और भी ज्यादा जहर घोलने का काम किया है।

आज हम सबका सौभाग्य है कि हम फिर से गर्व के साथ अपने आपको आर्य कह सकते हैं, विद्या पढ़कर योग्यता अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बन सकते हैं। और जो भाई बहन विद्या नहीं पढ़ सकते हैं वे भी श्रेष्ठ गुणों के कारण आर्य ही कहलायेंगे। आज भी करोड़ों दलितों में श्री राम और श्री कृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा भरी हुई है, आज भी उनके घरों में हवन के समय वेद मन्त्रों का पाठ होता है, इसलिए आओं अपने पूर्वजों का जीवन फिर से अध्ययन करें । राष्ट्रीय दलितोद्धारिणी सभा द्वारा आयोजित बोध शिविरों में भाग लेकर ईश्वर, वेद, आत्मा, पुनर्जन्म, भूत-प्रेत, शाकाहार-मांसाहार आदि अनेक विषयों पर प्रमाण सहित जानने का प्रयास कीजिए। जीवन अनमोल है, इसको व्यर्थ की बातों में नष्ट न कीजिए। यदि आप सचमुच अपने परिवार और अपने समाज का भला चाहते हैं तो आचार्य जी द्वारा लिखित इस पुस्तक को कम से कम तीन बार निष्पक्ष भाव से अवश्य अध्ययन कीजिए। निश्चित रूप से आर्य के विषय में सम्पूर्ण भ्रान्ति समाप्त हो जायेगी। हम सब ऋषि दयानन्द और आचार्य जी जैसे महान विद्वानों के सदैव ऋणी रहेंगे। धन्यवाद। आ. वर्चस्पति

आचार्य वर्चस्पति
राष्ट्रीय दलितोद्धारिणी सभा

॥ ओ३म् ॥

इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो ऽराव्णः।
सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः। इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः ॥

-ऋग्वेद । ९ । ६३ । ५-६ ।

अन्वयः- अप्तुरः इन्द्रं वर्धन्तः, बभ्रवः विश्वम् आर्यम् कृण्वन्तः, सुताः अराव्णः अपघ्नन्तः, इन्दवः इन्द्रं गच्छन्तः स्वम् रजः अन्वाभ्यर्षन्ति ।।

पदार्थ- (**अप्तुरः**) प्रजा, (**इन्द्रं**) समर्थ बालक/युवा को, (**वर्धन्तः**) गुरुकुल में विद्या वृद्धि/ग्रहण हेतु लेकर आते हैं, (**बभ्रवः**) आचार्य/विद्वान् गण, (**विश्वम्**) उन सभी को, (**आर्यम्**) आर्य, (**कृण्वन्तः**) बनाते हैं, (**सुताः**) विद्या से सम्पन्न आर्य, (**अराव्णः**) अधर्मियों/दुष्टों का, (**अपघ्नन्तः**) संहार करते हैं, (**इन्दवः**) लक्ष्ययुक्त आर्यजन, (**इन्द्रम्**) राजा/शासक को, (**गच्छन्तः**) प्राप्त होते हैं, (**स्वम्**) अपने, (**रजः**) लोक/राष्ट्र को, (**अन्वाभ्यर्षन्ति**) पश्चात् अच्छी तरह से प्राप्त करते हैं।

भावार्थ- प्रजा अपने समर्थ युवक वा बालकों को आर्य विद्या की वृद्धि कराने अर्थात् प्राप्ति कराने के लिए गुरुकुल में लेकर आते हैं, तब आचार्यगण उन्हें आर्य विद्या दे आर्य बनाते हैं, आर्य बनने के बाद वे अधार्मिकों अर्थात् दुष्टों का संहार करते हैं, उद्देश्य युक्त होकर वे आर्यजन अपना राजा बनाते हैं वा शासक चुनते हैं। यह तभी सम्भव है जब वे पूर्ण समर्थ/बहुसंख्यक हों। तब वे राज्य व्यवस्था के उपरान्त अपने राष्ट्र का निर्माण करते हैं अर्थात् आर्यावर्त्त बनाते हैं। **वर्धन्तः, कृण्वन्तः, अपघ्नन्तः, गच्छन्तः** यह अनवरत कार्य के लिए है, यह सतत् पुरुषार्थ है, तभी राष्ट्र बनता और स्थिर रहता है।

॥ ओम् ॥

॥ आर्य ॥

सृष्टि के प्रारम्भ से ही वेदज्ञान से सम्पन्न **आर्य** रहे हैं। **आर्य** कहते ही हैं- वेदविद्या से सम्पन्न को। आर्य वैदिक सिद्धान्तों को जानता है, मानता है और धारण करता है। सृष्टि के आदि में चार ऋषियों से वेद ज्ञान मिला। पुनः जब इनको अनेकों ने सुना, जाना, धारण किया तब वे भी ईश्वर के संविधान को जान इन सिद्धान्तों पर चलने लगे, जिस युवा ने चारों वेदों को एक साथ धारण किया वह ब्रह्मा कहलाया। शब्द, अर्थ और ज्ञान सहित ही वेद प्राप्त हुये थे। वही आगे-आगे लोग जानते गये, उसके अनुसार चलते गये और आर्य कहलाये। आर्य संज्ञा अर्थात् वैदिक सिद्धान्त युक्त व्यक्ति का नाम भी है और आर्य अर्थात् श्रेष्ठ गुण का भी वाचक है। श्रेष्ठ उसी को कहते हैं जो आर्य है, यह श्रेष्ठ का पर्यायवाची बन गया। जो वैदिक सिद्धान्तों को नहीं माने वे आर्य से पृथक् अनार्य कहलाये। आर्य अर्थात् बुद्धिमान-विद्यावान और जो विद्या से-आर्योचित गुणों से पृथक् थे, वे अनार्य-अनाड़ी कहलाने लगे। धीरे-धीरे ये पृथक्-पृथक् बसने भी लगे, इनमें से जो बुद्धिमान हो जाते वे फिर आर्य बने और जो आर्यदेश में अनाड़ी रह गये वे पृथक्-पृथक् होने लगे। यह भी लगातर चलता रहा है। इनमें परस्पर युद्ध भी होते रहे हैं परन्तु अनार्यों की एक यह आकांक्षा अवश्य रहती थी कि वे भी विद्या ग्रहण कर आर्य बने और बनते भी थे, अन्य अनार्य लोग भी नियम प्रथा आदि आर्यों का अनुकरण कर बनाते थे परन्तु विद्या की कमीवश न्यून विद्या होने से सही भी हो जाता था और गलत भी। आर्यदेश से विद्वान् भी जाकर उसका सुधार करते रहते थे। संसार भर की प्राचीन वा अर्वाचीन जातियों के रीति-रिवाज, प्रथाएं, परम्परा, विधान, ज्ञान, विज्ञान आदि का सूक्ष्मता से अवलोकन करें तो यह ज्ञानतन्तु आबद्ध

मिलते हैं जैसे संसार भर की भाषा और बोलियों को विश्लेषित किया जावे तो उनमें संस्कृत भाषा और इसका ध्वन्यात्मक सम्बन्ध अनुस्यूत मिलता है। लाखों वर्षों के काल-खण्ड, अज्ञानता तथा शिक्षाहीनता के कारण वे नये-नये शब्द प्रतीत होते हैं परन्तु उनमें भी संस्कृत मुख्यत: वैदिक कालीन संस्कृत अर्थात् ३-४ हजार वर्ष पूर्व की संस्कृत के शब्द और ध्वनि समूह गुंथे मिलते हैं, विश्वभर की लिपियों में ये कालखण्ड में बदलती रहीं हैं, यहाँ संस्कृत की लिपियों में भी जैसे ब्राह्मी, अक्षर, ... देवनागरी आदि, संसार में भी इनमें भिन्नताएं हैं, की जाती रहेंगी, पूर्व में भी थी। परन्तु इनमें विभेद होने पर भी ज्ञान तो वेद का ही था। किसी लिपि में अभिव्यक्ति की ज्यादा सामर्थ्य थी, किसी में कम। परन्तु श्रुति परम्परा होने से वेद ज्ञान अक्षुण्ण बना रहा और है। वैदिक सिद्धान्तों को जानने के लिए ही शिक्षण व्यवस्था थी क्योंकि **वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।** अर्थात् शिक्षा वेद केन्द्रित थी, वेद ज्ञान को प्राप्त करने के लिए अध्ययन होता था, क्योंकि इसी के ज्ञान से **कर्तव्य बोध, जीवन यापन, राज्य व्यवस्था** और **ईश्वर साक्षात्कार** होता था। फिर इसी की- वेद की और वेदविद्या की भी शाखायें और प्रशाखायें पठन-पाठन में थी, उन विद्याओं के विशेषज्ञ भी होते थे परन्तु यह एक सामान्य शिक्षा पद्धति थी कि वेद ज्ञान हेतु उस ज्ञान को समझने के लिए- वहाँ तक पहुंचने की योग्यता हेतु विद्या का पढ़ना सभी के लिए अनिवार्य था, उसके उपरान्त विभिन्न-विभिन्न विद्याओं के विशेषज्ञ बनते थे। उसी से जाने पहचाने जाते थे, जैसे वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, गणितज्ञ आदि। यह व्यवस्था कुछ-कुछ अंग्रेजों के आने तक बनी रही थी। परन्तु अंग्रेजों ने सुनियोजित ढ़ंग से इस परम्परा को तहस-नहस कर दिया, आज हम इसकी कल्पना भी मुश्किल से कर सकते हैं, इसका एक उदाहरण देता हूँ- आयुर्वेद शास्त्र के शल्य चिकित्सा को ऐसा समाप्त किया कि हम आज आयुर्वेदिक पद्धति से आंख की शल्य

चिकित्सा को सोच भी नहीं सकते हैं। शोध-चिकित्सा यन्त्र का निर्माण इन आयुर्वेद के ग्रन्थों एवं कुशल वैद्यों से सीखकर आगे बढ़ाया और इन प्राचीन पद्धति को निकृष्ट और हेय बना दिया, कुछ क्षेत्रों में जो वैद्य सूक्ष्मतम कुशल शल्य क्रिया करते थे, वे शाकल द्वीपी कहलाते थे, उनके प्रति ऐसा वातावरण बना दिया कि लोग उनके हाथ का पानी भी नहीं पीते थे, धीरे-धीरे तिरस्कार, वितृष्णा, अभाव और षड्यन्त्रों से ये समाप्त होते गये, नयी पीढ़ियों ने इसे ग्रहण ही नहीं किया और यह विद्या लुप्त हो गयी, इसका स्थान एलोपैथिक चिकित्सा ने ले लिया, जिनका उपजीव्य आयुर्वेद शास्त्र के ग्रन्थ बने और नवीन चिकित्सकों ने शोध करके विस्तीर्ण किया और आज तलक करते आ रहे हैं। शोध तो हमारे मनीषी भी करते थे, नवीन चिकित्सीय विधा वे भी अपनाते थे। परन्तु विद्या बचती तो तभी जब आगे की पीढ़ियों में स्थानान्तरित हो।

आर्य बनते थे वेदविद्या को पढ़कर ही, वेदविद्या का पठन-पाठन घटा तो नाममात्र के आर्य रह गये, अवैदिक सिद्धान्तों के मिश्रण होने पर भी वे आर्य कहलाते रहे, क्योंकि शिक्षा का आधार वेद विद्या ही थी। यज्ञों में पशु हिंसा भी होती थी और वे आर्य भी कहलाते थे और इसके लिए मन्त्र वेदों में से ही पढ़ते थे, सम्भवतः भारतवर्ष से बाहर जो वेदविद्या के पठन-पाठन के आधार से वंचित थे, रहित थे, उनका आधार मात्र शब्दज्ञान और जीवनयापन की प्रचलित परम्पराओं के आदान-प्रदान तक सीमित था। भारतवर्ष में जैनियों ने वेदविद्या के आधार को समाप्त कर दिया। परन्तु आश्चर्य है वेद को आधार न मानते हुये भी संस्कृत को रखा। उसका पठन-पाठन किया और करते हैं, बाद में जन सामान्य की भाषा को लेकर प्राकृत भाषा का व्यवहार किया और उसका व्याकरण बनाया। उसी के आस-पास बौद्धों ने संस्कृत को ही पृथक् करके पालि को मुख्य बनाया और माध्यम संस्कृत तथा आधार वेद दोनों को छोड़

दिया, परन्तु जो उच्चताएँ, श्रेष्ठ परम्पराएँ, साधना, पद्धतियाँ उन्हें यथा सामर्थ्य यथामति अच्छी लगी, उन्हें अपनाया और प्रचारित किया; इनकी बढ़ती को देखकर, वेद को केन्द्रित करते हुये पुराण व अन्य ग्रन्थों की रचना हुई, वेद को मात्र केन्द्र में रखा ही है परन्तु व्यवहार-क्रिया में सिद्धान्त वेदविरूद्ध भी माने गये जैसे- मूर्ति पूजा, मृतक पूजा, ... आदि। वेद को आधार मानकर पठन-पाठन जो वेद ज्ञान के लिये था प्रायः समाप्त हो गया। वेद, वेदज्ञान और वैदिक सिद्धान्त के लिये जो व्याकरण, निरूक्त .... आदि; ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् .... कल्प और दर्शन आदि; धनुर्वेद, अर्थशास्त्र आदि था। वह रह ही नहीं गया। फिर हम वेद को मानते हुये भी वैदिक सिद्धान्तों से विमुख होते चले गये, जिसका एक प्रसिद्ध उदाहरण वेदान्त शास्त्र का सूत्र और उसकी व्याख्या है जो उपनिषद् के रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए प्रणयन किया गया था, जिससे इन रहस्यों से अवगत हो सकें। हम वेद मन्त्रों के यथार्थ अर्थ को समझ सकें। लोग समझते हैं कि वेदादि शास्त्र पढ़कर हम उसके नवनीत अर्थात् मक्खन को वेदान्त- उत्तर मीमांसा में पढ़ते हैं, परन्तु जिन अध्येताओं ने शास्त्र एवं उपनिषदों को गम्भीरता पूर्वक पढ़ा है। मुख्यतः छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों को वे समझ जायेंगे कि वेदान्त शास्त्र को ठीक-ठीक पढ़ने के बाद ही हम वेद मन्त्रों का अर्थ ठीक-ठीक समझ सकते हैं और अर्थ कर सकते हैं। परन्तु जब आचार्य शंकर जैसा मनीषी सब कुछ ईश्वर ही मानने लगे, आत्मा और प्रकृति की वास्तविक सत्ता को ही नकार दे और उस प्रत्यक्ष विधा को उपपन्न करने के लिए अपूर्व से अपूर्व तर्क दे-देकर वेदान्त शास्त्र का भाष्य ही अद्वैत बना डाले, तो इन सिद्धान्तों को मानने वाला ठीक-ठीक वेदार्थ को कैसे समझेगा और करेगा, वहाँ तो इन्हीं सिद्धान्तों की प्रतिध्वनियाँ ध्वनित होंगी। जैसे- सायणाचार्य ने कल्प में निर्णीत जो ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित प्रक्रियाओं को नियमन करती है और जिनके निर्णयार्थ पूर्व

मीमांसा का गठन हुआ था, उसी कल्प को आधार मानकर वेदार्थ उसी रूप में किया अर्थात् याग विहित ही प्रधान रूप में बना, सत्यार्थ हुआ ही नहीं। निश्चित रूप से पठन पाठन वेदज्ञान को समझने के लिए था। जब पठन-पाठन के सैद्धान्तिक ग्रन्थ अशुद्ध, असत्य मिश्रित होते गये तो सत्य वेदार्थ असम्भव ही था और यही हुआ। वेद को केन्द्रित कर पठन-पाठन छूटा, वेदज्ञान हेतु पठन-पाठन के ग्रन्थों के सिद्धान्त भी बदल गये तो मत-मतान्तर फैलने ही थे और फैले। पारसी, यहूदी, ईसाई, मुस्लिम आदि सैकड़ों विश्वभर में मत-पन्थ फैले, भारतवर्ष में भी शैव, शाक्त, वैष्णव, तान्त्रिक, चार्वाक जैसे हजारों मत-पन्थ-सम्प्रदाय पनपे। भारतवर्ष में अनेकों मत-पन्थ ऐसे थे और हैं जिन्होंने वेद को अपने ज्ञान के केन्द्र में रखा परन्तु इनके परिज्ञान हेतु दर्शनादि में भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों को मानकर अलग-अलग सम्प्रदाय बनाये हैं और उनके वेदार्थ भी उन्हीं सिद्धान्तों के पोषक रूप बने हैं, उल्टा हो गया, सिद्धान्तों को ठीक-ठीक जानकर वेदार्थ सत्य जानने थे, उन्होंने सिद्धान्त को गलत जानकर वेदार्थ को ही उन गलत सिद्धान्तों के पोषक रुप में लगाने लगे, महद् आश्चर्य है। इसका परिणाम यह हुआ कि वेद को केन्द्रित करके भी अनेकों मत-पन्थ बन गये और मेरा मत सच्चा और अन्यों का झूठा वा मेरा मत सच्चा और तेरा मत भी सच्चा हो गया। फिर तो आर्य के गुण-कर्म भी बदल गये, हम आर्य कहे जाते हुए, कहलाते हुए भी आर्य ही नहीं रहे, धीरे-धीरे हिन्दू बन गये। अब तो न शिक्षा वेद केन्द्रित है, न वेद के पठन-पाठन के सिद्धान्त सुनिश्चित हैं जिससे वेद ज्ञान हो सके और हम बन सकें .....। उन्नीस्वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ऋषि दयानन्द ने ४० वर्षों के अध्यवसाय से इस रहस्य को समझा और इसकी प्रक्रिया का पुनरूद्धार किया। इसकी महत्ता को मात्र इतने से समझ सकते हैं कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कार विधि और सत्यार्थ प्रकाश जैसे तीनों ग्रन्थों में ही इसको लिखा है, वैदिक सिद्धान्तों को

जो वेदार्थ के लिए, जीवन संचालन हेतु आवश्यक थे, जो दर्शन, कल्प, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ आदि में बताये गये थे, दिये गये थे, उनको सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में लिख दिया। व्याकरण का पठन-पाठन जो लौकिक और वैदिक संस्कृत के ज्ञान के लिए अनिवार्य था, उसका भी प्रणयन किया, विधि बतलायी तथा इन्हीं निरुक्त आदि को आधार बनाया और वेदार्थ करना प्रारम्भ किया, परन्तु यजुर्वेद पूरा तथा ऋग्वेद का ३/४ भाग ही भाष्य कर पाये कि छल से उन्हें जहर देकर मार दिया गया। वह महाकार्य अधूरा ही रह गया। वैदिक सिद्धान्तों का परिज्ञान तो सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों में किया ही था, उस कालखण्ड में प्रचलित अवैदिक सिद्धान्तों एवं मान्यताओं का भी खण्डन किया जिससे सत्य सिद्धान्त सुगमता से जाना जा सके। सम्भवतः वेद भाष्य करने के उपरान्त उसके समझने वाले ग्रन्थों का अर्थात् दर्शन, उपनिषद् एवं ब्राह्मण आदि ग्रन्थों का भाष्य भी ऋषि दयानन्द करते परन्तु दुर्दैव! कि इस निधि को प्राप्त करने से हम वंचित हो गये वा वंचित कर दिये गये। परन्तु मैं यहाँ इतना तो कहना ही चाहूंगा कि भले ही ऋषि दयानन्द वेदभाष्य पूरा न कर पाये हों, दर्शन आदि पर भाष्य न बना पाये हों, परन्तु वेदार्थ को समझने एवं जानने हेतु दर्शन एवं उपनिषदादि के सिद्धान्त हमें बतला गये हैं, इसके प्रकाश में हम घनघोर परिश्रम करके शास्त्रों को हृदयंगम कर सकते हैं, पढ़ सकते हैं और पढ़ा सकते हैं। जितना वेदभाष्य कर गये हैं, उसको आधार बना शेष वेदभाष्य समझ सकते हैं। आगे पीढ़ियों को यह ज्ञान दे सुरक्षित और विस्तृत कर सकते हैं, यह उस महामानव की हम पर अतीव कृपा हुई है, इसी उपकार एवं ज्ञान से कृतकृत्य और कृतज्ञ हो हम उन्हें ऋषि दयानन्द कहते हैं। परन्तु दुर्दिन, दुर्भाग्य और दुर्दैव ने हमारा पीछा अब भी नहीं छोड़ा। इन देवतुल्य ऋषि-महर्षि-ब्रह्मर्षि के देहावसान होते ही पुनः छली, कपटी, ठग, धूर्त, स्वार्थी, नास्तिक, पोपलीलकों ने सत्य सिद्धान्तों में

घालमेल करना प्रारम्भ कर दिया और सिद्धान्तों के भिन्न होते ही उन के द्वारा स्थापित आर्यसमाज और उसके सिद्धान्त वाहकों में फूट पड़ती चली गयी जो अद्यावधि चालू है, हम पुनः उसी हजारों वर्षों वाले अन्धविश्वास, अविद्या, अज्ञान और असत्यमिश्रित गहन कुएँ में गिरते चले जा रहे हैं। परमपिता परमेश्वर हम सबको ऐसी सामर्थ्य दे और हम सब मिलकर इतना घनघोर संघर्ष करें कि संगठित होकर इस गहन अन्धकारमय, भयानक, सर्व दुःख नियन्तक कूप से निकल सकें और करोड़ों लोगों को निकालकर आर्य बना सकें अर्थात् उनको भी सत्यपथ का अर्थात् वैदिक मत का अनुगामी बना सकें। इसके लिए एक मात्र प्रकल्प सत्र है, जिनमें ५०० से अधिक वैदिक सिद्धान्तों को सरलतम विधा से बतलाया- सिखाया जाता है। वैदिक सिद्धान्तों के परिज्ञान और हृदयङ्गम के उपरान्त उन्हें विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत देते हैं। तब हम उन्हें आर्य कहते और मानते हैं, पूर्व में इन वैदिक सिद्धान्तों को गुरुकुलों में अधीत और मानकर आर्य होते थे, उस समय गुरुकुलों में विद्या ग्रहण करना राज व्यवस्था से अनिवार्य होता था, क्योंकि आर्य राज व्यवस्था में यह नियम स्वाभाविक होता था। ऋषि दयानन्द ने गुरुकुल खोले और अपेक्षित परिणाम के न आने से बन्द किये। वैदिक सिद्धान्तों का उपदेश दिया, लोग इसे सुन और समझ कर आर्य बने, ऋषि के ग्रन्थों का स्वाध्याय करके भी लोग आर्य बने, पश्चात् में आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन हेतु गुरुकुल खोले गये, उसमे से भी कुछ आर्य बनें, कुछ पौराणिक ही रह गये। स्वाध्याय मात्र से न्यून ही आर्य बनते हैं, क्योंकि इससे ठीक-ठीक सिद्धान्त का परिज्ञान नहीं हो पाता है। सिखाया, पढ़ाया जाना जरूरी है। पश्चात् उसे सुदृढ़ और निश्चित करने हेतु स्वाध्याय अनिवार्य है।

वैदिक सिद्धान्तों के परिज्ञान और पालन करने वाले को आर्य कहते हैं। आर्य के सम्बन्ध में अनेकों किंवदन्तियाँ, धारणा , अन्धविश्वास और

मान्यताएं प्रचलित हैं, जिनका निराकरण जरूरी है और सत्य-सत्य धारणाओं को निश्चित रखना भी आवश्यक है।

आर्य तो वेदों का विद्वान् ही हो सकता है? अन्य सामान्य जन कैसे आर्य कहला सकते हैं?

वेदों के विद्वान् को तो आर्य होना ही चाहिये। वेदों का विद्वान् वैदिक सिद्धान्तों को जानेगा, मानेगा और पालन करेगा, तो वह आर्य ही कहलायेगा। वेद को जानने के बाद उसके सिद्धान्तों को जानकर, मानकर वह आर्य बना है। यदि कोई अन्य व्यक्ति उन्हीं सिद्धान्तों को जानकर, मानकर, पालन करता है तो आर्य क्यों नहीं कहला सकता? आर्य क्यों नहीं हो सकता है? अवश्य होना चाहिये, अवश्य हो सकता है। यदि वेदों का विद्वान् किसी भी कारण से वैदिक सिद्धान्तों को नहीं मानता है तो वह आर्य नहीं है। वैदिक सिद्धान्तों को जानने, मानने और पालन करने वाले ही आर्य हैं।

आर्य की सन्तान ही आर्य हो सकती है, जैसे- आर्य समाजी सदस्यों की सन्तान ही आर्य समाजी होते हैं, अन्य को मानते ही नहीं है?

आर्य की सन्तान ही आर्य कहलाये, यह मध्य (महाभारत के आसपास के) काल से हुआ, पूर्व काल में यह नहीं था। आर्य की सन्तान आर्य बने इसके लिए प्रयास किया जाता था और आशा की जाती थी कि वह आर्य बने, वैदिक सिद्धान्तों को ग्रहण कर, मानकर वे आर्य बनते भी थे, आर्य नहीं भी बन पाते थे। आर्यों में वर्ण व्यवस्था थी। धीरे-धीरे वर्ण व्यवस्था ही जाति व्यवस्था में बदलने लगी और बदल गयी, तब आर्य के बालक आर्य ही कहलाते रहे और माने जाने लगे, वैसा ही विधान बनाने लगे, जिसका परिणाम वेदविद्या का ह्रास और पराभव ही हुआ। आर्य समाजी भी साम्प्रदायी मानसिकता वाले हो गये। भय, पक्षपात और स्वार्थ

के कारण गुण-कर्म और धर्म से आर्य को आर्य ही मानना छोड़ और जिनको वे पसन्द करते हैं वा उनके स्वार्थ पूर्ति में सहायक होते हैं, उन्हें आर्य कहते, मानते और सदस्य बनाते हैं, जैसे हिन्दुओं में यह जाति व्यवस्था जड़मूल आबद्ध हो गयी और इनके पतन के प्रधान कारणों में यह एक मुख्य कारण है, उसी तरह आर्य समाज के पतन में भी यह एक कारण है, यदि आप वैदिक सिद्धान्तों को जानते-मानते और पालन करते हैं तो आपको आर्य बनने के लिए किसी के प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं है। यह नहीं है कि आर्य समाज आपको आर्य कहेगा तभी आप आर्य हैं, नहीं कहते हैं तो आप आर्य ही नहीं हैं, यदि एक स्वार्थी, दम्भी, छली, कपटी, आर्य सिद्धान्त मूढ़, धूर्त, आर्य समाज पर कब्जा किये बैठा हो तो वह आपको आर्य क्योंकर मानेगा, जैसे ऋषि दयानन्द के कालखण्ड में और आज भी हिन्दू आर्य समाजियों को आर्य ही नहीं मानते हैं, पथ भ्रष्ट मानते और प्रचारित करते हैं, उसी का अनुकरण कर पदासीन आर्य समाजी भी वेदों को एवं आर्यसिद्धान्त मानने वाले आर्यों को आर्य ही नहीं मानते हैं, क्या दु:खद समानता है, आश्चर्य है! मात्र सवा सौ वर्षों में ही सुधारवादी संगठन को भी सुधारक की आवश्यकता आन पड़ी है। इसलिए आर्य सिद्धान्तों को मानने वाला आर्य ही है। कोई चाहे माने वा न माने, कोई प्रमाण-पत्र देवे वा न देवे।

क्या आर्य केवल भारतवर्ष-आर्यावर्त्त में ही हो सकता है? अन्य देशों में नहीं? क्योंकि ऋषि दयानन्द ने भी कहा है- और जो इनमें सदा रहते हैं। इनको भी आर्य कहते हैं। म्लेच्छदेशस्त्वत: पर:।

(सत्यार्थ प्रकाश)

आर्य गुणवाची शब्द है, इन गुणों से सम्पन्न को आर्य कहते हैं, जो आर्य सिद्धान्तों को मानते हैं, धारण करते हैं, उनको आर्य कहते हैं, वे चाहे कहीं पर भी क्यों न हों, किसी भी देश के मनुष्य क्यों न हों, आर्यावर्त्त को

आर्यराजा एवं आर्यों ने बसाया था, आर्य सिद्धान्तों- आर्यगुणों को धारण करना अनिवार्य था, आर्य शिक्षा माता-आचार्य से प्रारम्भ थी, तो उनकी पीढ़ियां दर पीढ़ियां आर्य ही बनती थी, जो दस्यु हो जाते थे उन्हें देश से बाहर कर दिया जाता था, आर्य बनने के सर्वाधिक संसाधन परम्पराएं आदि यहाँ सहज सर्व उपलब्ध थी, इसलिए यहाँ सदा से अर्थात् जब से आर्यावर्त्त बसा, तभी से आर्य बनते रहते चले आये हैं, इसलिए कहा है जो इनमें सदा रहते हैं, उनको आर्य कहते हैं, परन्तु इनमें सदा रहने वाले केवल मात्र रहने के कारण आर्य नहीं कहला सकते हैं, यहाँ भी दस्यु आदि थे, रहने मात्र के कारण वे आर्य नहीं हुए, दस्यु ही रहे। हाँ मात्र इतना तो लाभ अधिक मिलेगा कि आर्य बनने की सुविधाएं सर्वाधिक होंगी और वे आर्य होंगे, आर्य नाम से सम्बोधित होंगे। जो आर्यावर्त्त में ही सब दिन से रहते चले आये हैं, आर्य गुण सम्पन्न हैं वे आर्य और जो आर्यावर्त्त से बाहर हैं, आर्य गुण सम्पन्न हैं वे भी आर्य हैं। हाँ यह व्यवहार भी होता है कि जो आर्यावर्त्त से आया है वह आर्य, सर्वाधिक होने के कारण ही होता है जैसे- जो हिन्दुस्तान से आया है वह प्रथमतः हिन्दू समझा जाता है, बाद में पता चलता है कि वह आर्य है वा नहीं, आर्य देशवाचक होने से गौण व्यवहार हो सकता है। (जैसे महाभाष्य में- **शवतिर्गति कर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति विकार एनम् आर्याः भाषन्ते हम्मतिः सुराष्ट्रेषु रंहतिः प्राच्यमध्येषु गमिमेव त्वार्याः प्रयुञ्जते।**) कम्बोज में शव धातु गत्यर्थक शवति में प्रयोग होता है, आर्य लोग इस धातु के विकार- कृदन्त रूप शव का प्रयोग करते हैं (तिङन्त रूप नहीं प्रयुक्त होता है।) हम्म धातु सुराष्ट्र में, रंह प्राच्य में और मध्य में, इस अर्थ में आर्यलोग गम् धातु को ही प्रयोग करते हैं। यहां आर्य समूह में स्थान विशेष में निबद्ध प्रयुक्त हुआ है। परन्तु आर्य गुण-धर्म से ही जाने-माने जाते हैं। जाने माने जाने चाहिये। इस आर्यावर्त्त से इतर देश म्लेच्छ कहलाते हैं, इसका कारण वहाँ आर्य

आचार-व्यवहार नहीं था, जितने भाग में आर्य रीति-नीति रही, वह आर्यावर्त्त का ही अंग बन गया, अब तो इस पूर्वनाम आर्यावर्त्त में ही म्लेच्छ व्यवहार- मांस, मदिरा, छल, कपट, धूर्तता, ठगी, पाखण्ड सर्वत्र व्यापक हो रहा है, आर्य सिद्धान्त लुप्तप्राय हैं, यहां भी मत-पंथ-सम्प्रदाय हजारों की संख्या में हैं, सभी के अपने-अपने जीवन उद्देश्य के सिद्धान्त हैं। यह भी तो **अतः परः** में ही है, यहाँ सब दिन से रहने वाले, बाहर रहने वाले बराबर हो गये, अतः परः ही खत्म हो गया, सर्वत्र यही भाव रह गया। आर्य कहीं भी बन सकता है, बनाया जा सकता है, जो-जो आर्यों के सिद्धान्तों को ग्रहण करता है वही आर्य है। इसमें देश-काल-स्थान की सीमाओं का बन्धन नहीं है।

आर्य तो गोरे होते हैं, लम्बे होते हैं, लम्बी-लम्बी नाक होती है। यह तो एक नस्ल है, जाति है, देखो महाभाष्य के कर्ता पतञ्जलि जी अपने अष्टाध्यायी, व्याकरण ग्रन्थ के भाष्य में कहते हैं- गौरः शुच्याचारः पिंगलः कपिल केशः .....। गौरवर्ण, पवित्राचार, पीले और कपिल केश आदि।

महाभाष्कार पतञ्जलि के अनुसार गौरवर्ण आदि आर्यों के लक्षण में न होकर ब्राह्मण के लक्षण में कहा है, आप कहें कि ब्राह्मण भी आर्य है तो यह आर्य का ही लक्षण हुआ तो आपका इन गुणों से आर्य का कथन उचित नहीं है। प्रथम तो महाभाष्य व्याकरण का ग्रन्थ है, लक्षण का ग्रन्थ नहीं है, द्वितीय वहां ब्राह्मण का सामान्य लक्षण करते हुए कहा है (किसी-किसी क्षेत्र में इन कद काठी वर्ण वाले आर्य ब्राह्मण होंगे, वर्ण व्यवस्था तो सर्वत्र थी अर्थात् विभिन्न क्षेत्रों में थी, क्षेत्र विशेष के कारण रंग आदि में परिवर्तन स्वाभाविक है, इससे तो यही सिद्ध होता है कि आर्य सभी रंग रूप में थे।) परन्तु यदि विद्या न हो और मात्र यह बाह्य स्वरूप हो तो वहाँ क्षेत्र विशेष में ब्राह्मण का भ्रम हो सकता है, परन्तु गुण रहित होने पर वह जाति ब्राह्मण

मात्र होगा अर्थात् भ्रम से रूप समानता के कारण प्रयोग हो सकता है। यथार्थ में वह ब्राह्मण नहीं है। यह उदाहरण तो गुण पर आधारित रंग, रूप, कद, काठी से पृथक ही बताने वाला, न कि रंग-भेद पर सिद्ध हुआ। आर्यों की वर्ण व्यवस्था होती है जिनमें चार विभाग हैं- ये सब रंग, रूप, कद, काठी आदि से निरपेक्ष आर्य गुणों पर आधारित ही होते हैं, यह भी इसी से सिद्ध होता है।

आर्य वंशानुगत ही होते हैं, वंशानुगत आर्य सन्तति ही रूप, कद, गुणों को आगे बढ़ाती है और आज भी यह जीवित है अपने ही देश में लद्दाख के दाह और हनु ग्राम की ब्रोम्पा जाति के लगभग ५०० लोग अपने को शुद्ध रक्त आर्य जाति का मानते हैं, विदेशी महिलाएं आर्य सन्तति के लिए उन के पास आती रहती हैं। इसलिये आर्य का शुद्ध रक्त तो वंशानुगत ही होता है। यही आर्यन् रेस है, नस्ल है, जाति है?

आर्य लोग सन्तति पर विशेष ध्यान देते थे, ब्रह्मचर्य, खान-पान, व्यायाम और योग से वीर्य की शुद्धता-सबलता-निरोगता का विशेष ध्यान रखते थे, गर्भकाल एवं जन्म के उपरान्त बालक/बालिका के खान-पान चिकित्सा का विशेष ध्यान दिया जाता था, तब शरीर से बलिष्ठ सन्तानें ही होती थी, निरोग रहती थी। सन्तानोत्पत्ति हेतु माता-पिता का योग्य, निरोग, समर्थ होना आवश्यक था। आज भी वंशानुगत रोग से बालक को बचाने का यत्न करते ही हैं। कुपोषण से रक्षा करते ही हैं, पोलियो आदि के रक्षार्थ जन्म के पश्चात् टीके आदि लगवाते ही हैं। इनका उद्देश्य बालक को सबल एवं स्वस्थ रखना ही है। आर्य लोग तो आर्य सन्तति ही चाहते हैं। वह सन्तति जो आगे चलकर आर्य ही बने। परन्तु यह शरीर के निर्माण की प्रक्रिया है जो गर्भाधान से प्रारम्भ होती है। यह आर्य बनने की प्रक्रिया नहीं है, आर्य तो विद्या से पैदा होता है, विद्या से बनता है, बनाया जाता है, फिर

जो भी शरीर धारी चाहे जैसा रंग, रूप, कद, काठी, क्षेत्र का क्यों न हो, विद्या ग्रहण करने में सक्षम है, आर्य बन सकता है, यह विद्या वीर्य के अधिष्ठान में नहीं है, यह सबल शरीर आदि का वाहक हो सकता है (जन्म के उपरान्त प्रबल पुरुषार्थ से यह कमी भी दूर की जा सकती है।) परन्तु आर्य विद्या और आर्य गुण तो सिखाना और सीखना ही पड़ेगा इसके अभाव में कितना ही बढ़िया रंग, रूप, कद, काठी क्यों न हो, आर्य नहीं होगा, दस्यु ही रहेगा, अनार्य ही होगा। **यह जन्म आर्यत्व के बाद सक्षम होने पर ही सम्भव है।** भारत के लद्दाख के दाह और हनु ग्राम की जनता कहाँ से आर्य है, न आर्योचित गुण है, न कर्म है और न विद्या ही है। जब आर्य की नस्ल, रक्त, जाति, रंग, रूप, कद, रेस होता ही नहीं है तो ये कहाँ से आर्य हैं, **हाँ! प्रयत्न करें तो आर्य बन सकते हैं। आर्य बनने की प्रक्रिया जन्म के बाद ही होती है, गर्भाधान से जन्म के बाद कुछ वर्ष तक तो शरीर की सबलता, रक्षा और स्वस्थता का ही प्रयत्न होता है कि यह शरीर से सुदृढ़ रहे और आगे चलकर आर्य विद्या ग्रहण कर आर्य बने।** अच्छे बीज से अच्छा फल-फूल हो सकता है और होता है। इसी तरह अच्छे बीज से मात्र शरीर अच्छा हो सकता है, केवल यहीं तक फल और वृक्ष का उदाहरण ले सकते हैं, आगे विद्या से ही आर्य बनेंगे। इसके अभाव में अनार्य ही रहेंगे। जब प्रबल पुरुषार्थ से योग्य शरीर का निर्माण किया जा सकता है तो रंग, रूप, कद को देखकर आर्य सन्तति के लिए वहाँ विदेशी महिलाओं का नियोग के लिए आना बुद्धिमता नहीं कही जा सकती है। सन्तान वंशानुगत रोग से रहित स्वस्थ, निरोग, सबल हो यह तो ध्यान रखा ही जाना चाहिये परन्तु किसी भी क्षेत्र, रंग, रूप, कद-काठी का क्यों न हो सभी मनुष्य आर्य बन सकते हैं, बनते थे, बन रहे हैं और बनेगें।

हिन्दु आर्य हैं क्या? अभी तक तो आर्य समाजी ही आर्य होते हैं, ऐसा सुना है? क्या केवल आर्य समाजी ही आर्य होते हैं? और

कोई आर्य है ही नहीं?

आर्य कोई जन्मना जाति नहीं है कि आर्य समाजी के यहाँ आर्य पैदा होते हैं वा होंगे। मत-मतान्तर से पूर्व सब आर्य ही थे। इसलिए सभी आर्य के ही वंशज हैं। केवल आर्य समाजी ही आर्य होते हैं, ऐसा नियत नहीं है। यदि ऐसा मानोगे तो सवा सौ करोड़ हिन्दू भी आर्य हैं। क्योंकि आर्य बनने का पहला अधिकार इन्हीं का है। आर्यों की विरासत इन्हीं की है। वेद को हिन्दू ईश्वरीय ग्रन्थ मानते ही हैं। आर्य समाजी तो अभी डेढ़ सौ वर्ष के भी नहीं हुये हैं। और अभी से इनमें विघटन घनेरे हैं, हिन्दू अनेकों सिद्धान्तों को वेदसम्मत कहते हुए भी वेदविरूद्ध मानता है तो आर्य समाजी वेद विरूद्ध जानते हुये भी अनेकों अवैदिक सिद्धान्तों को मानते हैं एवं पौराणिक परम्पराओं के अनुसार चलते हैं। ये आर्य समाजी दो चार लाख हैं और हिन्दू १००-१५० करोड़ है, यदि ये आर्य हैं तो हिन्दू भी आर्य ही हैं। यदि आर्य समाजी के यहाँ जन्म मात्र से आर्य होते हैं तो हिन्दू तो विरासत प्राप्त जन्म सिद्ध आर्य हैं, उसको कैसे झुठला, नकार सकते हो। वे भी आर्य हैं। तो भारत को बहुसंख्यक होने से हिन्दू राष्ट्र नहीं अपितु आर्य राष्ट्र ही कहना चाहिये।

परन्तु आर्य जन्म सिद्ध अधिकार विरासत-बपौती नहीं हैं। आर्य वैदिक सिद्धान्तों को ग्रहण करने से बनते हैं। जिसने ग्रहण कर लिया वही आर्य है। चाहे वह हिन्दू हो अथवा आर्यसमाजी! यदि आर्यसमाजी आर्य सिद्धान्तों को नहीं मानता है पौराणिक अथवा स्वमन्तव्य मान्यता को ही मानता है और उसको बलात् वेदसम्मत सिद्ध करता रहता है, तो उसके अनार्यपने में क्या सन्देह है। वह आर्य नहीं है। इसलिए आर्यसमाजी कहे कि वह तीन पीढ़ियों से आर्य है तो हिन्दू तो लाखों पीढ़ियों से आर्य है, पक्का और सुदृढ़ आर्य जो पीढ़ियों वाला है, वह तो आर्य समाजी नहीं अपितु हिन्दू ही हुआ, जो लोग अपने को हिन्दू नहीं कहते, वा नहीं कहलवाना चाहते,

उनके भी पूर्वज आर्य ही हैं। इस पुण्यभूमि शस्यश्यामला धरा पर रहने वाला प्रत्येक आर्यवंशज है, उनकी हजारों लाखों पीढ़ियाँ आर्य की ही रही हैं, वह भी नैसर्गिक आर्यों का उत्तराधिकारी है। पीढ़ी परिमाप मानेंगे तो वह भी आर्य है, उसे भी आर्य होना ही चाहिये, क्या हुआ। १०-२०-५०-१०० पीढ़ी यदि आर्यसिद्धान्तों में घालमेल युक्त सिद्धान्त मानते चले आ रहे हैं। इन पोपलीला सिद्धान्तों को उखाड़ फेंकते ही स्वर्णिम आभा से देदीप्यमान वैदिक सिद्धान्तों के सूर्य की प्रचण्ड ऊष्मा और सत्यार्थप्रकाश का पुञ्ज उन्हें पुनः आर्य बना देगा। इसलिए केवल यह मत मानो कि आर्यसमाजी ही आर्य होते हैं। अन्य भी इन्हीं जैसे हैं, लगभग २० वर्ष पहले विश्व हिन्दू परिषद ने कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का नारा दीवारों पर लेखन करवाया था। तब आर्यसमाजियों ने बड़ा कोलाहल मचाया था कि यह उद्घोष तो हमारा है, हिन्दू कैसे लिख सकता है, बोल सकता है, मानों इस पर उसकी बपौती हो, इस पर तनिक भी विचार नहीं किया कि यह वेद के मन्त्र का भाग है, जिसको आर्य समाजी से ज्यादा हिन्दू प्राणपण से मानते हैं और जिसको पढ़ने के लिये पूरी बाल्यावस्था लगा देते हैं, आर्यसमाजी तो इस प्रकार से वेद पढ़ना निरर्थक मानते हैं, कहते हैं कि यह तो गधे की तरह बोझा ढोना हुआ, परन्तु यह विस्मृत कर देते हैं कि इन्हीं के त्याग, तप, पुरुषार्थ के कारण वेद हम तक सुरक्षित पहुंचे हैं और सुरक्षित हैं, आर्य समाजी सारे मिलकर १२५ वर्षों में द्विपदा ऋक् तक का निर्णय नहीं कर पाये हैं। ये तो ऋषि दयानन्द के द्वारा निर्धारित ऋग्वेद के मन्त्र संख्या को ही आधी अधूरी मानते हैं, शब्द, पद और स्वर की कौन कहे? परन्तु जैसे प्रत्येक हिन्दू को आप आर्य नहीं मानते हो, क्यों? क्योंकि वे वैदिक सिद्धान्तों को ठीक-ठीक नहीं जानते और मानते हैं उसी तरह यदि आर्य समाजी भी वैदिक सिद्धान्तों को ठीक-ठीक न माने तो उन्हें भी आर्य क्यों माना जावे, अन्तर एक-दो सिद्धान्तों का ही पड़ेगा। अतः जो आर्य सिद्धान्त मानता है वही आर्य है, जो

नहीं मानता है, वह आर्य नहीं है, हाँ आर्य सिद्धान्तों को ग्रहण कर कोई भी मनुष्य नर वा नारी आर्य हो सकता है। जो आर्य सिद्धान्तों को मानता है, ग्रहण करता है, वही आर्य है।

क्या गुरुकुलों में पढ़ा हुआ छात्र आर्य होता है? क्या गुरुकुल में पढ़े हुए छात्र आर्य होते हैं? क्या गुरुकुल के अलावा आर्य नहीं बन सकता है? क्या आर्य बनने के लिए गुरुकुल में पढ़ना अनिवार्य है? क्या गुरुकुल में पढ़े हुए होने पर उच्च आर्य और अन्य विधि से पढ़े हुए होने पर निम्न कोटि के आर्य होते हैं?

प्राचीन काल में शिक्षा प्रणाली गुरुकुलीय ही थी, बालक सक्षम होते ही आचार्य से शिक्षा ग्रहण हेतु गुरुकुल जाता ही था, आज भी है परन्तु इसका स्थान स्कूल, घर, बोर्डिंग ने ले लिया है, शिक्षा का केन्द्र भी बदल गया है, लक्ष्य भी बदल गया है, गुरुकुलीय व्यवस्था को यवन, मुस्लिम और अंग्रेज आक्रान्ताओं ने तहस-नहस कर दिया, अंग्रेजों ने तो पूरा पलट ही दिया। शिक्षा का उद्देश्य ही बदलकर रख दिया फिर तो सम्पूर्ण शिक्षा तन्त्र बदलना ही था और वह बदला।

प्राचीन काल में गुरुकुल के कई रूप थे, बड़ा गुरुकुल, छोटा गुरुकुल, जहाँ कई आचार्य पढ़ाते थे, एकल आचार्य वाले गुरुकुल भी थे, जहाँ थोड़े छात्र पढ़ते थे। करोड़ों वर्षों से चल रही व्यवस्था आवश्यकता के अनुरूप थोड़े परिवर्तनों से संचालित थी परन्तु शिक्षा के केन्द्र में वेद ही था, जब यह बदला, तो अनेकों उद्देश्यों वाले गुरुकुल बनें, जैसे जैनियों आदि के, बाद में सम्प्रदायवादियों के भी बनते रहे, आज भी हैं ही। ऋषि दयानन्द ने वैदिक सिद्धान्तों को प्रचारित-प्रसारित किया, पाठ्यक्रम बनाये, उसको क्रियान्वित करने के लिए गुरुकुल स्थापित करवाये परन्तु मात्र व्याकरण के पठन-पाठन की व्यवस्था ही करवा पाये, वहाँ भी अपेक्षित परिणाम न मिलने से बन्द करवा दिया, फिर स्वामी श्रद्धानन्द एवं अन्य अनेकों विद्वानों

ने इसकी महत्ता को देखकर गुरुकुल को प्रारम्भ किया। उद्देश्य और प्रक्रिया ऋषि दयानन्द की ही थी, परन्तु व्याकरण को छोड़कर और ग्रन्थों के पढ़ाने वाले पौराणिक ही थे, तो आर्य सिद्धान्तों में घालमेल वा अश्रद्धा का होना स्वाभाविक ही था, इन गुरुकुलों में भी स्वपुरुषार्थ से अर्जित मेधा के बल से अनेकों युवाओं ने सही सिद्धान्तों को जाना समझा और ग्रहण किया, हम सभी उन मनीषियों के भी ऋणी हैं, उन्होंने भी सिद्धान्तों के परिज्ञान हेतु प्रचार-प्रसार किये, ग्रन्थ लिखे। परन्तु जो इतने दृढ़ पुरुषार्थी नहीं थे, वे घालमेल वाले रह गये, फिर कुछ पौराणिक बन गये, कुछ नाम मात्र के आर्य रह गये, कुछ ने आजीविका और स्व आश्रय के लिए ही नये-नये गुरुकुल बना लिये, जीवनयापन तो करना ही था। कुछ ने स्वार्थवश आजीविका के लिए आर्यत्व को आश्रय बना लिया और यही प्रक्रिया आज भी चल रही है, यह गुरुकुल कांगडी और स्वतन्त्र विद्वानों के पठन-पाठन की स्थिति थी, आज तो मात्र नाम का गुरुकुल है, अष्टाध्यायी रटवाकर सोचते हैं कि बड़ा भारी विद्वान् बनवा दिया। पाठ्यक्रम वही पोपलीलाओं वाला है, पढ़ाने वाले भी मात्र विद्या के शत्रु ही हैं, कई स्थानों पर तो पूरा पाठ्यक्रम ही अंग्रेजी शिक्षा का है, लोगों को कितना मूर्ख बनाते हैं कि प्रातः जागरण के मन्त्र बुलवा दिया, सन्ध्या, यज्ञ, करवा दिया, भोजन कालीन मन्त्र बुलवा दिया और सारी शिक्षा अंग्रेजी शिक्षा पढ़ायी, पढ़ाते हैं और कहते हैं, गुरुकुल में पढ़ाते हैं, माता-पिता भी संतुष्ट हैं कि गुरुकुल में बालक पढ़ते हैं, बालक भी संतुष्ट है कि मैं गुरुकुल में पढ़ता हूँ, ये लोग गुरुकुल के प्रति श्रद्धा का दोहन और शोषण मात्र करते हैं, कुछ जगह केवल व्याकरण मात्र पढ़ा दिया और कृतकृत्य हो जाते हैं कि मैंने सब कुछ पढ़ लिया, शास्त्रों के समझने की कुञ्जी ले ली अब जब चाहे शास्त्र की संदूकची को खोल खजाने को ले मालामाल हो जायेंगे। परन्तु हा! दुर्भाग्य यह कभी होता ही नहीं है, कुञ्जी लिये ही मर जाते हैं। कभी शास्त्र की

संदूकची को खोलते ही नहीं हैं, कुञ्जी किसकी कितनी अच्छी बनी है इस पर ध्यान ही नहीं देते हैं, महाभाष्य पर्यन्त ठीक-ठीक व्याकरण रूपी कुञ्जी कभी उपस्थित ही नहीं होती है, नाम मात्र-पाठ मात्र पढ़कर सोचते हैं कि मैंने कुञ्जी अर्जित कर ली, जनता भी यही सोचती है, अध्येता तो कृतकृत्य हो उठते ही हैं, आगे शास्त्र परम्परा से पढ़ने पर कष्ट ही नहीं उठाते हैं, शब्द मात्र जानकर अर्थ की संगति कभी लगा ही नहीं पाते हैं, शास्त्र को यथावत् समझना तो बड़ी दूर की बात है, असम्भव है। कुछ लोग व्याकरण रूपी कुञ्जी अर्जित करने का कष्ट ही नहीं उठाते हैं, पेड़ लगाना ही नहीं चाहते हैं, केवल फल मात्र खाना चाहते हैं और सीधे शास्त्र का हिन्दी अनुवाद पढ़ते-पढ़ाते हैं, फिर उसमें क्या लिखा है, ठीक अनुवाद हुआ है कि नहीं, कभी जान ही नहीं पाते हैं फिर उसी अर्थ के आग्रही बन जाते हैं, फिर उसी मत-सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिए अन्य लेखकों के प्रमाण ढूँढ़ते रहते हैं और एक नया सम्प्रदाय बना लेते हैं, जहाँ सिद्धान्त को समझना नहीं होता है, अपितु स्वमत को पुष्ट करने के लिए शास्त्रों में से प्रमाण ढूँढ़ने होते हैं, दूसरों को सम्प्रदायी कहते-कहते कब स्वयं सम्प्रदाय के दलदल में धंस जाते हैं, पता ही नहीं चलता है, जैसे पौराणिक लोग कहते हैं कि जो मैं कहता हूँ, उसे मानो, मैं प्रमाणों से सत्य ही कहता हूँ, यही परम्परा है, उसी तरह ये भी कहते हैं, जैसे वे भोली-भाली जनता को ठगते हैं, वैसे ही ये भी ठगते हैं, ये थोड़े और अच्छे तरीके से ठगते हैं। भोली-भाली जनता का अर्थ है शास्त्र से अनभिज्ञ जनता। ग्रन्थों की व्याख्या ही पलट देते हैं क्योंकि इनका अभिमत सत्य का परिज्ञान नहीं अपितु स्वमत की स्थापना करना होता है। इसका निराकरण मात्र एक ही है कि जनता को सत्य-असत्य जानने का तरीका बताया जाये, बाबा वाक्यं प्रमाणम्, गुरोर्वाक्यं प्रमाणम्, पुस्तक वाक्यं प्रमाणम् आदि को काटने का एक मात्र उपाय है उन्हें परीक्षा करने में इतना योग्य कर दो कि स्वयं के वा अन्यों के

मतों का विश्लेषण कर सकें, अन्यथा नित नये रूप ठगने के बनते रहेंगे और सम्प्रदाय पर सम्प्रदाय बनता रहेगा। सम्प्रदाय के भीतर सम्प्रदाय बनता रहेगा।

इसलिए गुरुकुल में पढ़े हुए छात्र की आर्य बनने की सम्भावना ज्यादा नहीं होती हैं, हाँ अवसर अधिक होता है, जो इस अवसर का लाभ उठाते हैं, पुरुषार्थ करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, अध्ययन करते हैं, वे आर्य बनते हैं, अधिकांश तो इसी में कृतकृत्य रहते हैं कि वे गुरुकुल में पढ़ रहे हैं तो आर्य होना उनका जन्म सिद्ध अधिकार है, वे स्वतः ही आर्य बन जायेंगे। जब वहाँ १०-१५ वर्ष पढ़कर निकलते हैं तो परीक्षा करो तो उन्हें सिद्धान्त की बहुत न्यून जानकारी होती है, अहंकार अधिक होता है। परन्तु योग्यता होती ही नहीं है, कुछ को यह अवगत हो जाता है, वे विश्वविद्यालय आदि में पढ़ाने चले जाते हैं, कुछ ऐसे भी बुद्धिमान होते हैं जो अपनी योग्यता को बढ़ाने निकल पड़ते हैं और पुरुषार्थी, अध्यवशायी विद्वान् भी बन ही जाते हैं। इसलिए वर्तमान काल के गुरुकुल आर्य निर्माण में सक्षम हैं वा करते हैं, यह सत्य नहीं है, इसलिए गुरुकुलीय सभी छात्र आर्य होते हैं, यह सत्य नहीं है, आर्य होने की यह कसौटी नहीं है, हाँ होना यही चाहिये कि गुरुकुलों से पढ़ा हुआ छात्र आर्य हो, परन्तु अभी तक ऐसी व्यवस्था बन ही नहीं पायी है। फिर आर्य कैसे बनते हैं? कौन होते हैं? इसको आप जानते हैं कि जो वैदिक सिद्धान्तों को जानता है, मानता है और ग्रहण करता है वही आर्य है, चाहे वह गुरुकुल में पढ़ा हुआ हो, चाहे वह स्कूल मे पढ़ा हुआ हो, यदि वह आर्य सिद्धान्तों को जान, मान, ग्रहण कर ले तो वह आर्य है, कठिनाई और सरलता दोनों जगह है, दोनों जगह पढ़ने वालों को कठिनाई और सरलता हो सकती है। यह परिस्थिति और योग्यता पर निर्भर करता है, चाहे व्याकरण पठन-पाठन मात्र का गुरुकुल हो, आधुनिक विषय समावेशित गुरुकुल हो, दर्शनानुवाद पठन-पाठन का गुरुकुल हो वा अन्य किसी भी

प्रकार का गुरुकुल हो, उसे छात्रों को ठीक-ठीक वैदिक सिद्धान्तों को पढ़ाना ही पड़ेगा, तभी वे छात्र आर्य बन पायेंगे अन्यथा नहीं, स्वाध्याय मात्र से आर्य बना जा सकता है परन्तु इसमें जोखिम, संशय और संघर्ष बहुत होता है। भावुकता वा एक दो सिद्धान्त को जानने मात्र से कोई आर्य नहीं बन जाता है, आर्य होने का अहंकार और हो जाता है, जिस कारण से विद्या ग्रहण कम और मत पुष्टि ज्यादा होने लगती है और कहीं कुछ योग्य बन गया तो एक नया सम्प्रदाय खड़ा हो जाता है, इसलिए आर्य सिद्धान्तों को ठीक-ठीक जानकर ही आर्य बना और बनाया जा सकता है। वे गुरु सौभाग्यशाली हैं, वह गुरुकुल तीर्थ है, जहाँ वेद को केन्द्रित कर विद्या का पठन-पाठन होता है और छात्र विद्या के साथ-साथ आचार्य से वैदिक सिद्धान्तों को सीखते हैं, समझते हैं, धारण करते हैं और शास्त्रों में स्वसामर्थ्य और आचार्य अनुकम्पा से वैदिक सिद्धान्तों को हृदयङ्गम करते हैं, ऐसे छात्रों को भी परम सौभाग्यशाली समझना चाहिये, इस प्रकार के विद्यातीर्थ गुरुकुल से निश्चित ही आर्य बनेंगे, परन्तु इस प्रकार के गुरुकुल की संस्थापना के लिए हमारे मनीषियों ने अथक संघर्ष किये हैं परन्तु सफलता अभी हाथ नहीं आयी है, प्रायः १०० से अधिक वर्षों से इसके लिए हम संघर्ष कर रहे हैं, इसमें एक बात याद रखनी चाहिए कि इस प्रकार के गुरुकुल के केन्द्र में कम से कम एक आचार्य सांगोपांग वेद विद्या अधीत होना चाहिये और वर्तमान काल के अनुसार न्यून से न्यून एक प्रान्त में आर्य राज व्यवस्था होनी चाहिए, तभी यह प्रकल्प सम्भव है विगत १०० वर्षों के इतिहास का आलोड़न करें तो पायेंगे कि बिना इन दो साधनों के यह सम्भव नहीं है। जो-जो आर्य सिद्धान्तों को जानते-मानते-ग्रहण करते हैं, वे आर्य, इसलिए आर्यों में कोई विभेद नहीं होता है कोई छोटा, बड़ा आर्य नहीं होता है, कोई उत्कृष्ट-सामान्य आर्य नहीं होता है, आर्य आर्य ही होता है, चाहे वह गुरुकुल तीर्थ से पढ़ा हुआ आर्य हो, चाहे वह आचार्यों से आर्य

सिद्धान्तों को हृदयङ्गम किया हुआ आर्य हो, दोनों बराबर हैं, उनमें कोई छुटाई-बड़ाई नहीं है।, दोनों तुल्य आर्य हैं। हाँ गुरुकुल रूपी तीर्थ से सांगोपांग वेद पढ़ा हुआ और आर्य सिद्धान्तों को जानता, मानता और ग्रहण किया हुआ आर्य विद्वान् है, तो वह सम्मानित है, पूजनीय है, पितर है।

क्या व्याख्यान सुनने मात्र से व यज्ञ करने के लिए यज्ञोपवीत पहनवाकर, बीड़ी आदि तत्काल छुड़वाकर आर्यसमाजी बनाया वा बना जा सकता है?

आर्य सिद्धान्तों को जान, मान और ग्रहण कर ही आर्य बनते व आर्य कहातें है, व्याख्यान रोचक होते हैं, एकाध जगह पर सिद्धान्त परक भी होते है, परन्तु आधे-अधूरे ही होते हैं, क्योंकि वक्ता की योग्यता और सिद्धान्त ग्रहण करने का वातावरण प्राय: वहाँ होता नहीं है और कोई भावुक हो गया और अपने को आर्य कहाने लग गया तो आर्य उसे कैसे कहेंगे, आर्य के लिए अत्यावश्यक सिद्धान्तों का ठीक-ठीक बोध होना अनिवार्य है और यज्ञवेदी पर मात्र यज्ञ के लिये यज्ञोपवीत ग्रहण करवा देना, धोखे के अलावा और क्या है? यज्ञोपवीत ग्रहण करने की योग्यता एवं भावना ही नहीं होती है। इसका परिणाम यही होता है कि हर बार यज्ञ पर उसे यज्ञोपवीत देना ही पड़ता है और हम उसके जेब से बीड़ी, तम्बाकू आदि निकलवाकर, प्रतिज्ञा करवा सोचते हैं कि वह अब उन व्यसनों से मुक्त हो गया, न व्यसन के दोष बताये, न व्यसन त्यागने का लाभ बताया, न आर्य सिद्धान्तों का परिज्ञान कराया जिससे आत्मिक बल बढ़े और वह स्वविवेक से निर्णय कर व्यसनों को त्याग दे। वह तो सामाजिक अपमान, भय और रक्त वस्त्र, वा पीतवस्त्र की लाज रखते हुऐ वह निकाल कर दे देता है और यज्ञवेदी से उठते ही फिर मांगकर पीता-खाता है, अगली बार फिर उसकी जेब से बीड़ी, सिगरेट निकलवाना पड़ता है और हम सोचते हैं कि इतने लोगों का व्यसन छुड़वाया और यज्ञोपवीत पहनाकर आर्य बनाया, यह तो

स्वयं को और उसे धोखा देना मात्र ही है। ऐसे लोग जिनको आर्य सिद्धान्त पता ही नहीं हैं, इस तरह से आर्य बन कर पदाधिकारी आदि बन जाते हैं और आर्य समाज को पौराणिक मन्दिर बना देते हैं, इस तरह से आर्य बनना और बनाना तथा ऐसे को आर्य मानना एक त्रासदी से कम नहीं है। ऐसे को आर्य कदापि नहीं माना जा सकता है।

आर्य किस-किस तरह से बनते हैं?

एक पण्डित जी कथा सुना रहे थे श्रोतागण ध्यान से सुन रहे थे, सबसे आगे बैठी हुई एक बुढ़िया बड़ी तन्मयता से कथा सुन रही थी, बीच-बीच में रो भी पड़ती थी, जब बुढ़िया रोने लगती, तब-तब पण्डित जी और लगन से कथा सुनाते, बुढ़िया और विह्वल हो उठती, पण्डित जी बडे प्रभावित हुए, सोचा कि इस बुढ़िया के संस्कार बड़े अच्छे हैं, कथा और कथा का रहस्य पूरा समझ में आ रहा है एषः श्रोता वक्ता च दुर्लभः की स्थिति थी, जब दो दिन से यही तन्मयता और रोना रहा तो पण्डित जी से रहा नहीं गया, कथा समाप्त होने के उपरान्त पण्डित जी ने बुढ़िया को रोककर पूछा कि माई आप तो बड़ी श्रद्धालु हो, आपके कितने अच्छे संस्कार है, दो दिन से देख रहा हूँ आप कथा बड़ी ध्यान से सुन रही हैं बीच में रोती भी रहती हैं, कथा समझ में आ ही रही है न। बुढ़िया ने पण्डित जी की तरफ आँख उठाकर देखा और कहा पण्डित! मेरे इतने भाग्य कहाँ है कि इसके मर्म को समझ सकूँ, पण्डित जी बड़े आश्चर्य चकित हुए, संकुचाते हुये पूछा कि आप तो सुनते-सुनते बीच में रो भी पड़ती थी, इसको सुनकर बुढ़िया ने कहा पण्डित बात यह है कि मेरे यहाँ एक बकरा था, मुझे बड़ा पसन्द था, महीना भर हुआ कि मर गया, उसके आप जैसे दाढ़ी थी, जब-जब आपकी दाढ़ी हिलती थी, तब-तब मुझे बकरे की याद आती थी और रोना आ जाता था, पण्डित जी अपनी सोचपर बड़े शर्मिन्दा हुए, क्या सोचा था और क्या था। व्यक्ति भी कुछ का कुछ देख, सुन,

समझकर आर्य समाजी बनते थे और आज भी बनते हैं। अपने जाति का आर्य उपदेशक आया हुआ जान यज्ञोपवीत ले आर्य बन गये। भजनोपदेशक का भजन सुनकर भाव विभोर हो उठे, और आर्य समाजी बन गये। किसी विद्वान् का रंग, रूप, बड़ा पसन्द आया और उनके सत्संग में आने लगे और आर्य समाजी बन गये, कोई अपने साथ सन्ध्या-हवन में लेकर आने लगे और आर्यसमाजी बन गये। पिताजी बुड्ढ़े हो गये तो गद्दी तो सम्हालनी है, आर्य समाज में आने लगे और आर्य समाजी बन गये, किसी बड़े व्यक्ति को आर्य समाजी बने देखा तो आर्य समाजी बन गये, आर्य समाजी विधि से विवाह हुआ तो आर्य समाजी बन गये, डी.ए.वी. स्कूल में पढ़ा, हवन पर आते रहे और आर्य समाजी बन गये, गीत-बहुत सुन्दर लगते हैं और आर्य समाजी बन गये, गुरुकुल में पढ़ा है बस अब तो आर्य समाजी स्वतः ही हैं इसलिए आर्य समाजी बन गये, विरोधियों के साथ लड़ाई में सहयोग देने से आर्य समाजी बन गये? वानप्रस्थ में रहने के लिए जगह मिल जायेगी, इसलिए आर्य समाजी बन गये, नाम आर्य रख ही दिया है तो आर्य समाजी बनना ही चाहिए, आर्य समाजी बन गये, आर्य समाज में प्रधान/मन्त्री बनना है, हवन पर आने लगे और आर्य समाजी बन गये। मूर्तिपूजा से चिढ़ थी और आर्य समाजी बन गये। अपनी जाति के लोगों का आर्यसमाज है तो जाना तो चाहिए, आर्य समाज में आने लगे और आर्य समाजी बन गये। आर्य समाज में लाठी-डण्डा भी सिखाते हैं, सीखने आने लगे, हवन सन्ध्या के मन्त्र याद हो गये तो आर्य समाजी बन गये, सभा ने आर्य समाजी बना दिया तो आर्य समाजी बन गये। प्रतिनिधि सभा के सदस्य बन गये तो आर्य समाजी बन गये।

इन विभिन्न उपक्रमों से आर्य समाजी बन गये, परन्तु जिससे आर्य बनते हैं, वह कभी न सीखा, क्योंकि एक दो सिद्धान्त समझ कर मानने मात्र से आर्य नहीं बना जा सकता है, आर्य बनने के लिए मुख्य-मुख्य आर्य

सिद्धान्तों का परिज्ञान आवश्यक है। बड़े विरल होते हैं जो सत्यार्थ प्रकाश को ठीक-ठीक पढ़ सिद्धान्तों को स्वयं समझकर आर्य समाजी बने, पहले तो समझना कठिन दूसरे इतना समय लगाकर पढ़े कौन, बस पौराणिक नहीं हूँ, तो क्या हूँ, जो हूँ सो हूँ, क्या? आर्य समाजी। आर्य बनने और बनाने की केवल और केवल एक ही प्रणाली थी और है, वह है वैदिक सिद्धान्तों को जानना और समझना, उसकी प्रणाली का स्वरूप भिन्न हो सकता है, परन्तु उन-उन सिद्धान्तों को जानना-समझना ही होगा। मुख्य साधन पहले गुरुकुल फिर स्वाध्याय थे। व्याख्यान यदि क्रमिक सिद्धान्त सम्मत होवें, तो भी उपकार हो सकता है। परन्तु स्वतन्त्र मनोरंजक, तारतम्यहीन, वाक्पटुता और गुणगान उपदेशों से नये क्या जमेंगे, पुराने भी स्थिर नहीं होंगे, अंकुरण भी नहीं होता है, अगले दिन फिर नई खेती और नया बीज। अतः आर्य बनने के प्रबलतम साधन सत्र का अवलम्बन ही परम श्रेयस्कर है।

क्या आर्य निर्मात्री सभा के द्वारा संचालित- उपक्रमित आर्य प्रशिक्षण सत्रों में सभी आर्य बनते हैं? क्या सभी को आर्य माना जाना चाहिये? क्या वे सभी आर्य होते हैं?

आर्य निर्माण प्रक्रिया में आर्य सिद्धान्तों का एक व्यवस्थित पाठ्यक्रम है, जिसमें ५०० से अधिक वैदिक सिद्धान्तों को सरलतम, तर्कपूर्ण, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक विधि से समझाया, सिखाया और मनवाया जाता है, ये वैदिक सिद्धान्त आर्य के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं, आचार्य एवं सत्रार्थी दोनों मिलकर गुरु-शिष्य परम्परावत् सीखने एवं सिखाने का पूर्ण पुरुषार्थ करते हैं, जिज्ञासु आर्य सिद्धान्तों को समझकर, मानकर, ग्रहण करने का संकल्प ले आर्य बनने के लिए तत्पर हो उठता है और तब आर्य बनता है। प्रायः आर्य बन ही जाते हैं। परन्तु यदि सत्र में ठीक से सिद्धान्त समझे ही नहीं, भावुकता वश आर्य बनने का आग्रह कर बैठे, छद्मवेशधारी सत्रार्थी बन सत्र में बैठे तो वे कहाँ से सिद्धान्तों को समझेंगे

उनका ध्यान तो छल-छिद्रों पर ही रहेगा, कोई दिखावे के लिये सत्र में बैठे कि आर्यों का विश्वास जीतकर उन्हें छल सकें तो वह धूर्त कहाँ से सिद्धान्त सीखने का प्रयास करेगा। विद्या ग्रहण करने के बाद परिवार और समाज से हार गया, उसे पोपलीला मानने के लिये विवश होना पड़ा, स्वार्थ और प्रलोभन से सिद्धान्त को समझते हुए भी उससे विपरीत चलने वाला कहाँ से आर्य हो सकता है, इसलिए इन कारणों को देखते हुए सभी सत्रार्थी आर्य नहीं कहे जा सकते हैं, परन्तु इन सभी का प्रतिशत 10% ही है; अधिकांश आर्य विद्या ग्रहण कर विद्या का चिन्ह यज्ञोपवीत ले आर्य बनने का प्रयत्न करते हैं और आर्य बन ही जाते हैं। कोई सत्रार्थी आर्य बन स्वार्थवश आर्य से विरूद्ध कार्य करे तो वह भी क्योंकर आर्य कहलावेगा? मुख्यतः सिद्धान्त यह है कि जो मनुष्य आर्य सिद्धान्तों को जानकर, मानकर, ग्रहण करता है, वही आर्य है, चाहे वह सत्र में बैठकर सिद्धान्तों को समझा हुआ हो परन्तु आर्य सिद्धान्तों से विपरीत चलता है तो वह आर्य नहीं है, सत्र में सीखने मात्र से, सत्र में बैठने मात्र से, सत्रों को करने मात्र से कोई आर्य नहीं हो सकता है। जब तक वह सिद्धान्तों को समझकर ग्रहण नहीं करता है तब तक वह आर्य नहीं है। परन्तु वर्तमान में आर्य निर्माण की सफल और सर्वोत्तम विधा आर्यसत्र ही है।

किसी व्यक्ति के नाम के आगे आर्य लिखा हुआ है, कई पीढ़ियों से लिखा चला आ रहा है, छोटे-छोटे नवजात बालकों के नाम के आगे भी आर्य लिखा हुआ है, तो क्या आप उसे आर्य नहीं मानोगे? पहले आर्य लिखा हुआ है तो वह तो और भी अच्छा आर्य होना चाहिये? आर्य लिखने और कहलवाने में संकोच और शर्म भी नहीं महसूस करता है, गर्व से अपने को आर्य कहता है तो वह तो आर्य ही होगा?

नाम करोड़ीमल काम भिक्षा मांगना, जैसे नाम करोड़ीमल हो जाने

से वह धनिक नहीं हो गया, उसी तरह नाम रख लेने मात्र से कोई आर्य नहीं हो जाता है।, जैसे नाम में है चतुर्वेदी, त्रिवेदी, द्विवेदी,परन्तु कभी वेद को देखा ही नहीं है, पढ़ने और समझने की दूर बात रही, पीढ़ी दर पीढ़ी नाम चला आ रहा है, तो क्या आप उसे वेद का विद्वान् मानोगे, नहीं न, दो वेद का विद्वान्, तीन वेद का विद्वान्, चारों वेदों का विद्वान् मानोगे? नहीं मान सकते हैं। उसी तरह नाम आर्य लिख लेने मात्र से कोई आर्य नहीं हो जाता है। चाहे आर्य आगे लगाये अथवा आर्य पीछे लगाये। आर्य वैदिक सिद्धान्तों को ग्रहण करने वालों को ही कहा जा सकता है अन्य किसी को भी नहीं। आर्य एक योग्यता है। यह आर्य विद्या ग्रहण के उपरान्त ही सम्भव है, यह टाइटल मात्र नहीं है। जब तक मनुष्य आर्य सिद्धान्तों को ग्रहण नहीं कर लेता है तब तक वह आर्य नहीं, तब तक उसके नाम के आगे वा पीछे आर्य नहीं लिखा जाना चाहिये, आर्य नाम एक योग्यता का द्योतक है कि वह आर्य सिद्धान्तों को जानता, मानता एवं ग्रहण करता है। वर्त्तमान काल में आर्य नाम के आगे वा पीछे आर्य लिखता है तो सांगठनिक उद्देश्य के लिए उचित है, जब सभी आर्य हैं तब सम्बोधन के लिए भी उपयुक्त था और है, जैसा कि प्राचीन काल में रहा है। इसलिए जब तक बालक की योग्यता आर्य की नहीं हो जाती है? आर्य नहीं लिखा जाना चाहिए, जैसे कोई बी.ए., एम.ए., डॉक्टर, इंजीनियर न हो और अपने नाम के आगे वा पीछे लिख ले तो उचित नहीं माना जाता है, उपहास एवं ठगी ही माना जाता है, जैसे कोई अपने नाम के आगे आई.ए.एस., आई.पी.एस., मन्त्री, प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति लिखे तो अपराध माना जाता है, उसी तरह जो आर्य योग्यता-आर्य विद्या बिना ग्रहण किये आर्य लिखे वा लिखता हो तो उसे इसी श्रेणी में क्यों न रखा जाय। इसलिए केवल नाम लिखे होने मात्र से आर्य नहीं माना जाना चाहिये अपितु आर्य विद्या एवं आर्य गुण की परीक्षा के उपरान्त ही आर्य मानना चाहिए। आजकल स्वार्थपूर्ति के लिए बहुत सारे ठग प्रवृत्ति के लोग

भी आर्य लिखने लगे हैं परन्तु आर्य की योग्यता दिखावे की, छल-कपट और ठग वाली है, तर्क एवं साहचर्य से थोड़े समय में ही बोध हो जाता है कि ये आर्य रूपी सिंह की खाल ओढ़े भेड़िये आदि ही हैं। ऐसे लोग बड़े जोर-शोर से अपने को आर्य कहलवाते और कहते फिरते हैं, अवसर आते ही बगुला प्रवृत्ति की तरह झपट कर स्वार्थपूर्ति के लिये पौराणिक प्रवृत्ति वा आर्य विरूद्ध कार्य करने से भी नहीं हिचकते हैं और उसको भी आर्योचित, समय की मांग, नीति, मजबूरी कहकर सही ठहराने का पुरजोर प्रयास करते हैं, कुछ सरल प्रवृत्ति के लोग उनके बहकावे में भी आ जाते हैं और बाद में पछताते वा आर्यत्व ही छोड़ बैठते हैं। आर्य सिद्धान्तों को ग्रहण करने वाला स्वनाम के आगे/पीछे कहीं भी आर्य लिखे उचित है, गर्व, सम्मान एवं आत्मविश्वास से अपने को आर्य कहे, उचित है, जब तक आर्य विद्या ग्रहण न करे बालक हो वा वृद्ध आर्य नहीं कहलवाना वा लिखा जाना चाहिये। आर्य स्वनाम के साथ राष्ट्रपति लिखने से भी अधिक महत्वपूर्ण, सम्मानित और संरक्षित मानना, मनवाना और व्यवस्थाकारी करना चाहिए। आर्यसिद्धान्त से हीन को आर्य लिखने, कहलवाने से रोका जाना चाहिए अन्यथा आर्य के नाम से भ्रम, संशय, छल, कपट और ठगी, स्वाथपूर्ति और धूर्तता लोग करते रहेंगे। आर्य विद्या ग्रहण किये हुए योग्य के साथ अतीव सम्मान के साथ आर्य लिखा और बोला जाना चाहिये, इस की परीक्षा संगठन, ज्ञान और व्यवहार से सहज है, तनिक भी कठिन नहीं है, पहचानने एवं मानने में थोड़ी ही सावधानी से परिचय की जरूरत है बस।

देश में अनेकों गाँव ऐसे हैं जहाँ SC, ST, BC, OBC के लोग अपने नाम में आर्य लिखते हैं, इनकी संख्या लाखों में होनी चाहिए, इनको आप क्या कहोगे? इससे तो बड़ी समस्या पैदा हो जायेगी, एक तरफ आप लोग आर्य बना रहे हो, दूसरी तरफ लाखों इन लोगों को ..... ?

देश में जातिवाद, अस्पृश्यता और इनके धर्मान्तरण (मुसलमान वा

ईसाई करण) को देखते हुए आर्य समाज के प्रारम्भिक काल के नेताओं ने शुद्धिकरण का अभियान चलाया। हजारों को मुस्लिम वा ईसाईकरण से बचाया और मुस्लिम तथा ईसाई मलकानों की शुद्धि एवं मूलेजाट की शुद्धि से हिन्दू (तथाकथित नाम मात्र का आर्य) बनाया और हिन्दुओं को धर्मान्तरण से बचाया और इनको यज्ञवेदी पर आर्य नाम से युक्त किया। आज अनेकों गाँव पौढ़ी-गढ़वाल, नैनीताल, राजस्थान आदि में इस तरह से हैं, आर्य नाम लिखते हैं। परन्तु मान्यताएँ वही पुरानी ही जस की तस हैं, नाम मात्र आर्य है, आर्य सिद्धान्त कुछ भी नहीं जानते हैं, मांस, शराब, अण्डा, मूर्तिपूजा, व्रत, उपवास, अन्धविश्वास ज्यों के त्यों हैं, इनके लिए आर्य जाति की तरह हो गया और अन्यत्र इसके गुण-कर्म को देखकर लोगों में यह भ्रान्ति फैली और आज भी है कि आर्य का तात्पर्य हरिजन है। सच्चे आर्य को भी उसी भाव से समझते, मानते और व्यवहार करते हैं। इसलिए इन लोगों को आर्य कथमपि नहीं कहा जा सकता है, न माना जा सकता है। परन्तु इसमें अधिक दोष आर्य समाज का है कि इन को समझाना चाहिए था कि मात्र नाम देने से कुछ भी परिवर्तन नहीं होता है, यज्ञ कराया, जनेऊ दिया और लगे इनको 'घर वापसी' कहकर आर्य नाम से सम्बोधित करने। यह धोखे के सिवाय कुछ नहीं है। कुछ लोग घर वापसी कराकर हिन्दू बनाते हैं, हाँ हिन्दू तो कहा जा सकता है क्योंकि यहाँ सभी प्रकार के लोग हैं। परन्तु आर्य के लिये तो आर्य विद्या देना अनिवार्य होता है, जो जो हृदयङ्गम कर उसे ग्रहण करने के लिए विवेक पूर्वक तैयार हों, ग्रहण करते हों, उन्हें ही आर्य माना जाना चाहिये, हाँ मुसलमान और ईसाईकरण से तो हिन्दूकरण ही ठीक है। परन्तु आर्य विद्या दे आर्य बनाना ही सर्वोत्तम उपाय है। आर्य विद्या रहित चाहे लाखों नामधारी आर्य हों, आर्य कार्य के लिये निरर्थक ही हैं। उनको आर्य न ही कहना, न ही मानना और न ही लिखा जाना चाहिये। परन्तु इन आर्य नामधारियों को भी आर्य विद्या देकर आर्य

बनाने का प्रयत्न करना चाहिए कि आप नाम-नाम के आर्य हो, आओ! आर्य विद्या ग्रहण कर यथार्थ आर्य बनो, तभी उन्नति कर पाओगे, अन्यथा नाम आर्य का और पाखण्ड, अज्ञानता और जातिवाद की श्रृङ्खला में जकड़े हुए पूरी तरह दुःख ही भोग रहे हैं। आर्य समाज में भी धूर्त सम्प्रदायी गण पांच-पांच रूपये में आर्य बेचने लगे थे, ५ रूपये के चन्दे से आर्य नाम धारी बनाने का उपक्रम शुरु हो गया था, आश्चर्य है, मूर्खता और स्वार्थ क्या न कराये, वही थोड़ा है। इसी तरह चारों तरफ फैले हुए इस मकड़ जाल को समझने और हटाने का अभियान चलाते ही रहना चाहिए, कुछ लोग सोच रहे होंगे कि इससे तो हम बहुत थोड़े रह जायेंगे, उनको महा कुम्भ के मेले में जुटने वाली करोड़ों की भीड़ देखनी चाहिए और समझना चाहिए कि ये करोड़ों की भीड़ ६ वर्ष, १२ वर्ष वा समय-समय पर जुटती रहती है, पहले भी जुटती थी, परन्तु हम इतनों के होते हुए भी एक दो लाख आक्रान्ताओं के गुलाम क्यों थे? यदि सभी को संग्रहीत ही रखना है तो हिन्दू तो है ही, यहाँ सभी तरह के सिद्धान्त मान्य हैं ही, परस्पर विरोधी सिद्धान्तों वाले सम्प्रदायों की भरमार है यहाँ, ये भी तो अपने को आर्य कहते हैं, नहीं भी कहते हैं। इसलिए आर्य विद्या ग्रहण करने वालों को ही आर्य कहा जा सकता है? कहा जाना चाहिये। हाँ इन सभी को आर्य विद्या दे आर्य बनाना चाहिये, तब आर्यों की संख्या लाखों में ही नहीं करोड़ों में होगी, यदि बिना सिद्धान्त के मानोगे, कहोगे तो वर्त्तमान की तरह लाखों से, हजारों में और हजारों से नाम मात्र की संख्या रह जायेगी, एक सम्प्रदाय मात्र अवशेष रह जायेगा। राख की ढेरी में छिपी हुई एक चिंगारी की भांति जो अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है कि अब बुझी, तब बुझी यदि किसी ने चिंगारी को निकाल घास-फूंस-लकड़ी लगा फूंक मार अग्नि जला दी तो प्रकाश और ऊष्मा दे जीवन की रक्षा करती है, यदि न मिले तो राख हो जाती है। फिर अग्नि के लिए अरणि मन्थन ही करना पड़ता है वा गन्धक

बारूद को हर बार रगड़ना पड़ता है। इसलिए आर्य निर्माण की अग्नि को बुझने वा मन्द पड़ने न दे, यही मनुष्यमात्र की उन्नति का कारण है।

आर्य तो आर्य समाज बनाता है, जो उसका सदस्य बन गया, वही आर्य समाजी वा आर्य है, उसी को आर्य प्रतिनिधि सभा की भी मान्यता मिलती है, वहाँ तो कोई आर्य विद्या किसी को देता हुआ नहीं देखा जाता है, अधिक हुआ तो जलसा सुन लिया, सत्यार्थ प्रकाश पढ़ लिया, मुख्य करके सदस्य बनना जरूरी है, सदस्य नहीं बना तो आर्य ही नहीं, वहाँ तो आर्य बनना सरल है, फिर भी वहाँ संख्या नहीं बढ़ती है? आर्य होने का सर्टिफिकेट वही देते हैं, जिसकी मान्यता सर्वत्र है, क्या वे आर्य नहीं हैं?

आर्य प्रतिनिधि सभा एक संस्था है, जिसके सदस्य आर्य होने चाहियें, जो आर्य समाज से होते हैं, पहले तो आर्य बने, आर्य समाजें बनायी, फिर प्रतिनिधि सभा में गये। आज इसका विपरीत है, आर्य समाजें बनायी, व्यक्तियों को सदस्य बनाया, आर्य नाम रखा और प्रतिनिधि सभा का सदस्य बनाया, पहले आर्य समाज के संरक्षण के लिए सभा बनी, अब सभा को हड़पने, कब्जाये रखने के लिए आर्य समाजें बनाकर सदस्य बनाये। सदस्य अपने गुट के होने चाहियें, चाहे शराबी, कबाबी, मूर्तिपूजक, पाखण्डी, डोरे-गण्डे, कण्ठी-माला, तिलक धारी क्यों न हों? वे हर स्थिति में उन्हीं का साथ देंगे, यदि आर्य बनाकर सदस्य बनाते तो वे सिद्धान्त के अनुसार चलते, निर्णय करते, सत्य का साथ देते तो स्वार्थ पूर्ति ही नहीं होती, इसलिए सदस्य ही तो बनाना है, आर्य मानने का ठप्पा तो इनके पास है ही और यह ऐसा ठप्पा है कि कोर्ट आदि सभी जगह चलता है, इन्हीं में से मुगल शासकों की तरह कोई अन्य छल से इनसे ज्यादा सदस्य बना गया वा तोड़ लिया तो वह काबिज हो गया, बस इन्हीं के मध्य में यह होते-होते ५० वर्ष से अधिक हो गया है, यही क्रम चलता चला आ रहा है, यह एक

चक्र है जो थम ही नहीं रहा है, घूमता ही जा रहा है, यह तब तक घूमेगा, जब तक अन्न का एक दाना भी शेष रहेगा, लगता है ऐसा होना निकट ही है। दु:खद व्यवस्था बन गयी है। ऐसे स्वार्थी, दम्भी, पद लोलुप को आर्य कहना ऋषियों का अपमान करना है, ऐसे को चाहे दुनिया आर्य माने, कहे, लिखे, पढ़े, आर्य नहीं कहा जा सकता है, ये तो ठग हैं, ठगों का गिरोह बना रखा है जो आर्य समाजों को बर्बाद करने पर तुले हुए हैं, अधिकांश को तो बेचकर खा चुके हैं। शेष का किराया, सूद खा रहे हैं। यह सिमटता जा रहा है, नया क्योंकर बनेंगा, क्योंकि इसको तो आर्य ही बनायेंगे, आर्य इनमें हैं ही नहीं, हैं भी तो अल्प प्राण-निष्प्राण। दुर्जनों के आगे सज्जनों की कहाँ चलती है जब तक कि वे संगठित न हों और ये अपने को, अपनों को ढोल-ढपाड़े के साथ जोर-शोर से दुनिया भर में आर्य घोषित करते ही रहते हैं। तो इनको देखकर भूले-भटके भी आर्य क्योंकर बनेंगे, बनते भी नहीं, बने भी तो या इनमें इन्हीं जैसे हो मिल गये अथवा बाहर कर दिये गये वा स्वयं ही असमर्थ हो बाहर हो गये। इनका चक्र फिर गतिशील हो गया।

इन लोगों को आर्य कौन कहेगा, मानेगा अर्थात् कोई नहीं अर्थात् ये आर्य नहीं हैं। आर्य वैदिक सिद्धान्तों को जान, मान और ग्रहण करके बनता है, होता है, आर्य समाज का सदस्य हो जाने मात्र से कोई आर्य नहीं होता है, हाँ यह तो अवश्य होना चाहिए कि आर्य समाज में आर्य ही हों, आर्य ही होने चाहियें। कोई सर्टिफिकेट से वा प्रमाण पत्र से आर्य नहीं कहलाया जा सकता है, हाँ! आर्य विद्या ग्रहण करने वाला ही आर्य होता है। चाहे वह आर्य समाज, प्रतिनिधि सभाओं का सदस्य हो वा नहीं। परन्तु सदस्य हो, ऐसा होना चाहिये, क्योंकि उसका आधार तो आर्य है, आर्य है तो सब समाज, सभा, संस्था है, अन्यथा इन का कोई औचित्य वा भविष्य नहीं है। मात्र बखेड़ा -विवाद और स्वार्थपूर्ति ही है। इसीलिए ये लोग आर्य नहीं बढ़ाते, आर्य नहीं बनाते अपितु इससे चिढ़ते और भयभीत रहते हैं। हर तरह

के अडंगे लगाकर रोकने का प्रयास करते रहते हैं, दुष्प्रचार और हानि करते रहते हैं, तरह तरह के आरोप लगाते रहते हैं, आश्चर्य है! जिनका कर्त्तव्य ही इनका निर्माण और उन्नति है वे ही इसमें बड़े बाधक और शत्रु बने हुये हैं, ये तब तक और उन्हीं के सहयोगी हैं जो इनके सहायक बने रहें, ये जो भी सिद्धान्त विरूद्ध करें, सिद्धान्त विरूद्ध मानें, कुछ कहें न, चुपचाप रहें, जो सहयोग देवें, लेते रहें, इनका गुणगान और समर्थन करते रहें यही तो 'सम्प्रदायवादी' और 'सम्पत्तिहड़पवादी' सोच है, और यही विचार आर्यों के विनाश का कारण बना है। यथार्थ में इन पर पदासीन अधिकारी भी अधिकांश में आर्य ही नहीं हैं, तो आर्य को बढ़ायेंगे कैसे; बढ़ायेंगे क्योंकर? दुनियाभर में कोई आर्य नाम से प्रसिद्ध है, पूजित है, तो आर्य हो गया, यह आर्य होने की कसौटी नहीं है, जिसकी आर्य नाम से मान्यता है, वही आर्य होता है, यह भी आर्य का लक्षण नहीं है। आर्य वही है जो वैदिक सिद्धान्तों को ग्रहण किये हुए है। इसके उपरान्त वह मान्य हो, पूज्य हो, प्रसिद्ध हो अच्छा है, होना भी चाहिए परन्तु आर्य तो आर्य सिद्धान्तों वाला ही होता है।

अच्छा जो उपदेशक हैं, भजनोपदेशक हैं, अर्थात् जो व्याख्यान देते हैं, भजनोपदेश सुनाते हैं, आचार्य हैं- वेदोपदेश देते हैं, संन्यासी हैं- शङ्का समाधान करते हैं, शास्त्रार्थ करते हैं, उपदेश देते हैं, पुरोहित हैं- बड़े-बड़े यज्ञ कराते हैं, संस्कार कराते हैं, मुनि हैं- मनन करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, आचार्य हैं, महाशय हैं, आश्रम, गुरुकुल बनाते हैं, चलाते हैं, छात्र-छात्रा पढ़ाते हैं, योगी हैं- योगाभ्यास कराते हैं, व्यायाम कराते हैं, दुनिया भर में आर्य समाज का प्रचार-प्रसार करते हैं, सत्र लगाते हैं ये तो आर्य हैं, बिना इसके उपदेश आदि क्योंकर देते, गुरुकुल चलाते, यज्ञ करवाते, योगाभ्यास करवाते, और घण्टों-घण्टों भजन सुनाते हैं। दुनिया भर में नाम, मान-सम्मान है, पूरा का पूरा जीवन लगा दिया है, ये सब तो निश्चित

ही आर्य होने चाहियें? क्या उपदेशक, भजनोपदेशक, शास्त्री, पुरोहित, आचार्य, योगी, मुनि, संन्यासी आर्य से ऊपर हैं?

जो पौराणिक सिद्धान्तों को मानते हैं, वे वैदिक सिद्धान्तों की सरल व्याख्या ही पुराणों में मानते हैं, वे भी इनको पढ़ते हैं, कर्मकाण्ड सीखते हैं और चतुर्थाश्रमी होते हैं, योगी, मुनि भी बनते हैं। अर्थात् वे भी उपदेशक, भजनोपदेशक, शास्त्री, पुरोहित, आचार्य, योगी, मुनि, संन्यासी बनते हैं और जीवन पर्यन्त प्रचार-प्रसार करते हैं, लाखों की संख्या में हैं। आर्यसमाजों में भी उपदेशक, भजनोपदेशक, शास्त्री, पुरोहित, आचार्य, योगी, मुनि, संन्यासी हैं, सैकड़ों की संख्या में हैं, उनसे बहुत कम है। तो दोनों में अन्तर क्या है? कोई यह न सोचे कि गुरुकुल, आश्रम, संस्था, शंका समाधान, शास्त्रार्थ, यज्ञ आदि आर्यसमाजी ही करते-कराते, चलाते, बनवाते हैं। हिन्दुओं में इससे सैकड़ों गुणा अधिक यह गुरुकुल आदि हैं। मुसलमानों, ईसाई आदि में इसका स्वरूप और नाम आदि बदलकर कर वहाँ भी सैकड़ों गुणा अधिक है, जितने भी अन्य मत-मतान्तर हैं, जैसे- मदरसा, मौलवी, काजी, चर्च, पादरी, सेन्ट आदि। उनमें भी नाम आदि बदलकर कम और ज्यादा हैं, जैसे एक दो उदाहरण से अन्वेषण करेंगे तो जान जायेंगे, विवाह कैसे कराते हैं? और अन्त्येष्टि कैसे कराते हैं? कौन कराता है? और वे कैसे तैयार होते हैं? कहाँ तैयार होते हैं? तो सभी मत, पन्थ, सम्प्रदायों में इसका स्वरूप मिलेगा।

तो अपने यहाँ अन्तर क्या है? सभी में एक बात सामान्य मिलेगी वह है-

मुसलमानों में - मुसलमान होना, इसके बाद अन्य कुछ।
ईसाईयों में - ईसाई होना, इसके बाद अन्य कुछ।
यहूदियों में - यहूदी होना, इसके बाद अन्य कुछ।
बौद्धों में - बौद्ध होना, इसके बाद अन्य कुछ।

जैनियों में – जैनी होना, इसके बाद अन्य कुछ।

हिन्दुओं में – हिन्दू होना, इसके बाद अन्य कुछ।

अब हिन्दू कौन? इसमें समस्या अधिक है इसलिए एक दो उदाहरण पृथक् करते हैं-

पौराणिकों में – पौराणिक होना, इसके बाद अन्य कुछ।

सिक्खों में – सिक्ख होना, इसके बाद अन्य कुछ।

राधास्वामियों में – राधा स्वामी होना, इसके बाद अन्य कुछ।

निरंकारियो में – निरंकारी होना, इसके बाद अन्य कुछ।

आदि बहुतायत में हैं तो हमारे **उपदेशक, भजनोपदेशक, शास्त्री, पुरोहित, आचार्य, योगी, मुनि, संन्यासी आदि में सर्व सामान्य क्या होना चाहिये? निश्चित ही आर्य होना चाहिये।** आर्य होने के उपरान्त ही कोई उपदेशक, आचार्य, संन्यासी आदि होगा, आर्य से ऊपर क्या होता है? आर्य से नीचे क्या होता है? आर्य ही होता है अर्थात् इनमें से प्रत्येक को आर्य होना ही होगा, आर्य होना ही चाहिए, एक उदाहरण से देखें, समझें- यदि कोई भी ऋषि, मुनि, योगी, संन्यासी, आचार्य, पुरोहित, उपदेशक, भजनोपदेशक, संन्ध्या ही न करे तो कहे कि मैं तो उपदेश देता हूँ, सिखाता हूँ, इस कर्त्तव्य से ऊपर उठ गया हूँ तो क्या वह आचार्य, योगी, मुनि, संन्यासी है? नहीं है, अर्थात् पहले वह आर्य है, फिर कर्म निर्धारण पश्चात् अर्थात् प्रत्येक को आर्य सिद्धान्तों को जानना, मानना और ग्रहण करना ही होगा। पहली सीढ़ी पर चढ़ा नहीं और अन्तिम सीढ़ी पर अपने को पहुँचा हुआ माने, तो यह दुस्साहस और दम्भ ही कहा जायेगा, कोई कहे मैं तो आचार्य हूँ, सत्र लगाता हूँ, आर्य बनाता हूँ, सिखाता रहता हूँ, मेरे में यह रचा-बसा है। इसलिए मैं करूँ वा न करूँ एक है; तो यह तर्क केवल दिल बहलाने के लिए है, सन्ध्या कर्म प्रत्येक के लिए अनिवार्य है चाहे दिन भर सन्ध्या के मन्त्रों का प्रशिक्षिण ही क्यों न दिया हो। युद्ध के मैदान पर क्षत्रिय

योद्धा युद्ध विजय के उपरान्त वा अवकाश मिलने पर सन्ध्या करके तब भोजन करते हैं अर्थात् उन के लिए भी सन्ध्या-ईश्वर की उपासना अनिवार्य है, केवल समय, परिस्थिति और प्राथमिकता का निर्धारण मात्र में अन्तर होगा, अन्यथा प्रत्येक आर्य का यह अनिवार्य कर्म है, कोई लाख तर्क इसके विपरीत में दे लो, वह सब केवल कल्पना प्रसूत मापदण्ड होगा। इसी तरह से अन्य आर्य सिद्धान्त हैं। इसलिए यदि कोई भी भजनीक, उपदेशक, आचार्य, शास्त्री, मुनि, संन्यासी आर्य सिद्धान्तों को नहीं जानता, मानता और ग्रहण करता तो उसे आप कैसे आचार्य और संन्यासी कहोगे अर्थात् वह केवल खाल-खाल ओढ़े है आर्य तो है नहीं और आचार्य कहलावे, स्वामी कहलावे, विद्वान् कहलावे। ये सभी उपदेशक आदि तो आर्य ही बनते हैं, अन्य मतावलम्वियों के प्रचारक आदि उनके मतानुयायी ही बनते हैं, यह सर्वत्र दृष्ट प्राथमिक नियम है।

अर्थात् सभी को आर्य बनना ही होगा, आर्य सिद्धान्तों को ठीक ठीक मानना ही होगा, वैदिक सिद्धान्तों को यथामति नहीं, जैसा है वैसा ठीक-ठीक ग्रहण करना ही होगा, नाम मात्र, दिखावटी, उस से ऊपर उठ जाना वा उस अवस्था को पार कर जाना, वा आगे की कक्षा में पहुंच जाना यह सब सामान्य जन के लिए है, हम विशिष्ट हैं वा हम यह सब पढ़ाते हैं, इसकी आवश्यकता सामान्य को है, मुझे नहीं, हम योगी हैं, मुनि हैं, संन्यासी हैं, मेरी बराबरी सामान्य आर्य से नहीं है, मैं हर क्षण भगवान में ही रहता हूँ, मेरा भगवान से सीधा जुड़ाव है, मैं कर्त्तव्य कर्मों से ऊपर उठ गया हूँ आदि आदि जो कुछ भी तर्क-वितर्क हैं, सभी निरर्थक, हेय और अनुपादेय हैं। कोई दुनिया भर में प्रचार-प्रसार करते हैं तो वे बड़े हो गये जैसे Foreign Return (विदेश घूमकर आने वाले) को हम सम्मान देते हैं तो वे मान्य हो गये, इस कारण से ही हम उन्हें आर्य मानने लग जावें वा उन्हें आर्यत्व की आवश्यकता ही नहीं है। वे आर्यत्व से ऊपर उठ गये, ऐसा

कुछ मत मान लेना, सभी को सबसे पहले आर्य बनना ही होगा और आर्य की समान योग्यता है- आर्य सिद्धान्तों का ग्रहण करना। किसी ने पूरा जीवन लगा दिया वा पढ़ता-पढ़ाता रहा हो तो वह आर्य हो गया, यह केवल भ्रम और छलावे के अलावा कुछ नहीं हैं, यदि वे आर्य सिद्धान्त ग्रहण किये हैं तो आर्य, नहीं किये तो आर्य नहीं। सभी को आर्य रहना ही होगा, यदि आर्यत्व नहीं, आर्य सिद्धान्त नहीं तो उपेदशक, भजनीक, शास्त्री, आचार्य, योगी, मुनि, संन्यासी नहीं, यह गृहस्थों, ब्रह्मचारियों एवं सामान्य आर्यजनों के लिए ही नहीं है, अपितु सभी मनुष्य मात्र के लिए है तो कोई इससे बच कैसे सकता है पहले तो आदर-सम्मान से इन्हें आर्य सिद्धान्त सिखाओ, न माने तो ऐसे मूढ़ को निकालकर संगठन से बाहर करो, यदि ऐसा न कर सको तो इनका किसी भी प्रकार से सहयोग न करना चाहिए अपितु नाम मात्र से सत्कार अर्थात् नमस्ते भी नहीं करना चाहिये। ये तो पाखण्डी, दम्भी, ठगी और अन्धविश्वासी ही हुये, जो वेदमत इन पाखण्ड आदि के निराकरण हेतु ऋषि दयानन्द ने सबको जतलाया और शास्त्रों से प्रमाणित करते हुए ग्रन्थों में लिखा, उसी को न माने, उसके विपरीत चलते हुए, अपने को ऋषि दयानन्द और वेद से ऊपर माने तो उनको आर्य समाज में, आर्य संगठन में रखकर क्या करोगे, ये मूढ़ अपने आप तो डूबेंगे ही, अनेकों को भी पाखण्ड, असत्य के सागर में डुबो मारेंगे और जो आर्य सिद्धान्तों को जान, मान और ग्रहण कर आर्य हैं तथा विशेष परिश्रम कर उपदेशक, भजनीक, आचार्य, मुनि और संन्यासी आदि योग्यता से बने हैं, उनके प्रति सम्मान, कृतज्ञता, उपदेश श्रवण आदि कर अपने को सौभाग्यशाली मानना चाहिए, ऐसे आचार्य, संन्यासी आदि महानुभाव ही वेदमत का प्रकाश फैलाकर अविद्या अन्धकार में डूबी हुई क्षिप्त अवस्था में त्राहि त्राहि कर रही जनता का त्राण करने वाले हैं। ऐसों का आर्य समाज और आर्य संगठन में होना परम सौभाग्य की बात है। यही तो ऋषि ऋण को उतारने वाले

आर्यजन हैं।

आर्य कहलवाने और लिखने वाले भी एक दूसरे के विरोधी देखे जा रहे हैं, एक दूसरे को आर्य ही नहीं मानते हैं, सत्र में आर्य विद्या ग्रहण किये हुए भी विरोधी हो जाते हैं, फिर आर्य कैसे? आर्य किसको माने?

आर्य वैदिक सिद्धान्तों के मानने वालों को कहते हैं। वैदिक सिद्धान्त समान हैं, अलग-अलग नहीं हैं, इसलिए आर्य एक दूसरे के विपरीत और अलग-अलग नहीं होने चाहिये। विरोध तो परस्पर विरूद्ध होने से होता है परन्तु आर्य सिद्धान्त तो एक हैं अर्थात् समान हैं तो विरोध क्यों? विरोध करने, विरोधी होने के कारण हैं- एक ही सिद्धान्त को अलग-अलग ढंग से देखना अर्थात् अलग-अलग व्याख्या करना अर्थात् ठीक से समझ न पाना, सत्य एक है, एक ही दृष्टिकोण से दो व्याख्या सत्य नहीं हो सकती हैं दो उत्तर नहीं आ सकता है अर्थात् २-१=१ तो होगा, ५-४= भी १ होगा परन्तु २-१=२ कदापि नहीं होगा, २ में से १ घटाने पर १ तो आयेगा, २ और १ को बदलकर ५ मे से ४ घटाने पर भी १ आयेगा परन्तु २-१=२ नहीं हो सकता है अर्थात् समान राशि होने पर उत्तर समान ही आयेगा, राशि घट बढ़ जाये तो भी १ आ सकता है परन्तु समान राशि होने पर परिणाम एक जैसा ही होगा, विपरीत नहीं, यदि कोई कहे राशि समान हैं परन्तु परिणाम अलग-अलग हैं, नहीं होगा, १ ही होगा, ३-१=२ होगा, ४-१=३ होगा परन्तु २-१=१ ही होगा, २-१=२ वा ३ वा ४ नहीं होगा, अंक के उदाहरण से समझाने का तात्पर्य है कि समान दृष्टिकोण होने पर व्याख्या एक ही होगी, अलग अर्थ नहीं लिये जा सकते हैं, जैसे एक सेब समान स्थान और प्रकाश में देखने पर लाल ही दिखाई देगा, स्थान और प्रकाश तुल्य होने और आँखों में कोई रोग न हो, इतना होने पर कोई कहे कि सेब हरा है, दूसरा कहे लाल है, तीसरा कहे पीला है तो इनमें से एक ही सत्य होगा इसी तरह

तुल्य दृष्टिकोण, योग्यता, ... आदि होने पर व्याख्या एक ही होगी, दो हो ही नहीं सकती है। यदि अब भी है तो समझ न आने के कारण है- इसका कारण योग्यता का न्यून होना है, स्वार्थ के कारण भी व्याख्या अलग-अलग हो सकती है। ईर्ष्या, द्वेष, पक्षपात और अहंकार के कारण व्याख्या अलग-अलग हो सकती है। इसको संक्षिप्त से कहें तो अज्ञान और स्वार्थ के कारण व्यक्ति सत्य न ही समझ पाता है और समझना भी नहीं चाहता है, दोनों वा एक के होने पर विपरीत ही व्याख्या करता है, इसमें अज्ञान वाला ज्ञान होने पर समझ भी सकता है परन्तु दूसरा तो कभी समझेगा ही नहीं, उल्टी ही व्याख्या करेगा, उसे सत्य समझाने के लिए एड़ी चोटी का जोर लगा देगा, सामर्थ्य वाला है तो सम्प्रदाय खड़ा कर लेगा, कम सामर्थ्य है तो थोड़ा बहुत व्याख्यान देगा, पुस्तकें लिखेगा और इधर-उधर, यहाँ-वहाँ विरोध करता घूमेगा। ऐसे हजारों-लाखों में हैं। एक आर्य का दूसरे आर्य के साथ सैद्धान्तिक विरोध कदापि सम्भव नहीं है, यहाँ मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना, तुण्डे-तुण्डे सरस्वती अर्थात् सबकी अलग-अलग मति और अलग-अलग बोली होती है, यहाँ यह नही होती है। सिद्धान्त में तो एक ही मति और एक ही बोली होती है। इसलिए कभी भी आर्यों में वैर-विरोध था ही नही, होता ही नही और होगा भी नही, वैसे थोड़े ही आर्य चक्रवर्ती राजा होते थे, उसका मुख्य कारण ही एक होना-संगठित होना है, वह केवल और केवल एक ही आर्य सिद्धान्त होने से थी, यदि होना है तो रखना होगा अन्यथा कैसा आर्य? कौन आर्य? हिन्दुओं के मत-पन्थ-सम्प्रदाय आर्य सिद्धान्त विरुद्धता के कारण ही तो हैं। आर्य निर्माण सत्र में तुल्य विद्या ग्रहण होने पर भी विरोधी देखे जाते हैं तो उसका भी कारण न समझ पाना वा स्वार्थी होना है, न समझ पाने के कारण; स्वयं समझ में नहीं आया वा दूसरे मत वा स्वार्थी ने विपरीत समझा दिया, तो वैसा मान लिया, अशिक्षा तो है ही, निष्क्रिय हो गया वा विरोधी हो गया, ऐसे ५-६% हो सकते हैं।

स्वार्थी ने विद्या ग्रहण कर ली और स्वार्थपूर्ति वहाँ होती न देख, उसमें त्रुटि निकालनी प्रारम्भ कर दी, व्याख्या बदलनी प्रारम्भ कर दी, दोष लगाना प्रारम्भ कर दिया, पहले छिप-छिप कर फिर बकवृत्ति की तरह अवसर देख प्रकट में विरोध करना प्रारम्भ कर देते हैं परन्तु सम्मुख आकर तर्क-वाद करने का सामर्थ्य नहीं जुटा पाते, सत्य तो यह है कि इनमें सामर्थ्य होती कहाँ है, होती तो सत्य समझ तथा ग्रहण न करते, ऐसे स्वार्थी तत्व श्रेष्ठ कार्यों में विघ्न डालते ही रहते हैं, ऐसे भी १-२% होते रहते हैं, इनसे संघर्ष करके आर्य को आगे बढ़ना ही होता है। इन दोनों को मिलाकर और भी इसमें थोड़ा जोड़ लें कि जिनकी वास्तव में ऐसी-ऐसी समस्याएँ होती हैं जिनसे वह लड़ नहीं पाता है तो वापस उसी मत में चला जाता है, कुल मिलाकर अधिकतम १०% होगी। यदि किसी कार्य में ९०% सफलता मिलती है तो वह कार्य अतीव सफल ही माना जायेगा, प्रयास होवे कि १००% सफल हो परन्तु उपरोक्त परिस्थितयों को देखते हुए ९०% भी सफल होते हैं तो सर्वोत्तम निर्माण फल है। यह हो भी रहा है, स्वार्थी लोग बड़े तरीके से, बड़े समय से और बड़ी निष्ठुरता से जाल बुनते हैं जिनमें सावधान न हों तो बड़े-बड़े बुद्धिमान भी लहू-लुहान हो जाते हैं, झांसे-फांसे में आ जाते हैं, जब तक समझ आती है तब तक लुट-पिट कर संगठन से बाहर होकर एकाकी निराश जीवन जीने के लिए विवश हो जाते हैं, संगठन का पुनः विश्वास भी अर्जित नहीं कर पाते हैं और तब निराश वा विरोधी जीवन जीते हैं 'सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग' एक दूर का, दिवा स्वप्न ही होकर रह जाता है। इसलिए जो इस प्रकार से सत्यग्राही और सत्यमानी संगठन से दूर होते हैं, वे एक ही आर्य सिद्धान्त मान ही नहीं सकते हैं, निश्चित ही उनमें दोष देख-दिखलाकर लोगों को भ्रमित करते हैं वा किसी आर्य में कार्य का वा आचरण में दोष दिखलाकर पृथक् करते वा पृथक् होते हैं वा तुल्य लोगों को इकट्ठे कर गुट बना स्वार्थ पूर्ति करते हैं

चाहे वह पद, प्रतिष्ठा, लोभ, दम्भ, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष के रूप में एक वा अनेकों के रूप में हो।

ऐसे लोगों को आर्य नहीं कहना चाहिए, इससे आर्य जनता वा सामान्य जनता को सतर्क भी करते रहना चाहिए जो इतने पवित्र संगठन से दुराग्रही हो स्वार्थ पूर्ति कर अहित करते हैं, वे जनता-जर्नादन को अच्छी तरह से लूटेंगे-खसोटेंगे, उन्हें क्योंकर छोड़ेंगे, वे क्योंकर बच पायेंगे। इसलिए आर्य एक ही होता है, एक ही अर्थात् तुल्य ही सिद्धान्त को मानने वाले होते हैं, इनमें सैद्धान्तिक मत-भेद नहीं होता है, कार्य शैली में अन्तर हो सकता है, उसको भी बुद्धिमत्ता से सर्वोत्तम का चयन कर संगठित हो कार्य करते हैं, विश्व भर में कोई भी आर्य कहीं पर भी, किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो एक ही तुल्य आर्य सिद्धान्त को मानता और आर्य कहलाता है और चाहे पड़ोस में वा घर में रहने वाला व्यक्ति भिन्न वैदिक सिद्धान्त को मानता है तो वह आर्य नहीं हैं, उसे आर्य नहीं माना जाना चाहिए, आर्य नहीं कहा जाना चाहिये, चाहे वह कितना ही प्रसिद्ध आर्य क्यों न हो, बड़े जोर-शोर से अपने को आर्य कहलवाता हो, कितनी ही पद-प्रतिष्ठा-योग्यता क्यों न हो, चाहे वह आचार्य गण ही क्यों न हो, आर्य एक आर्य से सैद्धान्तिक मतभेद वा वैर-विरोध कभी भी, कहीं भी नहीं रख सकता है। न रखना चाहिये और न ही रखेगा, यदि है तो वह आर्य ही नहीं है। आर्य तो आचार्यगणों में भी अनुस्यूत है ही, वह भी आर्य अथवा आचार्य गणों से वैर-विरोध गुटबाजी नहीं रख सकता है, ऐसे विरोध करने वाले को कौन आचार्य मानेगा जब वह आर्य के सामान्य गुणों से ही रहित हो, इसी तरह कोई आर्य नेता हो, आर्य धनिक हो वा आर्य पदाधिकारी हो, उसे प्रथम आर्य होना ही होता है, इस कारण से एक ही सिद्धान्त को मानने वाला होगा, अलग हो ही नहीं सकता, स्वार्थ वा अज्ञान ही उसे अलग करायेंगे, तो वह सिद्धान्तों से समझौता करेगा, उसकी विपरीत व्याख्या करेगा और

परस्पर फूट डाल विरोध करेगा, तो उसे आर्य कैसे मानोगे, वह आर्य कैसे हुआ अर्थात् आर्य नहीं हुआ, ऐसे लोगों से सतत सतर्क रहना चाहिए। आर्य संगठन से ऐसे लोगों को पृथक् करते निकालते रहना चाहिए, चाहे वे कितने ही बड़े पदों पर क्यों न हों, यदि सौभाग्य से संगठन के शीर्ष पद वा संगठन में ऐसे सुदृढ़ आर्य होते हैं तो ऐसे स्वार्थलोलुपों से रक्षा कर ले जाते हैं, नहीं तो ऐसे स्वार्थी और मूढ़ लोगों के हाथों में पड़ अच्छे से अच्छा संगठन भी छिन्न-भिन्न हो जाता है और आर्य जाति को (समूह) सुदिन का दिन देखने के लिए सदियों तक टकटकी लगाये देखते रहना पड़ता है, इन्तजार करते रहना पड़ता है, तब भी दिन सुदिन होगा कि नहीं कह नहीं सकते हैं, अनुमान नहीं लगा सकते हैं। लोग अपने थोड़े से स्वार्थ के लिए अत्युत्तम संगठन की भी बड़ी हानि करके कुछ नहीं सोचते हैं, उल्टे अपने मन को तसल्ली देने के लिए बड़े-बड़े खोखले तर्क गढ़ लेते हैं कि हमने बड़ा अच्छा कार्य किया, हमारा प्रयास सफल रहा, आश्चर्य की बात है। यह तो मनुष्यपन ही नहीं है, ऐसे लोग आर्य क्योंकर हो सकते हैं, ऐसे लोगों को मानव ही नहीं अपितु प्राणिमात्र का शत्रु ही समझना चाहिये। **'इसलिए आर्य एक, क्योंकि आर्यों का वैदिक सिद्धान्त एक।'** केवल और केवल एक-तुल्य आर्य सिद्धान्तों को जानने, मानने और ग्रहण करने वालों को आर्य कहा जाना चाहिए, आर्य कहते हैं, आर्य हैं।

आर्य तो वह होता है जो प्रत्येक बात का खण्डन करने का सामर्थ्य रखता हो, आर्य का तात्पर्य बुद्धिमान, आर्य तो वह है जो बाल की खाल निकालने में भी सक्षम होता है, जब विरोधियों का खण्डन नहीं कर पाता है तो योग्यता तो है फिर अपनों का ही खण्डन करके अपनी योग्यता सिद्ध करता है, योग्यता है तो उसे सार्थक करना ही है, असत्य का न सही सत्य के छिद्रों को ही ढूंढ-ढूढ कर खण्डन करता है, थोड़ा बहुत सत्य की भी हानि हो गयी तो क्या

हुआ, गेहूँ के साथ घुण-सुरसुरी तो पिस ही जाती है, आज योग्यता रही तो कल पाखण्ड खण्डिनी भी उड़ेगी। इसलिए जहाँ कहीं मिले धार तेज करनी ही चाहिये। आर्य वही जो खण्डन-मण्डन करे। लड़े। सबमें कमियाँ ढूँढे। कम समझ है तो सत्य को भी लपेटे में ले ले, विरोधी का विरोधी मित्र बनावे क्योंकि चाणक्य नीति के असली उत्तराधिकारी यही तो हैं, परीक्षण कहीं तो करना है, यहीं सही, थोड़े होने के कारण राजनीति करना सम्भव ही नहीं है तो गुण तो विकसित करते ही रहना चाहिए, तोड़-फोड़-जोड़-मोड़-होड़ तो बपौती ही है इनकी, इसलिए आर्य वही है जो इन शोभायमान गुणों से सुशोभित हो? और ये तो स्वतः आ ही जाते हैं, इसके लिए विद्या देने का उपक्रम क्यों करें, छोटे से लेकर बड़े तक, बालक से लेकर बूढ़े तक शब्द में व्यवहार में ये आ ही जाता है, पण्डित वही जो गाल बजावा की तरह पण्डित तो बनना ही है आर्य वही जो गाल बजावा, खण्डन करावा, पञ्च सवारों में नाम करावा, तभी आर्य कहावा। यदि चुपचाप मान लिया, व्यवहार में ले आया तो भेड़ कहावा, इधर की पंक्ति-उधर की पंक्ति जोड़ विद्वान् कहावा, पण्डित कहावा, लेखक कहावा, कवि कहावा और कुछ भी लिखकर चाहे, वह सत्य का नाश करे वा असत्य का नाश करे, योग्यता न होने से यह पता ही नहीं चल पाता है, अपने को ऋषियों से भी ऊँचा समझता है और सुहृदों की विरुदावली तथा भेंट पाकर और अधिक योग्यता तथा तीव्रता से इसी महान् कार्य में उद्यत हो माया का विस्तार करता है फिर नव दर्शन, नव आर्य बनाता है और फिर एकला चलो रे का मधुर रस घोलता हुआ गीत गुन-गुनी धूप सा आनन्द दे, आनन्दित होता और आनन्दित करता है। यही तो आर्य के मुख्य गुण और पहचान है, इसी से तो जाना जाता है कि वह आर्य है। ठीक कहा न

मैनें?

आपका यह प्रश्न है कि उत्तर है जैसे यह समझ नहीं आता है, आप प्रशंसा कर रहे है या निन्दा कर रहे हैं, यह समझ नहीं आता है। आप आर्य के गुण बता रहे हैं या दोष बता रहे हैं यह समझ में नहीं आता है। आप उपहास कर रहे हैं या लक्षण बता रहे हैं, यह समझ में नहीं आता है। आप व्यंग्य कर रहे हैं या सत्य का चित्रण कर रहें हैं, यह समझ नहीं आ रहा है। आपके द्वारा बताये गये गुणों को धारण करें या छोड़ें, यह समझ नहीं आ रहा है, आप मुझे बता रहे हैं या प्रश्न कर रहे हैं, यह समझ नहीं आ रहा है। अब आप जो समाधान बतायेंगे उसको मानूँ या मानूँगा, यह भी समझ नहीं आ रहा है, आपके ही समाधान को क्यों मानूँ, जब सभी कहने, सुनने, लिखने, पढ़ने, मानने के लिए स्वतन्त्र हैं, तो हम भी स्वतन्त्र हैं, यह भी निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ, परन्तु इसमें भी कमियाँ ढूँढू, यह ही केवल एक मात्र समझ में आ रहा है।

आर्य बुद्धिमान होता है? इतना तो होता ही है कि सामान्य रूप से अपना हित-अहित समझ सके, आर्य वैदिक सिद्धान्तों को ग्रहण करने का नाम है, परीक्षा करके वा कराके वह आर्य सिद्धान्तों को मानता है और ग्रहण करता है तभी आर्य कहाता है आर्य गुण तो हों न और आर्य सिद्धान्तों की रक्षा के लिए खण्डन-मण्डन का हथियार शत्रु विनाशक परशुराम की तरह उठाये फिरे धरती को अनेकों बार शत्रु विहीन करके दान दे, यह पौराणिक गल्प मात्र है। आर्य मूर्ख और धूर्त नहीं होता है कि वह सत्य का भी खण्डन करता रहे, अपने स्वार्थ के लिए बिना समझे कि इसका परिणाम आर्यजनों का विनाश करेगा वा सृजन करेगा, कुछ भी कहता रहे लिखता रहे, सत्य में छिद्र नहीं होते हैं उसमें भी सत्य को असत्य बना, अपनी क्षुद्र और कुत्सित आकांक्षा की पूर्ति के लिए खण्डन करता रहे और उसको सही ठहराने के लिए भी तर्क गढ़ता रहे। यह अनार्य और दस्यु लोगों का कार्य है,

आर्य के वेष में यह दस्यु का ही कार्य है, आर्य के वेष में दस्यु, दस्यु का अर्थ लुटेरा, डाकू, ही नहीं है, दस्यु का अर्थ व्यापक है जो आर्य गुणों, आर्य सिद्धान्तों, आर्य परम्पराओं, आर्य लक्ष्यों से सामान्य जनों एवं आर्यजनों को भटकाते, पृथक् करते, भ्रमाते और स्वयं का शत्रु बना डालते हैं, दस्यु ही कहलाते हैं, ये समाज के भीतर भी होते हैं और बाहर भी होते हैं। इनको बाहर रखने में ही भलाई है, केवल आर्यजन के ही लिए नहीं, मनुष्यमात्र के लिए ही नहीं अपितु प्राणिमात्र के लिए आवश्यक है, ये ही माँसखोर हैं, ये ही सिद्धान्त के हत्यारे होते हैं, ये ही गुलामी के सबसे बड़े कारक हैं, ये स्वार्थ पूर्ति करते-करते अपने को नष्ट करते ही करते हैं, अपितु सारी मनुष्य जाति, आर्य जाति को ही ले डूबते हैं, इन्हीं स्वार्थी, दम्भी, मूर्ख लोगों ने यवनों-मुगलों-अग्रेजों आदि आक्रान्ताओं को बुलावा वा प्रश्रय दे, भारत को खण्ड-बण्ड कर गुलामी के अन्धकूप में ढकेल कर काल कवलित हो गये, ये आर्य समाज में भी हैं और आर्य समाज को ले डूब रहे हैं, इन्होनें गेहूं के साथ सुरसुरी को पीसते-पीसते सत्य और वेद को ही डुबो दिया है, जो आर्यजन वेद के पीछे चलते हैं, सत्य के पीछे चलते हैं, उनको भेड़ बताते हैं, ये मूर्ख और धूर्त कपट वेशधारी आर्य वा आर्य समाजी चार्वाकों की तरह तर्क शास्त्री की भी खाल ओढ़े नास्तिक और दस्यु ही हैं। ये कहते हैं कि कोई भी सर्वज्ञ नहीं है। हमारी विचारधारा भी चलनी चाहिये। **सर्वज्ञ की कृति वेद तो हमारे पास है ही, फिर हम उसके अनुसार क्यों न** चलें। इससे क्या हम पिछलग्गू और भेड़ हो गये, ये मूर्ख, दम्भी, मन्दमति, धूर्त और कपटी उसका-सर्वज्ञ का आश्रय ले सबको संदिग्ध बना अपने को भी मान्य सिद्ध करना चाहते हैं, जिन लोगों ने शास्त्रों का समुचित अध्ययन कर उस सर्वज्ञ के विधान वेद को जाना, समझा और धारण किया है, उस महाविद्वान् वा विद्वान् के समकक्ष मूढ़मति अपने को भी खड़ा कर सारे ज्ञान और सौभाग्य पर ही चौका लगाना चाहते हैं, ऐसे लोग ही अप्रकट वा प्रकट

दस्यु ही हैं वा दस्युओं के बहकावें में प्रकट वा अप्रकट अपने विनाश करने पर ही तुले हुए हैं, दस्युओं के बहकावेपन को भी दस्यु लोग अपना ढाल बना लेते हैं, यही तो इनका चार्वाकपना, कुटिलता और छल-छद्म है। सरलता का भी, त्याग का भी, दान का भी, बलिदान का भी ढाल बना सामान्यजनों को ठगते रहते हैं, ये किसी अभिनेता की तरह कथा गढ़ने और आंसू बहाने में भी क्यों पीछे रहने लगे अपितु एक कदम आगे ही रहते हैं और ठगकर अपने क्षुद्र स्वार्थ की पूर्ति कर जीवनयापन करते हैं, अभिनेता तो अभिनय का धन ले दूसरे अभिनय की तरफ बढ़ जाते हैं, ये भी नये-नये अभिनय को ढूँढ स्वांग कर स्वार्थ पूर्ति करते रहते हैं। ऐसे लोगों से संगठन के अलावा व्यक्तिगत रूप से बचना असम्भव नहीं तो महाकठिन अवश्य है। पवित्रतम आर्य संगठन में सामूहिक ज्ञान और परिज्ञान से ऐसे मूर्ख स्वार्थियों को समझ-पृथक् करके बचा जा सकता है। संगठन के पास सामर्थ्य भी अधिक होता है, ऐसे लोगों के प्रत्याक्रमण से रक्षा भी की जा सकती है और इससे हुये नुकसान की भरपाई भी हो सकती है, व्यक्तिगत ऐसे लोगों से निपटना कठिन हो जाता है क्योंकि ऐसे छली कपटियों का दल भी शीघ्र बन जाता है, ऐसे लोग भी इकट्ठे होकर अपने-अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए कुछ भी करते, कर सकते और करते रहते हैं। ऐसे लोग संगठन की न मान कर एक-एक स्व अनुकूल आर्यों को बरगलाते, भ्रमाते, ठगते और तोड़ते रहते हैं।

संगठन के पास अधिक सामूहिक ज्ञान होने से प्रत्युत्तर होते हैं, वहाँ मौन धारण कर जाते हैं, साधारण जन के सामने संगठन की बुराई, अपने त्याग की झूठी बड़ाई कर स्वयं को बलिदानी सिद्ध करने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं, अपने को अपने छोटे से त्याग से स्वसम्मोहित हो बहुत बड़ा मान लेते हैं दूसरे के त्याग को राई के दाने बराबर मान तिरस्कृत कर देते हैं, इस प्रकृति के लोग अपने वा संगठन के लिए घातक के अलावा और क्या हो

सकते हैं।

ऐसी प्रकृति के लोग हर एक से अलग ढंग से बात करते हैं कि जिससे सत्य ज्ञान हेतु तुलना ही न की जा सके और सभी के सामने रोते रहते हैं, जिससे लगे कि सर्वाधिक पीड़ित यही हैं, परन्तु अवसर मिलते ही वा शिथिल होते ही नुकसान करने से पीछे नहीं रहते हैं, यह प्रवृत्ति बड़ी घातक होती है, ऐसे व्यक्ति को पृथक् रखने में ही भलाई है, ऐसे को न सहयोगी और न विरोधी ही रखना चाहिये, ऐसे का तो साहचर्य ही विनाशक है।

कुछ लोग स्वार्थपूर्ति तक बड़े भक्त रहते हैं, सिद्धान्तों को मानने का और समर्पण का पूरा दिखावा करते हैं परन्तु स्वार्थ पूर्ति न हो वा कम हो वा रोक लगे तो भक्ति खुले कपूर की तरह पता नहीं कहा घुल जाती है, ऐसे रूप के दर्शन होते हैं, मानो इनसे बड़ा शत्रु कोई नहीं और पूर्व किये हुए विश्वास और सहयोग से लाभ ले संगठन को ही नुकसान करने का स्वांग रचते वा नुकसान करते भी हैं, ऐसे लोग सत्य बातों को ही घटिया, स्वच्छन्द बताने लगते हैं, मानो पौराणिक स्रष्टा ब्रह्मा जी की ही वाणी प्रस्फुरित हो रही हो, दूसरे मतवालों की, विरोधियों की, वेदनिन्दकों की और स्वकल्पित मान्यताओं को सत्य और सत्य को झूठा बताते रहते हैं। कहीं से भी वाक्य उठाकर, किन्हीं भी अर्थ में युक्त कर यदाकदा पूरा कर, उस लेखक का भी नाम लिख अपनी निकृष्ट भावनाओं को व्यक्त कर बड़ा लेखक वा व्यंग्यकार वा अधर्म के खिलाफ खड़ा होने वाला वा जवाब देने वाला समझ, मान गौरवान्वित महसूस करते हैं, ऐसे मूर्ख, धूर्त और विश्वासघाती स्वयं तो जीवन बर्बाद करते ही करते हैं, अनेकों अल्पबोध के भी भ्रम का कारण बन नुकसान करते हैं, ऐसे को क्या आर्य मानेंगे? इन्हें कभी आर्य नहीं मानना चाहिये। किसी की झूठी बातों को न माने तो उसे ही अहंकारी घोषित करने में ऐसे मूर्ख क्योंकर देर लगावेंगे, झूठी बातों को भी मानने

वालों को विनयी और सत्य पर अडिग रहने वालों को रावण, कुम्भकर्ण, कंस बतावेंगे और अपने को आर्य वा आर्य सहयोगी कहलावेंगे, आश्चर्य है! ये मूर्ख, धूर्त, विश्वासघाती, दस्यु नहीं तो क्या हैं? जो किंचित् भी बुद्धि से बिना विचारे सत्य की ही हत्या करते चलते हैं और अपने पैर पर कुल्हाड़ी वा कुल्हाड़ी पर ही पैर मार घायल हो जीवनपर्यन्त रुग्ण ही पड़े रहते हैं, आर्य बन सत्य को जान जिनको पहले असत्य वाला समझा था, स्वार्थपूर्ति न हुई तो उनका भी साथ लेने वा देने में नहीं हिचकते हैं, उसे भी वेद का प्रचारक कहने लगते हैं और साथ दे सत्य को ही डुबोने का कार्य करते हैं, ऐसे नराधम कहीं से भी क्या आर्य हो सकते हैं? कहते हैं पहले सत्य नहीं जाना था, अब जान लिया, ऐसे स्वार्थ में निमग्न व्यक्ति को यह याद ही नहीं रहता है कि असत्य को छोड़कर ही तो आर्य बने थे, वह सत्य जो तीनों कालों में अकाट्य है, सार्वभौमिक है और अपराजेय है। अब इसको भी छोड़ असत्य को ही सत्य मानना क्या अद्भुत विवेकशीलता है? यह मूढ़ता, स्वार्थ, अहंप्रवृत्ति और विश्वासघात के अलावा कुछ नहीं है। ऐसे को आर्य मानना वा आर्यों का सहयोगी मानना निरर्थक और नुकसान दायक ही है।

आर्य के सिद्धान्त एक होते हैं तो एक आर्य दूसरे आर्य का खण्डन-कैसे कर सकता है, यदि गुण ग्रहण और दोष निवारण करवाना है तो ढोल ढ़पाडे की भी जरूरत होती है क्या? यदि जरूरत है तो वह आर्य कैसा, उसे बाहर क्यों नहीं करते हो?

आर्य तो सत्यग्राही और असत्यत्यागी होता है। इसलिए वह धैर्य, बुद्धिमता, सरलता और प्रमाणों से परीक्षित कर सत्य ग्रहण कर ही लेगा, उसके लिए भी खण्डन-खड्ग की जरूरत है क्या? यदि है तो वह कपटवेश धारी छली, दम्भी के अलावा क्या हो सकता है। इसलिए एक आर्य कभी भी दूसरे आर्य का खण्डन नहीं कर सकता वा करता है, दस्यु का तो करेगा ही और करना भी चाहिए परन्तु दस्यु वह आर्य है भी वा नहीं,

इसका निर्णय व्यक्तिगत न करके सामूहिक वा आर्य संगठन को ही करने देना चाहिए। आप कहो कि संगठन में ही कमी है तो व्यक्तिगत में क्यों नहीं होगा, यह सहज समझा जा सकता है, अतः अहंकार में न पड़कर **अनेकों बुद्धि समूहों वाले संगठन** को मानना आवश्यक है, यदि ऐसा नहीं मानोगे तो अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता, उसे ही नष्ट होना होगा, होना भी चाहिए, करना ही होगा, करना ही चाहिये। जो आर्य नहीं है, वहाँ तो लक्षणों को देखकर निर्णय लिया जा सकता है उसे सुधारा वा उससे सावधान हुआ जा सकता है। आर्य परस्पर एक दूसरे के विरूद्ध गुटबाजी नहीं करते हैं अपितु संगठित होकर दस्युओं से लड़ सकते हैं यदि वे ही परस्पर स्वार्थ वा तुष्टि के लिए लड़ते हैं तो उनमें एक पक्ष वा उभय पक्ष के दस्यु होने में क्या सन्देह है, उनको पृथक् करना ही चाहिए, उनसे पृथक् होना ही चाहिये। एक आर्य वैदिक सिद्धान्तों को जान, मान, धारण कर शान्तचित्त, धैर्यचित्त हो स्वकर्म में निरत रहता है, सामर्थ्य वा रूचि खण्डन-मण्डन में नहीं है तो वह आर्य क्यों नहीं! क्या वह वेद का अनुगन्ता! श्रेष्ठ! नहीं है, अवश्य श्रेष्ठ है, आर्य है। एक व्यक्ति आर्य इसलिए बनता है कि वह खण्डन-मण्डन करेगा, पुस्तक लिखेगा, लेख लिखेगा, व्याख्यान देगा, अपने को भी सिद्ध करेगा, चाहे योग्यता हो वा न हो, प्रसिद्धि के लिए सत्य सिद्धान्तों को ही गलत सिद्ध करता रहेगा, परन्तु प्रसिद्ध जरूर होगा, ऐसे मूढ़ आर्य हो ही नहीं सकते हैं, आर्य नाम की खाल जरूर ओढ़े रह सकते हैं, और खाल बनी रहे इसलिए अन्य आर्यों का खण्डन आवश्यक हो ही जाता है, ऐसे लोग झटिति दोष ढूंढ अपने को एकमात्र सच्चा आर्य घोषित करने में देर क्योंकर लगायेंगे अर्थात् तुरन्त बतावेंगे।

आर्य विद्वान् है तो वह अवश्य आवश्यकतानुरूप, संगठन से अनुमति ले जनता के हितार्थ लिखे, छपवाये, आवश्यकता नहीं है तो क्यों काले, पीले, नीले अक्षरों से कागज, श्रम और धन को व्यर्थ करें, ऐसी

पुस्तकों की भरमार है, पता नहीं क्या सोचकर लोग पुस्तकों पर पुस्तकें लिखे ही चले जा रहे हैं, जीवन काल में ही वा काल कवलित हो जाने पर भी ग्रन्थ की उपादेयता मात्र देखी जाती है, पुस्तक नहीं, पुस्तक लिखकर लेखक वा विद्वानों में शुमार क्यों होना चाहते हैं, पता नहीं, पुस्तक जनता के हितार्थ है वा नहीं अपने विवेक से ही निर्णय कर कागज को काला, नीला करते रहते हैं। आर्य संगठन को आवश्यक होने पर ही ग्रन्थ आदि लेखन की अनुमति देनी चाहिए, अन्यथा भ्रम वा अन्धविश्वास से छुटकारा पाना असम्भव ही होगा यही आर्य समाज में सवा सौ वर्षों में हुआ और हिन्दुओं में हजार से अधिक वर्षों में, आर्य सन्तति में हजारों वर्षों से हो रहा है। यही प्रवृत्ति जिसमें स्वार्थ पूर्ति की भी युति है, पुराणों के जनन का कारण बनी है। आर्य सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन करता है, परन्तु सबसे प्रथम उसे आर्य बनना ही पड़ता है, तब आवश्यकतानुसार सत्य वा असत्य का खण्डन-मण्डन करता है, यह आना चाहिए परन्तु आर्य का मण्डन और दस्यु का खण्डन ही हुआ, आर्य का ही खण्डन नहीं, यदि दस्यु ही नहीं है तो खण्डन क्यों, ऐसा तो बहुत अच्छा है, विघ्न रहित हो जीवन के लक्ष्य पूर्ति की तरफ बढ़ चलेगा, विघ्न का हटाना तो लक्ष्य पूर्ति के ही लिए है। विघ्न हटाना केवल लक्ष्य नहीं है। आर्य संगठित रहता है आर्य संगठन बनाता है, एकला चलो क्यों? यह तो अहंकार की चरम सीमा हुई कि मैं किसी की सुनूंगा नहीं, कोई मेरी मानता नहीं, अरे! बुद्धिमान! बुद्धि, त्याग और अन्यों के हित कामना से परिश्रम करने वाले की लोग क्यों नहीं मानेंगे आज नहीं तो कल मानेंगे, पशु भी आपके इर्द-गिर्द घूमने लग जाते हैं प्रतिदिन भोजन देकर तो देखिए, मनुष्य तो बुद्धि वाला होता है, कम वा ज्यादा बुद्धि वाला सामान्य हित वा हितैषी को समझता ही है। अरे ठगने वालों को जनता मिल जाती है तो सुधारने वालों को ही नहीं मिलेगी, ऐसा कभी हुआ है? नहीं हुआ है, यह मानव प्रवृत्ति है, इसलिए निराशा छोड़,

स्वार्थ छोड़, आर्य सिद्धान्तों को समझ और धारण करके संगठित होकर आर्य निर्माण करना ही चाहिए।

ऋषि और आर्य विद्वान् मान्य हैं, सत्कार करने के योग्य हैं, उनके कहे पर श्रद्धापूर्वक विचार करना ही चाहिये, उसे सामान्यजन की वाणी मात्र नहीं समझना चाहिए, अपने को उनके समकक्ष मान अवहेलना, अश्रद्धा, उपहास वा कटुवचन नहीं सोचना वा कहना चाहिए, परन्तु यह सुनिश्चित होने पर ही कि वे विद्वान् हैं ऐसा न हो कि वह विद्वान् के वेश में ठग, धूर्त और पक्का स्वार्थी हो। हाँ इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि ऋषि/विद्वान्/आचार्य की बातों को भी सत्य वचन मान ग्रहण नहीं करना चाहिए अपितु जितना अपना ज्ञान है उसके अनुसार प्रमाणों से परीक्षित करके ही मानना चाहिए, 'स्वस्य च प्रियमात्मनः' का भी तात्पर्य यही है। और उन की कही हुई बातें उचित न होने पर उन विद्वानों से पूछनी और जतानी चाहिए, आखिर विद्वान् तो सत्यग्राही ही होता है, वह सत्य क्योंकर न मानेगा अर्थात् अवश्य मानेगा, यदि हमें नहीं समझा पाया, न ही संगठन के अन्य आर्य विद्वानों को समझा पाया और न ही माने तो उसे हठी, दुराग्रही क्यों न माना जावे? ऐसे को क्योंकर विद्वान् मानें, परन्तु इसका निर्णय भी यदि आर्य संगठन है, उन्हें ही करने दिया जाना चाहिये, स्वयं से किसी मान्य विद्वान् का अहित हो, समाज का अहित होवे इससे बचना आवश्यक है परन्तु वह विद्वान् का लबादा ओढ़े अनार्य ही हो तो उससे बचना और अन्यों को बचाया जाना चाहिये। आर्य को गुणों को धारण करने में तत्परता दिखानी चाहिए, न कि खण्डन-मण्डन मात्र में। खण्डन-मण्डन भी आवे तो श्रेयस्कर है, खण्डन-मण्डन मात्र रहे और आर्य गुण ही न हो तो उसे अनार्य होने से कौन रोक सकेगा अर्थात् वह शीघ्र ही आर्य से पृथक् होगा। ऐसे लोगों को चिन्हित कर उनसे सावधान रहना ही चाहिए, वेद और ऋषियों से भी अपने को ऊंचा सिद्ध करने, प्रचारित-प्रसारित करने वाले के

मूर्ख, स्वार्थी और दम्भी होने में क्या सन्देह है? आर्य इनका अनुगन्ता है, स्वामी नहीं है। शास्त्र पढ़ा, जानता ही न हो और वेद शास्त्र की गुत्थी सुलझाये, विज्ञान पढ़ा ही न हो विज्ञान की कठिनाइयों को हल करे और लोगों से आग्रह तथा अपेक्षा करे कि वे इसको माने तो यह बालकपने, मूढ़ता और उपहास के अलावा क्या हो सकता है? ग्रन्थ लेखन वा योग्य समझकर प्रचार-प्रसार करने का अधिकार भी संगठन को ही देना चाहिये, यदि इसमें सिद्धान्त विरूद्धता तथा सिद्धान्त की न्यूनता देखे तो उसे संगठन को रोकना भी चाहिये, यही व्यवस्था सत्य के प्रचार में सहायक होती है। आर्य कभी भी आर्य संगठन से अपने को पृथक् नहीं करता है क्योंकि उसके सिद्धान्त और संगठन के सिद्धान्त एक ही तो हैं, यदि कोई अपने को आर्य संगठन के अनुसार चलने की कसमें भी खाता रहे और उसका खण्डन अपने का मण्डन भी करता रहे तो ऐसे के मूर्ख तथा धूर्त होने में क्या सन्देह है? इस तरह के लोग कैंसर की भाँति संगठन का नुकसान करते हैं जैसे- कैंसर के जीवाणु जब तंक शरीर में हैं तब तक स्वस्थ कोशिकाओं को भी दूषित कर मारते रहते हैं, उसी तरह ऐसे प्रवृत्ति वाले छद्मवेशी आर्य सरल आर्यों को भी दूषित कर पाप के भागी और संगठन का अहित करते रहते है, जैसे- कैंसर का अंग काटकर बाहर फेंक देने से अन्य अंग स्वस्थ हो शरीर स्वस्थ हो जाता है उसी तरह ऐसे कपटियों, पोपलीलकों को संगठन से शीघ्रातिशीघ्र पृथक् करना ही चाहिये, जिससे संगठन स्वस्थ हो हितकारी कार्य कर सके, क्योंकि संगठन भी तो आर्यों से ही बना है। आर्य केवल तोड़, फोड़, जोड़, मोड़, होड़ वाला ही नहीं होता है। वह सत्य सिद्धान्त का ग्रहण और सत्य सिद्धान्त की रक्षा करता है। पहले वह स्वयं आर्य है पश्चात् अन्य आर्यों वा सामान्य जनों के हित के लिए संघर्ष करता है। नव दर्शन-नव वेदान्त-नव सांख्य-नव आर्य क्या है? ढकोसला और मूर्खता के अलावा कुछ नहीं हैं, बिना विद्या के कौन आर्य, फार्म भर देने मात्र से कोई

आर्य बनता है? नव दर्शन - नववेदान्त आदि तो सब छल, कपट, प्रपञ्च, वेद विरूद्ध सिद्धान्तों से भरे पड़े हैं आश्चर्य है! आर्य भी सत्यार्थप्रकाश जैसे ग्रन्थ को छोड़ नव दर्शनों के पीछे पड़ गये। यह अज्ञानता और स्वार्थियों के बहकावे में आ जाने के अलावा और क्या है? महात्मा चाणक्य का शास्त्र अधर्म राज्य को मिटा धर्म राज्य स्थापना हेतु विधायक 'अर्थशास्त्र' है, जो उसको गम्भीरता पूर्वक पढ़ेगें तो उन्हें ज्ञात होगा, यह जीवन के हर क्षेत्र में लागू होने वाला विधिक ग्रन्थ नहीं है, इसके लिए सत्यार्थ प्रकाश और संस्कार विधि आदि हैं, अर्थशास्त्र ग्रन्थ को देखा, सुना, पढ़ा, जाना है नहीं और उसका प्रयोग परिवार में करने लगोगे तो क्या घर में रामराज्य होगा! उद्देश्य पढ़ो, राज्य की स्थापना के लिए संघर्ष करो, यह तो उचित है, परन्तु परिवार तथा समाज को विघटित करने के लिए इस शास्त्र का उपयोग मत करो। इसलिए इससे तो आप यह समझ ही गये होंगे कि आर्य कौन है? आर्य वैदिक सिद्धान्तों वाला होता है। आर्य संगठित रहता है। आर्य के नियम एक हैं। आर्य एक दूसरे के विरोधी कभी भी नहीं होते हैं। आर्य संगठन में नियमों का पालन करते हैं। यही तो सर्वहितकारी नियम हैं। नहीं तो सर्वहितकारी नियम कौन बनायेगा? आर्य संगठन से पृथक् जाने वा करने पर वे क्योंकर आर्य होंगे। आर्य सत्य का मण्डन करता है परन्तु सर्वप्रथम वह आर्य होता है। आर्य असत्य का खण्डन करता है। परन्तु सर्वप्रथम वह आर्य होता है। आर्य आर्य है चाहे वह खण्डन-मण्डन करे वा न करे। आर्य की अपनी ढपली अपना राग नहीं होता है। आर्य का एक मन, एक वाणी और एक संगठन होता है। अलगाव दस्युओं का लक्षण है, आर्यों का संगच्छध्वम् है।

ऋषि दयानन्द आर्य कैसे बनाते थे? उस काल में लोग आर्य कैसे बने? जबकि उस समय आर्य प्रशिक्षण सत्र वा गुरुकुल थे ही नहीं?

विद्या ग्रहण के उपरान्त स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यासत्य के निर्णय हेतु अथक परिश्रम किया, जो-जो सत्य जानते गये उसका प्रचार प्रारम्भ किया, जब उसका विरोध होता रहा वा अन्य मत वाले अपने पक्ष को ही सत्य मानने का जोर-शोर से प्रतिवाद करने लगे, तो उनसे उस पर शास्त्रार्थ किया। धीरे-धीरे इनके अनुयायी भी बनने लगे, अनुयायी का तात्पर्य है कि उनके द्वारा प्रचारित सिद्धान्तों को मानने लगे। इससे कोई यह समझे कि वे आर्य बन गये, यह भ्रम मात्र ही है, परन्तु सत्यग्राही जन इनके पक्ष को सत्य जानकर इनके व्याख्यान की व्यवस्था, इनके मत का प्रचार, शास्त्रार्थ की व्यवस्था और सहयोग करने लगे। वे सिद्धान्त जिनसे वेदमत स्थापित हुआ, स्थिर होने पर, निर्णीत हो जाने पर व्याख्यानों की शृङ्खला विषयों के अनुसार प्रारम्भ हुई; वे वे सिद्धान्त जो आर्य के बनने के लिए आवश्यक थे, उनका क्रमिक शिक्षण प्रारम्भ हुआ, कक्षाएँ क्या हैं? तद् तद् विषय पर व्याख्यान ही तो हैं। सिद्धान्त बोध के लिए व्याख्यान ही तो प्रशिक्षण का प्रबलतम साधन हैं, वह चाहे आर्य सिद्धान्त का हो, गणित, विज्ञान, इतिहास वा भूगोल आदि का ही क्यों न हो, फिर उन्हीं पर ग्रन्थ बनाये, आज भी तो संसार भर में शिक्षा की प्रक्रिया यही है। जब आर्यमत के मुख्य-मुख्य सिद्धान्त को लोग जान गये तो आर्य बने और बनते चले गये इसका उदाहरण पुणे में दिया गया प्रवचन है जो इसकी प्रक्रिया दर्शाता है, कितना अच्छा होता कि वह सम्पूर्ण विषय आर्य भाषा में ही ज्यों का त्यों लिपिबद्ध हो जाता। परन्तु वह तो प्रतिदिन संक्षिप्त रूप से मराठी के अखबार में छपता रहा, छापने वाला मराठी मानुष होगा, कितना समझ पाया? कैसा समझ पाया? क्या मुख्य छूटा? क्या जुड़ा? क्या जोड़ा? कुछ नहीं कहा जा सकता है, बाद में मराठी से वही हिन्दी में अनुवाद करा कर छापा गया, वह सिद्धान्त परिज्ञान हेतु सत्यार्थ प्रकाश जितना प्रमाणिक तो नहीं है परन्तु उससे व्याख्यान का क्रम, आवश्यक सिद्धान्तों का महत्व और

अनवरत, लगातार उनका बोध कराना आवश्यक है यह समझा जा सकता है, इन प्रक्रियाओं से मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों को हृदयङ्गम कर लोग आर्य बने, यही आर्य निर्माण की प्रक्रिया ऋषि दयानन्द जी ने अपनायी। जो लोग एकाध व्याख्यान सुनकर, भावावेश हो, शास्त्रार्थ में विजय देखकर, प्रतिक्रिया वश आर्यसमाजी बने, उनको सारे/मुख्य सिद्धान्त स्पष्ट थोड़े थे, सत्यार्थ प्रकाश तो बाद में आया, देहान्त के पश्चात्। वे आधे-अधूरे अनुयायी मात्र थे, आर्यसमाजें बनायी और विवाद पर विवाद खड़े करते गये, जिसने आजतक पीछा न छोड़ा है। जिन्होंने आर्ष ग्रन्थ पढ़े, यथामति समझा, आर्यसमाज को संगठित करके आगे बढ़ाया, अपना जीवन इसी कार्य में खपा दिया, वे स्तुत्य हैं। क्या ऋषि दयानन्द ने अपने सभी अनुयायियों को आर्य बना दिया था? कोई उनसे विद्रोह करने वाला नहीं था, तो इसे गम्भीरता पूर्वक विचारते हुए समझना होगा, ऋषि दयानन्द के द्वारा स्थापित गुरुकुल से पढ़े हुए पं. भीमसेन आदि स्वामी जी के पास रहे, ग्रन्थ के लेखन में सहयोगी बने, निश्चित रूप से अनेकों व्याख्यान सुने होंगे, सिद्धान्तों के लेखन, प्रूफरीडिंग आदि में सहयोगी थे उन्हें तो निश्चित आर्य बनना ही चाहिये था। परन्तु वे भी ऋषि दयानन्द के विरोधी बने, इनके और आर्य सिद्धान्तों के खिलाफ पुस्तकें लिखीं अर्थात् आर्य तो बन नहीं पाये, अनार्य रह गये और विरोधी बन गये, कहते हैं न, कि दिया तले अंधेरा, परन्तु यह कहावत मात्र है, प्रकाश तो यहाँ भी रहता है, उठाकर देखिये। इतना सैद्धान्तिक ज्ञान होने पर भी केवल स्वार्थ के कारण विरोधी बने उसी तरह आर्य निर्माण के एकाध आचार्य भी स्वार्थ के ही कारण पृथक् हुए वा किये गये और विरोधी बने, उसका कारण संगठन, सिद्धान्त वा अन्य आचार्यों का दोष नहीं है, इसका कारण मात्र स्वार्थी होना ही है, यह द्वेषी बना ही देता है, पं. भीमसेन आदि के विरोधी बनने में उनकी अज्ञानता को न दूर कर पाने में ऋषि दयानन्द का उनको न सम्हाल पाना नहीं है अपितु

उन लोगों का मात्र स्वार्थ और दम्भ ही कारण है। ऋषि दयानन्द के क्रमिक व्याख्यानों से सभी आर्य बन जाते होंगे, यह भी आवश्यक नहीं है, कुछ बनते होंगे, कुछ नहीं बनते होंगे। परन्तु प्रक्रिया तो यही है, गुरुकुल में भी तो ग्रन्थ का पाठ पढ़ाते हैं, आचार्य व्याख्यान (Lecture) देते हैं और सिद्धान्तों को समझाते हैं, जो समझ गये उत्तीर्ण हो जाते हैं, आर्य बन जाते हैं; कुछ फेल हो जाते हैं, नहीं बन पाते हैं। सार्वत्रिक ज्ञानवर्धन की यही प्रक्रिया और नियम है। जहाँ यह नहीं होगा, आर्य निर्माण नहीं होगा, चाहे जीवन पर्यन्त पढ़ते-पढ़ाते रहो, यहाँ तो गुरुऋण, ऋषि ऋण होता है, आचार्य के हम कृतज्ञ होते हैं कि जिसको हम अतीव परिश्रम करके वर्षों में जान भी सकते हैं, नहीं भी जान सकते हैं, सरल हृदय से निष्कपट हो हमें समझा देते हैं, हमारी अविद्या की ग्रन्थि को तोड़ देते हैं, हमारे संशय को छिन्न-भिन्न कर देते हैं और अनार्ष कर्मों को छुड़ा, वेदमार्ग का अनुगामी बना देते हैं, आर्य बना देते हैं, क्या यह कम उपकार है? महोपकार है, महा कार्य है। यहाँ यह भी व्यवहारिक में द्रष्टव्य है कि यह आर्य विद्या तो संगठन का उपक्रम है, किसी एक आचार्य से विद्या ग्रहण की तो उससे बढ़कर उपकार संगठन का ही मानना चाहिये, क्योंकि आचार्य उसी के निर्देशन और सहयोग में निर्माण कार्य करते हैं। यदि तमोगुणी वा स्वार्थी हो आचार्य पद वा पथ से भ्रष्ट हो जाता है तो गुरुडम नहीं अपनाना चाहिये, उसके प्रति ऋणी वा कृतज्ञ होकर अनार्य वा सम्प्रदायी नहीं बन जाना चाहिये, गुटबाजी नहीं करनी चाहिये अपितु उन्हीं जैसे विद्या देने वाले वा उनसे उत्तम आचार्यों के समूह के प्रति ही कृतज्ञ और सहयोगी बनना चाहिये, पच्चीस आचार्य एक तरफ वा एक दो आचार्य एक तरफ, तो किसकी बात मान्य होगी? निस्सन्देह संगठित आचार्य समूह की, क्योंकि इसीलिये तो संगठन की आवश्यकता होती है कि जिससे सत्य की रक्षा हो सके और गुरुडम न फैले, सभी संगठित रहें, यह आर्य वा आचार्य वा

पदाधिकारियों में कहीं भी ऐसा विद्रोह, विरोध, अज्ञानता और स्वार्थ से हो सकता है। तो वहाँ संगठन के प्रति ही सहयोग का भाव होना चाहिये, जब तक वह योग्य था, तब तक उससे विद्यादान का कार्य संगठन ने लिया, तो यह निर्णय संगठन का था, जब स्वार्थ वा अज्ञानता वश आचार्य कार्य के अयोग्य हो गया तो संगठन ने कार्य नहीं लिया, विरोधी होने पर पृथक्/प्रतिबन्धित कर दिया, तो सभी को आर्य संगठन के प्रति/आचार्य समूह के प्रति प्रतिबद्ध हो संगठित रहना चाहिए। इसमें आश्चर्य वा अति दु:खी भी नहीं होना चाहिये, स्वार्थ क्या न कराये वही थोड़ा है, यहाँ व्यक्ति थोड़े से स्वार्थ के लिए बड़ी-बड़ी हानि कर देते हैं, पूरे के पूरे राष्ट्र से ही विश्वासघात कर उसे संकट में डाल देते हैं। बुद्धिमान बच जाते वा बचा ले जाते हैं और असावधान डूब जाते हैं। इसलिए मुख्यत: हमें ईश्वर के प्रति कृतज्ञ होना चाहिये, जिनके वेद ज्ञान के कारण ही हम आर्य बने, फिर ऋषियों-मुनियों के प्रति कृतज्ञ होना चाहिये, जिन्होनें हमें आर्य सिद्धान्त समझाये। फिर आर्य संगठन के प्रति कृतज्ञ एवं ऋणी होना चाहिए, जिसकी व्यवस्था से हम आर्य बने। आर्य संगठन का तात्पर्य है आर्य एवं आचार्यों का समूह। आचार्यों का आदर एवं कृतज्ञभाव तभी तक है जब तक वे निस्वार्थी, आर्य नियम पर, त्यागी और सरल होकर संगठन के निर्देशानुसार आर्य विद्या देते हैं और आर्य बनाते हैं।

जब वे दम्भी, स्वार्थी, संगठन विरोधी, छल, कपट करने वाले हो जाते हैं, तो आचार्य की कौन कहे, उन्हें आर्य ही नहीं मान सकते हैं, यही तो कृतघ्नता है, संगठन ने विद्या दे, व्यवस्था दे आर्य बनाया, अधिक विद्या देकर उपदेशक, प्रचारक, प्रवक्ता, पुरोहित और आचार्य बनाया, पद दिया, सम्मान दिया, हर प्रकार का सहयोग दिया। उपदेशक, प्रचारक, प्रवक्ता, पुरोहित और आचार्य के निर्माण पर संगठन का एवं प्रमुख आचार्यों का समय, ऊर्जा, धन, बल, सहयोग और बुद्धि लगती है, जिसका मूल्य तो

चुकाया ही नहीं जा सकता है, उसी संगठन का विरोधी बन जाना, उसकी निन्दा करना, उसी संगठन से अपने कार्य की कीमत वसूलना, परम स्वार्थीपन के अलावा और क्या है? यह तो वही बात हुई कि पिता का सेवा करने का मूल्य पुत्र माँगे और कहे कि मैंने इतने गिलास पानी दिये, इतनी रोटी खिलाई आपने मेरे लिये क्या किया, आपने जो किया वह आपका कर्तव्य था, आपने पैदा ही क्यों किया? इसको मूर्खता और धूर्तता के अलावा क्या कहा जा सकता है? उसको पिता का कर्तव्य याद रहा परन्तु अपना कर्तव्य भूल जाता है ऐसे लोग पूरे परिवार को बिखेरकर स्वयं सुखी होना चाहते हैं, ऐसे आर्य वा आचार्य जो अपने गुण वा योग्यता को नहीं देखते हैं, वे पहले कैसे थे भूल जाते हैं? कोई अपने को प्रधानमंत्री ही समझ ले तो ऐसे शेखचिल्ली को क्या कह सकते हैं? अपने को बहुत बुद्धिमान् वा बृहस्पति का अवतार ही समझ बैठे तो ऐसे का क्या कर सकते हैं? संगठन की कृपा और सहयोग को भूलकर कहते हैं कि संगठन ने मेरे लिये क्या किया, मैंने संगठन के लिए किया है। ऐसे दम्भी, अहंकारी और मूर्ख को जैसे पिता घर से बाहर कर देता है, उसी तरह संगठन को भी उसे बाहर निकाल देना चाहिये, अन्यथा ऐसे स्वार्थी संगठन का लाभ लेते रहेंगे और संगठन की जड़ें खोदते रहेंगे, गुटबाजी करते रहेंगे और आर्यजन का भी नुकसान करते रहेंगे, उन्हें संगठित ही नहीं होने देंगे, उनके भीतर संशय, अश्रद्धा, भ्रम और निराशा का बीज बोते रहेंगे, आर्य संगठन को सामर्थ्यशाली बनने ही नहीं देंगे!

आर्य होता कौन है? आर्य के मुख्य क्या-क्या गुण होने चाहिये, कृपा करके अब यह बता दीजिये जिसको तो हम धारण किये ही रक्खें, जिसके बिना आर्यत्व सम्भव ही नहीं है।

वैदिक सिद्धान्तों के परिज्ञान बिना कोई भी आर्य नहीं होता है, जिन सिद्धान्तों को धारण किये बिना आर्य हो ही नहीं सकता है, उन-उन

सिद्धान्तों को जानना, समझना और धारण करना अनिवार्य है। मुख्य सिद्धान्तों के साथ-साथ सामान्य सिद्धान्त स्वयमेव समझे एवं धारण किये ही जाते हैं।

१. ईश्वरः- सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, निराकार, एक, चेतन, ओम् ईश्वर को मानना अर्थात् ईश्वर का यथार्थ स्वरूप मानना।

निषेधः- ईश्वर का साकार रूप, अवतारवाद, प्रतिमा को न मानना अर्थात् ईश्वर के नाम पर भ्रान्ति को न मानना।

प्रथम ज्ञान है- ईश्वर, सर्वज्ञ, चेतन, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, निराकार, एक।

२. वेदः- ईश्वर के द्वारा मनुष्यार्थ प्रदत्त संविधान- वेद।

निषेधः-विश्व में प्रचलित ईश्वरीय पुस्तक-बाइबिल, कुरान, पुराणादि को न मानना।

ईश्वर का संविधान- वेद।

३. आत्माः- आत्मा को मानता हो; चेतन, एकदेशी, परिछिन्न, नानासंख्याक, सूक्ष्म आकार मानता हो।

निषेधः-आत्मा को नश्वर, व्यापक, निराकार, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्त, भगवान्, ईश्वर का अंश, मरणधर्मा न मानता हो।

आत्मा-चेतन, अल्पज्ञ, परिच्छिन्न, एकदेशी और अणुपरिमाण।

४. पुनर्जन्मः- कर्मानुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेना मान्य हो। पहले भी जन्म हुआ है **पूर्वजन्म**, आगे भी होगा।

५. शाकाहारः- शाकाहारी हो।

निषेधः- माँसाहार न करने वाला हो।

शाकाहारः- अन्न, फल, औषधि, दूध, वनस्पति, खनिज पदार्थ।

६. सन्ध्याः- प्रतिदिन प्रातः सायं एक विधि के अनुसार सन्ध्या

करे।

निषेधः- चालीसा, पूजा-पाठ, पारायण, पुरश्चरण, व्रत, उपवास में न विश्वास करता हो, एवं न करे।

सन्ध्या- एकविधि-पञ्चमहायज्ञानुसार

७. नशा रहितः- शराब, गांजा, भांग, अफीम, हीरोइन आदि नशे के लिए न पीता-खाता हो।

८. विद्याः- आर्य विद्या ग्रहण करने के लिए प्रयत्नशील हो और करे, शिक्षित होना ही चाहिए, योग्यता वृद्धि हेतु स्वाध्याय भी करना होगा।

९. यज्ञोपवीत :- उपवीत हो। बालक हेतु विद्या ग्रहण के पूर्व यज्ञोपवीत और बड़ों के लिए आर्य विद्या ग्रहण के उपरान्त यज्ञोपवीत और अधिक विद्या लेवे।

निषेध- गण्डे, ताबीज, धागे, माला, कण्ठी, कलावा, अंगूठी आदि गृहशान्ति हेतु न हों।

१०. विवाहः- वयस्क होने पर गुण, कर्म और स्वभाव की परीक्षा कर विवाह करना। केवल वेद के विद्वान् जो पूर्ण वैराग्यशील हैं, वही विवाह न करें। अन्य यथायोग्य विवाह करके, आर्य धर्म का पालन एवं आर्य सन्तति का निर्माण करें, पश्चात् मुनि आदि ज्ञानार्जन हेतु बनें।

११. संस्कारः- जो भी संस्कार हों, वे आर्य रीति से ही होवें।

१२. यज्ञः-

देवपूजा- विद्वानों का सत्कार।

संगतिकरण- पदार्थों की संगति-शिल्प वा रसायन वा अग्निहोत्र आदि।

दान- विद्या का दान, धन का दान, अन्न-वस्त्र का दान आदि।

यज्ञ का व्यापक अर्थ है, केवल अग्नि में आहुति देने का ही नाम 'यज्ञ' नहीं है, अपितु इस व्यापक अर्थ वाले यज्ञ को मानना, करना। उसमें

एक भाग अग्निहोत्र का भी है।

१३. तार्किकः- प्रमाणों से परीक्षा करने में सक्षम हो, जिससे सत्यासत्य जाना जा सके, अन्धविश्वासों में उलझे न, अपितु तर्क प्रज्ञा से अध्यात्म के सूक्ष्म रहस्यों को भी समझ सके।

१४. पुरुषार्थ चतुष्टयः- आर्य उद्देश्य- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

धर्म	-	वेदज्ञान	-	ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास।
अर्थ	-	धनार्जन	-	गृहस्थाश्रम।
काम	-	सुख	-	गृहस्थाश्रम।
मोक्ष	-	ईश्वर प्राप्ति	-	ब्रह्मचरी, वानप्रस्थी, संन्यासी।

१५. आर्यीकरणः- सभी मनुष्यों को आर्य बनना ही चाहिए और आर्य बनाना ही चाहिये।

निषेध- जातिवाद न मानता हो।

१६. आर्यावर्त्तः- आर्यावर्त्त की स्थापना का संकल्प- वेदाज्ञा। समाज के आर्यीकरण का लक्ष्य- वेदाज्ञा। **'अहम् भूमिम् अददाम् आर्याय'** राष्ट्र के स्थापना का लक्ष्य और प्रयास करना ही होगा, राष्ट्र बनता है, समाज के निर्माण से, समाज बनता है परिवार के निर्माण से तो क्रमिक इन सोपानों को बनाते हुए ही हम राष्ट्र बना सकते हैं।

ये षोडश सिद्धान्त हैं जो धारण कर हम आर्य बन जीवन के उद्देश्य पूर्ति हेतु प्रयत्नशील होते हैं। यदि हम इनमें से एक भी छोड़ बैठते हैं वा विपरीत जान, मान कर ग्रहण करते हैं तो आर्य कैसे कहा सकते हैं? हाँ इन षोडश सिद्धान्तों को ग्रहण करते हुये अनेकों इसी से जुड़े हुए सिद्धान्त भी थोड़े प्रयत्न से अर्थात् आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय आदि से भी समझे जा सकते हैं, ग्रहण किये ही जायेंगे।

जिसको नहीं करना है, उसको भी व्यवस्थित समझ लें-

१. व्यसन, २. मूर्तिपूजा, ३. अवतारवाद, ४ माँसाहार, ५. जातिवाद,

६. व्यभिचार, ७. अन्धविश्वास, फलित ज्योतिष-तन्त्र, पुराण, साम्प्रदायिक शास्त्रों पर विश्वास, ८. मृतक भोज, श्राद्ध, तर्पण, पिण्डदान, अस्थिविसर्जन बरसी आदि, ९. व्रत, उपवास, पुरश्चरण, तीर्थ स्नान, पूजा-पाठ, पारस्परिक छल, कपट, विश्वास घात और कुटिल व्यवहार आदि।

इन १६ नियमों को जो विधि स्वरूप हैं, मानना ही चाहिए और ९ नियम जो निषेध स्वरूप हैं, इनको मानना-छोड़ना ही होगा। क्योंकि जो त्याज्य है उसे त्यागना ही होगा।

वैदिकसिद्धान्त - आर्य प्रशिक्षण सत्र, आर्यसमाज के नियम, आर्योद्देश्यरत्नमाला, सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका और वेद भाष्य में हैं; उनको भी जानना, समझना, मानना और धारण करवाना आवश्यक है। एक ही सिद्धान्त को मानने के कारण आर्यों में परस्पर विरोध कभी भी नहीं होता है और न होना चाहिये। सिद्धान्त भेद से ही मतभेद होते हैं, मतभेद ही तो मनभेद है, यदि मतभेद होते हुए मनभेद नहीं है तो यह दिखावापना के अलावा कुछ नहीं है, स्वार्थ/भय/विवाद के कारण हम उसे व्यक्त नहीं कर रहे हैं, उसको नजर अन्दाज करते हुए अपना कार्य कर रहे हैं, व्यवहार कर रहे हैं, स्वार्थपूर्ति हुई कि पुनः अलग-थलग, इसलिए मतभेद नहीं होना चाहिये, मुख्यतः आर्यों के सिद्धान्त में मतभेद घातक और विघटन का कारण ही होता है। फिर वे मतभेद के कारण आर्य ही नहीं रह पाते हैं। हाँ कार्यप्रणाली स्थान, काल, रूचि, अनुकूलताओं के कारण पृथक् हो सकती है परन्तु विचार विनियम करके लक्ष्य पूर्ति हेतु सर्वोत्तम कार्यप्रणाली का चयन करना चाहिए, यह भी तभी सम्भव है जब तुल्य ही सिद्धान्त हों।

क्या इन सिद्धान्तों को मानने मात्र से आर्य हो सकता है? उसे शास्त्र और वेद को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है?

आर्य के लिए वेदाज्ञा को मानना आवश्यक है, बिना शास्त्र और वेद पढ़े ईश्वर प्रदत्त मुनष्य मात्र के लिए संविधान को जानना बहुत कठिन है, वेद ही ईश्वरीय संविधान है, वेद को अधीत करके भी, हृदयङ्गम करके भी मुख्यत: पूर्वोक्त विधि और निषेध पूर्वक २५ सिद्धान्तों को जानना-मानना आवश्यक है, हो सकता है ५०-१०० वर्ष बाद वेदों के और नियमों को इन आवश्यक नियमों में संग्रहीत करना पड़े, परन्तु अभी वर्त्तमान काल में न्यूनतम इन सिद्धान्तों को जानना-मानना और धारण करना आवश्यक है। शास्त्र और वेद को पढ़ना मनुष्य मात्र का अधिकार और कर्त्तव्य है। पढ़ने से पहले और पढ़ने के बाद भी इन न्यूनतम सिद्धान्तों को आर्य के लिए मानना ही होगा, इससे जुड़े अनेकों सिद्धान्त इसके साथ-साथ समझ आ ही जायेंगे जैसे पुनर्जन्म मानने के कारण, पूर्वजन्म, परलोक, अपरलोक, स्वर्ग, नरक, मृत्यु और जन्म आदि को समझना ही पड़ता है, जो आर्ष ग्रन्थों में व्याख्यायित हैं ही। **आर्य हेतु विधि तथा निषेध-**

विधि- १. ईश्वर, २. वेद, ३. आत्मा, ४. पुनर्जन्म, ५. शाकाहार, ६. सन्ध्या, ७. नशारहित, ८. विद्या, ९. यज्ञोपवीत, १०. विवाह, ११. संस्कार, १२. यज्ञ, १३. तार्किक, १४. पुरुषार्थ चतुष्टय, १५. आर्यीकरण, १६. आर्यावर्त्त।

निषेध:-१. व्यसन, २. मूर्तिपूजा, ३. अवतारवाद, ४. माँसाहार, ५. जातिवाद, ६. व्यभिचार, ७. अन्धविश्वास, ८. मृतक पिण्डदान आदि पोप लीला पाखण्ड ९. आर्यों के साथ कुटिल व्यवहार, द्वेष वा विरोध।

क्या आर्या के सिद्धान्त अलग होते हैं?

नहीं! आर्या के सिद्धान्त अलग नहीं होते हैं। आर्य सिद्धान्त ही आर्या सिद्धान्त हैं। जो गुण, धर्म आर्य बनाने के हैं, वही सिद्धान्त आर्या बनाने के भी हैं। मध्यकाल से ही वेदविद्या से महिलाओं को वंचित रखा गया है, जब वेद के पठन-पाठन का अधिकार ही छीना गया तो सिद्धान्त

बोध कैसे होगा? केवल अनुकरण मात्र ही तो बचेगा जैसे शूद्र को जाति बना, पूरे समूह को ही विद्या से वंचित कर दिया गया था, उसी तरह आधी आबादी को भी वेदज्ञान अर्थात् कर्तव्याकर्तव्य से वंचित कर दिया गया, जब ज्ञान न हो, अनुकरण मात्र हो तो त्रुटियाँ होनी स्वाभाविक है, उसके औचित्य- अनौचित्य की विवेचना की सामर्थ्य थी नहीं, फिर वही रूढ़ि बन गयी, परम्परा कहलायी और वही पोपलीला आज तक चली आ रही है, यह पोपलीला इतनी दृढ़मूल हो गयी है कि उससे स्वयं के ही मुक्त होने में भय लगता है। आर्य एवं आर्या शब्द में मात्र स्त्रीलिङ्ग के प्रत्यय का अन्तर है, वे गुण जो आर्य के हैं, वही गुण आर्या के भी हैं, उनमें तनिक भी भेद नहीं हैं जैसे मूर्तिपूजा आर्य के लिये निषिद्ध है, तो आर्या के लिए भी निषिद्ध है, सन्ध्या आर्य के लिए अनिवार्य है तो आर्या के लिए भी अनिवार्य है; मोक्ष का लक्ष्य आर्य निर्धारित कर सकता है तो आर्या भी मोक्ष का लक्ष्य निर्धारित कर सकती है, ईश्वर प्राप्ति के लिए आर्य उपासना करता है तो आर्या के लिए कोई दूसरी उपासना विधि नहीं है, जो आर्य उपासना करता है, वही विधि आर्या के लिए भी है। शिक्षा की जो प्रणाली आर्य के लिये है, वहीं आर्या के लिये भी है। व्याकरण, निरुक्त, उपनिषद् और दर्शन जैसे आर्य पढ़ता-समझता है, उसी तरह आर्या के लिए भी है, स्त्री और पुरुष में सिद्धान्तों के ज्ञान और पालन में भेद नहीं है, जो सिद्धान्त आर्यों के लिए कहे गये हैं, वे सभी आर्या के लिए भी हैं।

यही जाने जाने चाहिये- यही जानना चाहिए! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुरुषार्थ चतुष्टय है, यहाँ पुरुष से दोनों अर्थ समझने होते हैं, यहाँ लिंग भेद नहीं है, यहाँ 'पुरि शेते इति पुरुषः' है। शरीर रूपी पुर में शयन करने के कारण आत्मा को पुरुष कहा गया है। जो शरीर में आत्मा है वह आत्मा न पुल्लिंग है, न स्त्रीलिंग, न नपुसंक लिंग है, आत्मा इस विभेद से रहित है, इसलिए वह नारी भी पुरुष से ही कही गयी है। उस का भी लक्ष्य

धर्मार्थ आदि पुरुषार्थ चतुष्टय है और इसकी प्राप्ति के लिए वेदज्ञान आवश्यक है, तो इसको भी वेद पढ़ने का पूर्ण अधिकार है, पढ़ने की प्रक्रिया भी तुल्य है। जैसे- नर सामर्थ्य के अनुसार इस उपलब्धि को अर्जित करता है, उसी तरह नारी भी सामर्थ्य के अनुसार पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त करती है। इसलिए आर्य और आर्या के सिद्धान्त एक ही हैं जो आर्य के सिद्धान्त कहे जावें वे आर्या के भी हैं, यही समझे जाने चाहिये।

आर्य और आर्या में अन्तर क्या है? क्या आर्य श्रेष्ठ वा आर्या कुछ कम श्रेष्ठ होती है?

जब आर्य और आर्या के वैदिक सिद्धान्त एक हैं, तो अन्तर क्या होगा? अर्थात् कुछ भी अन्तर नहीं है, जैसे एक पुरुष डॉ. वा एक महिला डॉ. तो, दोनों में अन्तर क्या होगा? दोनों फिजिशियन हैं, ज्ञान दोनों को एक ही दिया गया है तो दोनों बराबर चिकित्सक हैं, जैसे दो पुरुष में योग्यता में विभेद हो सकता हैं, उसी तरह पुरुष अभ्यर्थी और महिला अभ्यर्थी में भी हो सकता है, महिला डॉ. अपने परिश्रम से पुरुष डॉ. से योग्य भी हो सकती है और होती है, यह अन्तर तो सामान्यभूत है, यही अन्तर आर्य और आर्या में भी हो सकता है आर्या एक आर्य से सिद्धान्त ज्ञान और पालन करने में अधिक कुशल हो सकती है, इसमें संशय नहीं है, पुरुष भी हो सकता है, यह पुरुष और महिला होने से अन्तर नहीं है अपितु परिश्रम और अवधानता के कारण है, जैसे आर्य आर्य में हो सकता है, उसी तरह आर्य आर्या में भी होता है, दोनों मनुष्य हैं, दोनों का लक्ष्य समान है, दोनों का संविधान एक है, दोनों का सिद्धान्त तुल्य है, दोनों के प्राप्ति के उपाय एक हैं, दोनों के सुख दुःख एक जैसे होते हैं, दोनों की समाधि एक जैसी होती है, दोनों को ईश्वर की प्राप्ति एक जैसी ही होती है, शरीरगत भेद है, लक्ष्यगत भेद नहीं है, इसलिए कोई अन्तर नहीं है, योग्यता की अधिकता से आर्या आर्य से भी श्रेष्ठ हो सकती है, उपदेश दे सकती है, शासन कर सकती है। इसलिए

महिला होने के कारण मात्र से वह पुरुष से कुछ हीन है, सर्वथा निरर्थक और पोपलीला है। आर्य के दृष्टिकोण से दोनों तुल्य हैं, न छोटा और न बड़ा, हाँ योग्यता के दृष्टिकोण से जैसे आर्य आर्य में ही अन्तर होता है, उसी तरह आर्या आर्या व आर्य में तुलनात्मक रूप से अन्तर हो सकता है। परन्तु तात्विक अर्थात् सैद्धान्तिक रूप से दोनों तुल्य हैं, आर्य हैं। जो आर्य के सिद्धान्त कहे जावेंगे, वे आर्या के भी हैं। यही निर्विवाद रूप से समझना चाहिए। त्रिविधं नरकस्य द्वारं किम् ? -नारी अर्थात् तीनों प्रकार के नरक का द्वार क्या है? -नारी। तो त्रिविधं नरकस्य द्वारं किम्? -नरः अर्थात् तीनों प्रकार के नरक का द्वार क्या है? नर। यह क्यों नहीं? दोनों हो सकते हैं, यदि नारी नर के लिए नरक का कारण बन सकती है तो नर भी नारी के लिए नरक का कारण बन सकता है, नरक अर्थात् दुःख। केवल नारी को दोष नहीं दे सकते हैं, हाँ! यदि वेद ज्ञान शिक्षा न दी जाए और नर शिक्षित हो तो यह सम्भव है, मध्य कालखण्ड में नारी के शिक्षा का द्वार बन्द करके उसे नरक का द्वार बना दिया गया था, आज भी चतुर्दिक यही तो दृष्टिगोचर हो रहा है, सब साधन सम्पन्न होते हुए भी दुःख की ही वृद्धि दिन-प्रतिदिन होती है, परन्तु यह केवल नारी पर ही नहीं कह सकते हैं, अशिक्षित नर भी दुःख का द्वार नहीं तो क्या है? हाँ! इतना अवश्य है कि आज भी पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक संख्या में अशिक्षित हैं, इसलिए आर्या बनाने में कठिनाई भी अधिक आती है, परन्तु शिक्षित हों तो नर वा नारी दोनों तुल्य हैं, दोनों आर्य विद्या ग्रहण करते हैं, दोनों आर्य बनते हैं और दोनों जीवन लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

क्या आर्या के व्रत, त्यौहार, उपवास, पूजा, पाठ, वर्ण, जाति, आश्रम, मन्दिर, समाज, मन्त्र, पिण्डदान, अन्तिम संस्कार, अलग-अलग होते हैं?

नवरात्र, सोम, शुक्र, गंगास्नान, कुम्भ स्नान, एकादशी, देवी,

चालीसा आदि तथाकथित व्रत, त्यौहार, उपवास, पूजा, पाठ, कीलक, नाम, मन्त्र आदि पुरुषों के भी होने में पोपलीला मात्र है, यह अन्धविश्वास और पाखण्ड के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं, तो आर्य के अलग तथा आर्या के अलग-अलग होने का प्रश्न ही व्यर्थ है अर्थात् ये किसी के लिए भी करणीय नहीं हैं। जाति दोनों की ही मनुष्य है, अन्य जन्म से जातिवाद खण्डनीय और त्यागने ही योग्य है। मनुष्य जाति में भी महिला जाति कह सकते हैं, वह भी शरीरगत संरचना विशेष से है, अन्य सभी गुण, कर्म, धर्म, विद्या, उद्देश्य समान ही हैं। वर्ण दोनों का एक जैसा ही है, कोई भी उनमें विभेद नहीं है। उनका कोई समाज अलग नहीं होता है, ये सभी आर्य समाज के ही अंग होते हैं, इसमें महिला समाज वा पुरुष समाज कोई अलग-अलग नहीं होते हैं, आर्य समाज का तात्पर्य है आर्यों का समाज = आर्य समाज, आर्याओं का समाज = आर्य समाज। पौराणिक समुदाय में पिण्डदान वा संस्कार आदि में वैविध्यता है, वह अज्ञान मूलक ही हैं। पिण्डदान, दशाह, पितृस्थली तो पोपलीला ही है, यह अन्धविश्वास और धनहरण की पोपलीला मात्र है, संस्कार जैसे पुरुषों में होते हैं वही महिलाओं के हैं, कोई पृथक् से नहीं होते हैं, कर्तव्याकर्तव्य के कारण मन्त्र का विभेद वा एक के लिए नियत हो सकते हैं, यह उसी संस्कार के अंगभूत होते हैं, पृथक् से कोई संस्कार नहीं होता है। उद्देश्य समान और इसके प्राप्ति के साधन भी समान ही हैं, सम्भवतः इसीलिए यह भ्रम फैल गया कि इनके लिए वेद है ही नहीं, क्योंकि इनका पृथक् से उद्देश्य, गुण, कर्म कहा ही नहीं गया है, यह नहीं विचारा कि जो निर्देश पुरुषों के लिए हैं वही महिलाओं के लिए भी हैं, हाँ! जहाँ जिसके लिये विशेष आज्ञा की आवश्यकता थी वह विशेष आज्ञा भी है। आश्चर्य है! उपरोक्त सिद्धान्त जाना और समझा नहीं, परन्तु जीवन यात्रा के लिए आवश्यक कर्मकाण्ड तो होते ही हैं, फिर उसका क्या करें? उसके लिए पौराणिक विधि और नये मन्त्र की ही रचना कर डाली

और उसे नारी समूह को ही उद्देश्य विहीन, अन्धविश्वास और अज्ञानता के गर्त में धकेल दिया। धन्य है ऋषि दयानन्द को जिन्होंने इनको इस भयानक गर्त से बाहर निकाला और इनको भी पुनः वेदज्ञान का अधिकारी बना दिया, इन्हें भी समान उद्देश्य युक्त कर दिया, इन्हें भी इसकी प्राप्ति हेतु समान साधन उपलब्ध कराये जैसे उपासना में समाधि आदि की रीति जो पुरुषों के लिए है, वही महिलाओं के लिए भी है उपासना, सन्ध्या, शिक्षा, लक्ष्य आदि तुल्य ही हैं, इनमें कोई भी विभेद नहीं है।

पति परमेश्वर होता है! तो सम्बन्ध स्वामी और दास का ही हुआ फिर तुल्य कैसे है? तभी तो पत्नी पति के चरण स्पर्श करती है, अन्यथा यह क्योंकर होता? इसका कार्य पति और परिवार के लिए भोजन बनाना, साफ-सफाई करना, परिवार के लिए कमाना और सन्तान पैदा करना मात्र है, इस व्यवस्था को कैसे बदल पाओगे? गाड़ी दो पहियों से चलती है, नारी घर गृहस्थी का कार्य करे, पुरुष बाहर समाज का कार्य करे, पुरुष कमाये, नारी घर में व्यय करे, गृहकार्य करे और फिर नारी तो पुरुष की सम्पत्ति है, बेची तथा खरीदी जाती रही है, आर्य समाजियों का सिद्धान्त तो परम्परा के बिल्कुल उलट है? इससे परिवार ही विघटित होगा, यही दिखाई पड़ता है?

परमेश्वर दोनों का एक ही होता है, परमेश्वर परमेश्वर है, मनुष्य कितना ही प्रयत्न करे वह परमेश्वर कभी नहीं बन सकता है; परमेश्वर ने ही नर और नारी की सृष्टि की है, पति रक्षा करने के कारण पति है, पत्नी रक्षा करने के कारण पत्नी है, दोनों की व्युत्पत्ति एक है, दोनों एक दूसरे की रक्षा करते हैं, तो पति परमेश्वर है, यह सिद्धान्त भी पोपलीला है, आर्यों का सिद्धान्त नहीं है; पति, पत्नी का सम्बन्ध स्वामी और दास का नहीं है अपितु मित्रता का है जो सखे! सप्तपदी भव से शुरू होता है। शिष्य आचार्य के पैर

छूता है तो इसका तात्पर्य स्वामी और दास का सम्बन्ध है? नहीं है, वह आचार्य शिष्य को भोजन, वस्त्र, विद्या, रक्षण, शिक्षा के योग्य बनाता है, यहाँ श्रद्धा, उपकृत, नम्रता और उन्नति को दृष्टि पथ में रखते हुए चरण स्पर्श करता है। पति आयु में, विद्या में, बल में अधिक होता है और पत्नी की सर्वविध रक्षा और उन्नति करता है, तभी नमस्कार का अधिकारी बनता है, तभी पत्नी बाहर आने जाने पर चरण स्पर्श करती है, इससे वह दासी हो गयी, कहीं से भी ध्वनित नहीं होता है। हाँ यह तो अवश्य हुआ कि स्वयं को बड़ा से बड़ा त्याग करके भी उसकी रक्षा और उन्नति करनी चाहिए, उसके कष्ट हरने चाहिए, न कि पीड़ित करना चाहिए। सन्तान उत्पन्न करने का सामर्थ्य पत्नी में है, सन्तान को प्राथमिक शिक्षा देने का उत्तरदायित्व भी उसी का है क्योंकि प्रारम्भिक २-३ वर्षों तक उसकी सम्भाल माता ही कर सकती है, वही हर कष्ट सहकर उसकी रक्षा और देखभाल कर सकती है, पुरुष से सम्भव नहीं है, इसलिए ऋषियों ने स्वाभाविक व्यवस्थाएं बनायी कि माता देखभाल करे तो उसके निमित्त व्यवस्था भी बनायी गयी, गर्भाधान से लेकर विद्यालय जाने तक लगभग ३-५ वर्ष तक देखभाल करनी ही पड़ती है तो शिशु के साथ-साथ परिवार का भी उत्तरदायित्व साथ-साथ स्वयमेव निश्चित हो गया, जैसे यह बदला नहीं जा सकता है, मात्र व्यवस्थित किया जा सकता है और किया गया, कुछ अनिवार्य, कुछ वैकल्पिक व्यवस्था के कारण यह कार्यभार विभक्त करके स्वीकार किया गया, यह सुविधा के लिए था, थोपा नहीं गया था, न ही प्रतिबन्धित था, यदि एक सन्तान हो गयी; आगे अन्य कार्य की इच्छा है तो अनुमति थी, सन्तान नहीं करनी है तो भी अनुमति थी, पारिवारिक विवशता हो गयी तो भी अनुमति होती ही है, तब भी सन्तान के लालन-पालन, रक्षण एवं उत्थान के लिए बालक की देखभाल करनी ही पड़ती है, हर परिस्थिति में माता ही पालन कर सकती है तभी तो उसको जन्मदात्री के साथ-साथ

निर्मात्री भी कहते हैं। यह व्यवस्था उसी के द्वारा वरण किया गया है, परिस्थिति के अनुसार वह पढ़ा सकती है, लड़ सकती है, व्यापार कर सकती है इसमें कोई भी प्रतिबन्ध नहीं है। ५-६ सन्तान हुई तो गृहस्थ की आयु तो लगभग इनके लालन-पालन में ही व्यतीत हो गयी, यदि अन्य कार्य का भी उत्तरदायित्व रहा तो सन्तति का ठीक से निर्माण नहीं हो पाता है, तो यह तो आर्य निर्मात्री ही हुई, इसी के साथ-साथ पूरे परिवार का भी भोजन-छादन का उत्तरदायित्व इसके कन्धों पर आ जाता है, कोई यह सोचे कि इसके भीतर पाककला आदि की नैसर्गिक क्षमता होती है, तो यह असत्य है, आज भी बड़े-बड़े पाककला विशेषज्ञ पुरुष ही हैं और वे इसलिए हैं कि उन्होंने इस क्षेत्र में परिश्रम किया है, इसलिए यह व्यवस्था सुविधा और आवश्यकता के अनुसार ही निश्चित किया गया है, पत्नी पालन करे और धन भी कमाये तथा पति शराब पीये, जुआ खेले और दिन-रात गलियों में ताश ही खेलता रहे तो यह तो अन्याय और कर्त्तव्य-हीनता ही है, यह गृहकार्य और जीविका तो सुविधा के लिए बाँटा है, यदि पत्नी कमा रही है, तो पति गृहकार्य में हाथ बँटाये, गृहस्थी तो दोनों की साझा है, पति कमाये तो उत्तम है, कमाना ही चाहिए, निरर्थक गृहस्थी में बोझ नहीं बन सकता है, बीमार आदि की स्थिति तो विशेष परिस्थिति है। महिला को परिवार के पालन के उत्तरदायित्व के साथ समाज के कर्तव्य का भी पालन करना ही चाहिये, यह नहीं है कि समाज का कार्य पुरुष ही करे। नारी पुरुष की सम्पत्ति है तो पुरुष नारी की सम्पत्ति क्यों नहीं है? निश्चित ही है, परन्तु खरीद-फरोख्त की स्थिति तो दस्युओं में, अनार्यों में रही है, वहाँ पुरुष भी और स्त्री भी खरीदे-बेचे जाते थे, जाते हैं, गुलाम के खरीद-फरोख्त का चलन आर्यों में वा आर्यों का नहीं है। इसलिए केवल पत्नी को सम्पत्ति घोषित करना अनार्यपन के अलावा कुछ नहीं है; जो कुछ पत्नी का है वह पति का भी है और जो कुछ बन्धु, बान्धव, धन-सम्पत्ति,

नाम, सुख, दुःख पति का है, वह पत्नी का भी है, यही आर्य परम्परा है। दो पहिये की गाड़ी का उदाहरण पुराना हो गया है अब चार पहिये की गाड़ी चलानी चाहिए जो पितर (माता-पिता), पति-पत्नी और सन्तति है, इसको इस रूप में समझ सकते हैं कि पति, पत्नी, सन्तति और समाज है; इसको आगे बढ़ायेंगे तो पति, पत्नी समाज और राष्ट्र कहलायेगा, क्रमिक स्व उत्तरदायित्व निभाना ही चाहिए, परिवार के साथ-साथ समाज और राष्ट्र का भी उत्तदायित्व साझा ही है। आर्या अपने उत्तरदायित्व को भी समझती है, कोई इसका भी शोषण करके केवल स्वार्थ पूर्ति में ही लगाये रखे और इसे अपने जीवन उद्देश्य को प्राप्त ही न करने दे तो यह उचित नहीं है, केवल परिवार के लिए जीना ही तो इसका लक्ष्य नहीं है, इसका लक्ष्य तो वही है जो पुरुषों का है, यह तो व्यवस्था के लिए कार्यभार अलग-अलग ले लिया है, परन्तु लक्ष्य तो दोनों का बराबर ही है, इसलिए दोनों को मिलकर पारिवारिक कर्तव्यों को बाँटकर कार्य करते हुये अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ना चाहिए, यही योजना बनानी चाहिए, दोनों का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है, यह कहना कि नारी का कर्तव्य वा लक्ष्य केवल परिवार चलाना मात्र है, पोपलीला और अनाड़ीपने के अलावा कुछ नहीं है, जैसे पुरुष मोक्ष में जा सकता है वैसे नारी भी मोक्ष में जा सकती है, जैसे पुरुष को इस निमित्त पुरुषार्थ करना पड़ता है वैसे नारी को भी करना ही पड़ेगा और कर सकती है। इसलिए जीवन-यापन, समाज, राष्ट्र और मनुष्य जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जैसे आर्य संघर्ष करते हैं वैसे आर्या भी संघर्ष करें, अपने अपने गृह कार्य वा कार्य को इस प्रकार से नियोजित करें कि जीवन उद्देश्य को प्राप्त कर सकें, जीवन केवल खाने, कमाने, गाने, बजाने, पालन करने, लड़ने, झगड़ने, रूठने, मनाने, सोचने, समझाने में ही न व्यतीत हो जावे। आर्या भी आर्य के समकक्ष हैं, आर्या निर्मात्री भी है, प्राथमिक निर्मात्री भी और पश्चात् भी निर्मात्री हो सकती है। गृहस्थ जीवन

में रहते हुए भी पुरुष की ही भाँति अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने का संघर्ष करना चाहिये, आर्य को भी परिवार सम्भालना है और जीवन का उद्देश्य भी प्राप्त करना है। आर्या दासी नहीं, स्वामिनी है, केवल नाम मात्र का नहीं अपितु यथार्थ में, वह चाहे तो और चाहना चाहिए कि स्वलक्ष्य प्राप्ति के साथ-साथ पूरे परिवार को आर्य सिद्धान्तों पर चलाकर जीवन उद्देश्य के प्राप्ति की तरफ मोड़ दे और सबसे बड़ी सहायक बन समाज और राष्ट्र का भी परम हित कर दे।

आर्या की वेशभूषा क्या होती है? समाज में भिन्न-भिन्न वस्त्र धारण की परम्पाएँ-प्रथाएँ हैं, पाश्चात्य वेश-भूषा का भी अनुकरण होता है, फैशन में भी नित नये परिधान आते ही रहते हैं, समाज में हजारों प्रकार के परिधान पहने जाते हैं, तो क्या केवल साड़ी आदि पहनने वाली महिलाएँ ही आर्या हो सकती हैं?

आर्य सिद्धान्त को जानने, मानने और धारण करने वाली महिलाएं आर्या होती हैं, आर्या का परिमापक सिद्धान्त ज्ञान और उसका ग्रहण है न कि अन्य कुछ। ईश्वर को, वेद को, सत्य को किसी भी प्रकार का वस्त्र धारण करने वाली महिलाएं जान सकती हैं और मान सकती हैं, इसमें कोई संशय नहीं है, शुद्ध-विशुद्ध-परिशुद्ध भारतीय परिधान पहनने वाली महिलाएँ यदि मूर्ति-पूजा, चालीसा, पाठ, ढोंग, पाखण्ड करें तो क्या उसे आर्या कहेंगे? नहीं कह सकते है, हाँ! भ्रम तो थोड़े देर के लिए हो सकता है, परन्तु आर्य सिद्धान्तों के विषय आते ही बोध हो जाता है कि यह पौराणिक, ईसाई वा अभिनेत्री वा क्या है? इसलिए वस्त्र धारण आदि आर्या के परिचायक नहीं हैं। तो आर्या के वस्त्र किस प्रकार के होने चाहिए? देश (स्थान विशेष), काल, परिस्थिति, अवसर आदि, स्वानुकूल (स्वास्थ्य, रूचि) और शिष्ट वस्त्र धारण करने चाहिए, इसको ही सुवास कहा गया है, परिधान है, यशोधान है।

सुवास का अर्थ है अच्छी तरह से ढ़का जाय जिससे वह, सुन्दर ढंग से ढ़का जाय जिससे वह वस्त्र, क्या ढ़का जाय? शरीर वा शरीर के अंग, शरीर के अंग मुख्यतः प्रजनन अंग- गुह्य अंग। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि नख से लेकर शिखा तक वस्त्रों का धारण ही नहीं अपितु इसी में शरीर को ही छिपा दिया जाय, ऐसा वस्त्र जैसा कि मुस्लिम आदि सम्प्रदाय की महिलाए पहनती हैं, वस्त्रों के ही घर वा कारा में बन्दी बनाने जैसा दण्ड है, 'असूर्यम्पश्या दारा' का उदाहरण तो घर में बन्द रहने वाली नारियों के लिए था, यहाँ तो कपड़ों में ही 'असूर्यम्पश्या दारा' बना दी गयी हैं, इनसे भी इन्हें मुक्ति दिलानी चाहिए। दूसरी तरफ ऐसा नाममात्र का ही वस्त्र धारण न किया जाय जो संवेदनशील अंगों को ही न ढंक सके। तृतीय-ऐसा वस्त्र न हो जो ऋतु, स्वास्थ्य, शरीर के अनूकुल न हो और इस समाज में भी शिष्टता न कहाती हो, यदि फैशन चाहे जितने भी नित नये नूतन क्यों न हो यदि वह सुवास है तो धारण करने में समस्या क्यों होनी चाहिए? और यदि चाहे कितने ही परम्पराओं में हों परन्तु संवेदनशील अंगों को ही ढ़ांपने वाला न हो तो सुवास क्योंकर होवे? वस्त्रों में ही बन्दी को सुवास कैसे कह सकते हैं? इसलिए इसका निर्णय देश, काल, परिस्थिति, अनुकूलता, स्वास्थ्य को देखकर किया जाना चाहिए, यह वस्त्र धारण सुवास होना चाहिए। परन्तु नियत वस्त्र धारण आर्या के परिचायक नहीं हैं जैसे आर्य के वस्त्र 'न लिङ्गं धर्मकारणम्' के अनुसार आर्य के परिचिह्न नहीं है। उसी तरह से वस्त्र विन्यास आर्या के परिचिह्न नहीं हैं। परन्तु यह सुवास और यशोधान होना ही चाहिए और वह अलग-अलग भी हो सकता है, यदि वह सुवास है तो सामूहिक रूप से भी मान्य होवे, ऐसा होना भी उचित है जैसे साड़ी, सलवार-कमीज-चुनरी, घाघरा-चोली-दुपट्टा आदि। जो वस्त्र शरीर के उचित विकास में बाधक हो, उसे धारण नहीं करना चाहिये, धारण कर लिया तो आर्या ही नहीं रही, ऐसा मानना उचित नहीं है, अपशब्द

कहना भी उचित नहीं है, हाँ उससे होने वाली हानियाँ अवश्य बतानी चाहिये, जैसे बोन साई पौधों के बनाने की प्रक्रिया होती है, उस पौधे को तार आदि से लपेट देते हैं, उसे बढ़ने ही नहीं देते हैं, धीरे-धीरे पौधा उतना ही छोटा रह जाता है और कई साल का पौधा भी छोटा ही रहता है तब हम उसको अपने घरों में भी रख सकते हैं, उसी तरह से ऐसे वस्त्र न हों जो बोन साई पौधे की तरह शरीर की उचित वृद्धि को ही रोक दें। शिष्ट परिधान नहीं है तो वह भी बताया जाना चाहिये।

यही निर्देश इन श्रौतमन्त्रों में भी है-

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः॥
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥
परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि।
शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसं व्ययिष्ये ॥

इसी तरह आज जो वस्त्र का चलन है वा आगे चलन में आयेगा, इस देश में वर्तमान है वा विदेशों में चलन में है। खेलों में खेल के अनुकूल हों आदि सभी का विश्लेषण करके धारण करना वा कराना चाहिये। न वो रूढ़ि ग्रस्त होना चाहिए और न ही निरर्थक, अशिष्ट और स्वास्थ्य के प्रतिकूल वस्त्रों को पहनना चाहिए परन्तु सदैव यह भी स्मरण रखना होगा कि आर्या वा आर्यसिद्धान्त इतना कमजोर वा बाह्यमानकों पर निर्भर नहीं है कि वह अनुकूल वस्त्र न पहना, वा न कहा वा किसी ने आलोचना कर दी तो आर्यसिद्धान्त ही न रहा वा वह आर्या ही न रही। आर्या एक सुदृढ़ अभेद्य किला है जो आर्य सिद्धान्तों पर टिका है, वस्त्र आदि जैसे बाह्य मानकों पर नहीं, कि थोड़ा विपरीत हुआ तो किला ही ढ़ह गया। आर्यसिद्धान्तों को मानने एवं धारण करने वाली आर्या ही मुख्य है।

सिन्दूर, मंगल सूत्र, चूड़ी, बिच्छुआ, आभूषण आदि पहनने वाली महिला क्या आर्या होती है? आर्या को तो आभूषण रहित, सीधे

सादे सात्विक कपड़ों को पहनना चाहिये! आर्या को गाना, बजाना, पार्टी करना, पिक्चर देखना, तीर्थ घूमना आदि नहीं करना चाहिए फिर आर्या में और सामान्य महिला में अन्तर क्या रह जायेगा?

वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाला जैसे आर्य होता है, उसी तरह वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाली आर्या होती है। पाखण्ड, अन्धविश्वास, आडम्बर और मिथ्या रीति-रिवाजों को त्यागना ही चाहिए। जैसे अन्धकार और प्रकाश एक ही जगह नहीं रह सकते हैं, उसी तरह सत्य और असत्य भी एक ही जगह नहीं रह सकते हैं, ये एक दूसरे के पूरक नहीं अपितु एक दूसरे के विरोधी हैं। आर्या वैदिक सिद्धान्तों को मानती है तो निरर्थक रीति-रिवाज-चिह्न को छोड़ना ही चाहिए, जिससे जनता में संशय उत्पन्न हो और अन्धविश्वास पनपे, भले ही आप उसके नकारात्मक पक्ष को न स्वीकारते हों, न मानते हों, उसके पौराणिक रूप, लाभ को न मानते हों, परन्तु जनता तो उसी निरर्थक भाव में लेती है तो उसको छोड़ना ही उचित है, उससे कोई आर्यत्व में वृद्धि भी न हो रही हो, तो उसका पक्षकार होकर मानना, समर्थन करना हठधर्मिता के अलावा और क्या कारण हो सकता है? अर्थात् उसको छोड़ना ही उचित होता है। उसके पक्ष में तर्क ही करते रहना और चारों तरफ से समाज के प्रभाव में रहना ही शनैः शनैः सत्यसिद्धान्तों से दूर कर देगा फिर आर्य वा आर्या बने रहना कठिन हो जायेगा। सिन्दूर, मंगलसूत्र, बिच्छुआ आदि कोई शास्त्र विहित विधान नहीं हैं, कोई मंगल वा विवाहिता के परिचिह्न नहीं हैं, हाँ सुन्दरता के लिए आभूषण के रूप में लिया जावे तो अनुचित नहीं है, परन्तु नाक तक सिन्दूर का गुण्ठन पाखण्ड नहीं तो क्या है? मांग में सिन्दूर न हो तो लड़ाई-बखेड़ा पाखण्ड नहीं तो क्या है? सुन्दरता के लिए कहकर बहाने ढूँढना भी तो समझौता करना ही है, चूड़ी आदि काँच, शंख, स्वर्ण वा हीरा आदि का पहनना मंगल के लिए है तो पोपलीला ही है, शोभा के लिए पहनना है तो पहनिये परन्तु देश,

काल, परिस्थिति, अवसर देख लीजिए, आभूषण तो आर्या पहनती ही है, यह शोभा के लिए है, इससे आर्यापने में कोई वैगुण्य क्योंकर आवेगा? आर्या को सुन्दर, शिष्ट, रूचि के अनुकूल आभूषण वा वस्त्र आदि धारण करने में क्या समस्या है? यह कोई साधु वा भिक्षुणी है क्या जो गरीबी वा चिथड़ों में रहे? यह तो 'वयं स्याम पतयो रयीणाम्' को मानने वाली है। हाँ! स्व सामर्थ्य को देखकर ही आभूषण आदि धारण करने चाहिये, यह मात्र शोभन के लिए है, आर्या के परिचायक नहीं हैं। आर्या जब गृहस्थ है तो ब्रह्मचारिणियों जैसे व्यवहार की अपेक्षा रखना उचित नहीं है, वह आश्रम पूर्ण हुआ, अब वह गृहस्थ है तो सुख, समृद्धि, आमोद में रहना अनुचित कैसे हो सकता है? इसलिए गीत, नृत्य, उत्सव, देशाटन, फिल्म आदि देखने मात्र से वह आर्या से च्युत/विगुण/पृथक् नहीं हो जायेगी, तथाकथित तीर्थ स्थानों में भ्रमण करने से कैसे रोका जा सकता है? हाँ! वहाँ वह पूजा-पाठ न करें, पोपलीला समझे जिससे अन्यों को सजग करने में सुविधा रहेगी, इसलिए वह संसार भर में सुन्दर स्थानों वा मत-पन्थों के स्थानों को देखे, घूमे तो अच्छा ही है। आर्या और सामान्य महिला में छूआ-छूत वाला कोई अन्तर नहीं रहता है, वे दोनों एक हैं, छुटाई-बड़ाई इसमें नहीं होना चाहिए, हाँ वह आर्या नहीं है, यह जरूर सोचना चाहिये, तभी तो उस को आर्या बनाने का प्रयत्न करेंगे, उसे आर्ष सिद्धान्त सिखलायेंगे। आर्या वैदिक सिद्धान्तों को मानने और ग्रहण करने से है, बाह्य चिह्न धारण करने से आर्या नहीं होती है, यदि मानोगे तो एक से बढ़कर एक वस्त्राभूषण धारण करने वाली महिला मिल जायेगी जो मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारों आदि में पोपलीला भी करती होंगी वा नास्तिक होंगी, तब उन्हें भी श्रेष्ठ मानोगे क्या? नहीं मानेंगे। इसलिए आर्य सिद्धान्तों को धारण करना ही आर्यापना है, सामर्थ्य और रूचि के अनुसार अलंकृत होने में कोई हानि नहीं है, परन्तु इसमें भी ईर्ष्या, द्वेष, अनुकरण, प्रदर्शन मात्र नहीं होना चाहिए, सामर्थ्य और

आवश्यकता अवश्य देखना चाहिए, यहाँ इस सम्बन्ध में इतना विस्तृत दृष्टिकोण रखने का तात्पर्य है कि इन जैसी अनेकों क्रिया-कलापों को विश्लेषित कर लेना चाहिये, सभी को प्रश्नोत्तर के रूप में नहीं समझाया जा सकता है। मुख्य आर्य सिद्धान्त धारण है, सामर्थ्य एवं आवश्यकता के अनुसार अलंकृत होने में कोई हानि नहीं है, गृहस्थ सुखोपभोग के लिए भी है, इसमें वैरागियों जैसी प्रवृत्ति का क्या काम है, हो उलटा रहा है वैरागी सुख भोग रहे हैं और बेचारे गृहस्थ वैरागियों जैसे जीवन की कल्पना करके सोचते रहते हैं फिर दुःख में निमग्न होने में क्या संशय है? हम सामान्य सुखोपभोग की क्या कहें? राज्य आदि ऐश्वर्य को भी भोगने की कामना करते हैं और उसके लिए पुरुषार्थ भी करते हैं। यह केवल आर्या के लिए ही मात्र प्रतिपादन नहीं है अपितु आर्य के लिए भी है, **इन सबके साथ-साथ यह अवश्य सोचना चाहिए कि हम अपने राष्ट्र की स्थापना से हजारों वर्षों से अर्थात् द्वापर युग से ही वंचित हैं, कलियुग चल रहा है, संघर्ष भी कम हो रहे हैं, आर्य भी बहुत न्यून हैं तो राष्ट्र की स्थापना कौन करेगा? जो हैं भी, वे संगठित नहीं हो पा रहे हैं। तो गृहस्थ सुखोपभोग के साथ-साथ हम सबका कर्तव्य आर्यनिर्माण वा आर्या निर्माण भी है अर्थात् राष्ट्रस्थापना की ओर बढ़ना भी हमारा परम कर्तव्य है तभी हम वा हमारी सन्तति जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने में सक्षम हो पायेगी इसलिए आप खूब सुख भोगिए, क्योंकि सुखोपभोग हमारे लिए ही है परन्तु कर्तव्य को नहीं भूलना है, आर्य निर्माण भी हमारे जीवन का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिये, दोनों पति-पत्नी को इसके लिए धन-जन-विद्या देनी ही चाहिए,** वैसे भी आधिकारिक रूप से २५ वर्ष ही तो गृहस्थ के लिए हैं, उसमें भी उत्तरदायित्व ही सर्वाधिक है।

आर्या सन्ध्या करे और परिवार के साथ आरती भी करे,

परिवार के साथ पौराणिक देवी-देवता को भी पूजे और यज्ञ भी करे, मजार भी पूजे, चर्च भी जावे, ताबीज, धागे भी बाँधे तथा यज्ञोपवीत भी पहने, व्रत-उपवास-उद्यापन भी करे और आर्यसमाज के सत्संग में भी जावे, परिवार को विशेष कर सास को प्रसन्न रखने के लिए बिना मन से करवा चौथ भी कर ले और आर्य निर्माण में सहयोग भी करे राखी के यथार्थ महत्व को समझते हुए भी कि यह निरर्थक है, परिवार को प्रसन्न रखने के लिए राखी भी बाँधती है और स्वयं भी भाई की रक्षा के लिए तैयार रहती है। आर्य कर्तव्य का पालन भी करती है, तिलक भी लगावे, हाथ-पैर में डोरा भी बाँधे, कलावा भी बाँधे और आर्या भी कहलावे? परिवार को प्रसन्न रखने के लिए और दबाव में नाम दान भी ले ले और सन्ध्या भी करे? अस्थियों को गंगा जी पहुँचावे, तेरहवीं करे, मृतक भोज करावे, बरसी मनावे और अन्त्येष्टि में घृत से आहुतियाँ भी देवें, परिवार में शान्तियज्ञ भी कराया और महिलाओं ने तेरहवीं पर गायत्री (ब्राह्मण भोजन व वस्त्र दान, गायत्री जप) भी कराया, विवाह संस्कार आर्य रीति से हुआ और देगज पूजा (देवपूजा + कंगना) भी करायी, नामकरण भी करवाया और छठी पूजन भी हुआ तथा कुण्डली भी बनवायी गयी, संस्कार भी हुआ और गुरुग्रन्थ साहिब के फेरे भी लगाये, मृतक के पैर भी पूजे और जड़ पूजा मृतक की पूजा नहीं करनी चाहिए पर व्याख्यान भी दिये और सुने, हवन भी किये आदि अर्थात् पर्दा भी करे और आर्या कहलावे, पर्दा प्रथा उन्मूलन का झण्डा भी उठावे और घर में पर्दा भी करे। साम्प्रदायिक कर्मकाण्ड और मान्यताएँ भी मानी तथा आर्य कर्मकाण्ड भी किये और आर्य वा आर्या भी कहलायी, क्या यह सम्भव है? क्या इसे आर्या कहना चाहिए? क्या वह आर्या है?

दो नावों पर पैर रखकर जैसे नदी पार नहीं की जा सकती है, नदी में डूबना ही पड़ेगा, उसी तरह भिन्न साम्प्रदायिक भावना और आर्य भावना एक साथ नहीं अपनायी जा सकती है, आर्य कर्मकाण्ड जो साम्प्रदायिक वर्ग में भी मान्य है, उसे किया और उसके साथ-साथ अवैदिक निरर्थक विधि भी अपनायी, चाहे उसका कारण भय, लोभ, उपकार, अशान्ति-निवारण, कलह-निवारण, अविद्या, अल्प सामर्थ्य आदि ही क्यों न हो। यह पाखण्ड, आडम्बर, ढ़ोंग, छल, आर्यत्व से विपरीत ही हुआ, अन्ततोगत्वा ये सभी दु:खदायी ही होते हैं; यह हमें सत्यार्थ प्रकाश में नहीं अपितु अविद्यान्धकार में ही रखते हैं, चाहे हम वास्तव में अविद्या में हों वा कलह से बचने के लिए जानते हुए अविद्या का वरण करें, कर्म तो दोनों पक्ष में झूठ ही हुआ, इसलिए दु:ख तो भोगना ही पड़ेगा। आर्या को सिद्धान्तों में दृढ़ता अपनानी ही होगी, थोड़े समय तक अशान्ति और कलह हो सकती है, परन्तु दीर्घकाल तक सुख और शान्ति बनेगी, दूसरी तरफ थोड़े समय तक शान्ति का आभास होगा और जीवन पर्यन्त असत्य और अशान्ति का बोझा ढ़ोना पड़ेगा, इसलिए दृढ़ता सिद्धान्तों के परिपालन में होनी ही चाहिये। नहीं तो असत्य, अविद्या, अज्ञानता और निरर्थक रूढ़ि, रीति-रिवाज परम्पराओं के बन्धन को तोड़ोगे कैसे? इसी में जीवन भर उलझे रहोगे फिर आर्य कार्य के लिए समय कहाँ मिलेगा! वर्तमान के जीवन में मुश्किल से ३०-३५ वर्ष गृहकार्य के लिए मिल पाता है, इससे पहले पढ़ने लिखने में पश्चात् वृद्धावस्था की ओर बढ़ने में कालयापन होता ही है, यदि इन ३०-३५ वर्षों में पोपलीला ही बनी रही तो सत्य का पालन कब होगा, अगले जन्म में फिर अगले जन्म में, तो जन्मों की प्रतीक्षा क्यों की जावे? इसी जन्म में पोपलीला को तोड़ो, ध्वस्त करो इस किले को, जो है तो रेत का परन्तु सदियों से होने के कारण पत्थर जैसा बन गया है। एक बार ही नहीं अपितु बार-बार स्वयं, परिवार वा समाज में उथल-पुथल होने

दो, झूठी मान्यताओं के टूटने पर दु:ख तो होगा, होने दो, खाली-खाली लग रहा है तो लगने दो, कोई नाराज हो रहा है तो होने दो, जग रूठ रहा है तो रूठने दो, दूसरे की हिम्मत टूट रही है तो टूटने दो, स्वयं की हिम्मत मत तोड़ो, कलह हो रही है तो होने दो, अशान्ति पैदा हो रही है तो होने दो, गालियाँ मिल रही हैं तो मिलने दो, छुई-मुई क्यों बनो? विश्वामित्र बनने की आकांक्षा में झूठ को गले क्यों लगाओ? परिवार रूठ रहा है तो रूठने दो, स्वयं मत रूठो, आप नहीं तोड़ोगे तो समय इसे अवश्य तोड़ेगा, तब तक अन्य नयी साम्प्रदायिक रूढ़ियाँ आ जायेंगी, रिक्त तो होगा नहीं इसलिए हमी क्यों न तोड़ें, हम हानि की आशंका से घिर जाते हैं और जान बूझकर पाखण्ड करते रहते हैं बहुधा यही होता है कि आपकी आशंका निर्मूल ही होती है; परन्तु उस भावी दु:ख के भय से अन्धविश्वास के दल-दल में धंस जाते हैं और फिर निकल ही नहीं पाते हैं अपितु आगे आने वाली पीढ़ियों को भी इसी दल-दल में जीने के लिये विवश कर देते हैं, इसलिए आर्याओं को इन सदियों से चली आ रही रूढ़ियों को ध्वस्त करना ही होगा अन्यथा वे आर्या ही नहीं रह पायेंगी। जानते हुए पाखण्ड को करना छल है और छल करने वाली वह आर्या नहीं हो सकती है। भय से झूठ को अपना लेने वाली आर्या नहीं हो सकती है। लोग निन्दा करेंगे इससे सत्य को त्याग देने वाली आर्या नहीं हो सकती है। इस पोपलीला के करने से लोग प्रशंसा करेंगे, प्रशंसा के लोभ से अविद्या व पाखण्ड को करने वाली आर्या नहीं हो सकती है। परिवार के दबाव में झूठ और अन्धविश्वास को अपनाने वाली आर्या नहीं हो सकती है। किसी को प्रसन्न करने के लिए सत्य के साथ समझौता करने वाली आर्या नहीं हो सकती है। लोग शान्त रहें, कलह न करें, इसको मानकर पाखण्ड मानने वाली, पाखण्ड सहन करने वाली, उसमें सहयोग देने वाली आर्या नहीं हो सकती है। हमारे लिए आर्य और आर्या में अन्तर नहीं है, आर्य और आर्या के जीवन लक्ष्य में अन्तर नहीं है,

आर्या दासी नहीं है, आर्या निराश्रित नहीं है, आर्या अबला नहीं है, आर्या दुर्भाग्या नहीं है, आर्या बुरे कर्म का परिणाम नहीं है। आर्या मानव है, आर्या कर्महीन नहीं है, आर्या मात्र शूद्रा नहीं हैं, वह किसी भी वर्ण का वरण कर सकती है, आर्या अधम नहीं है, आर्या नरक का द्वार नहीं है, आर्या झूठ की गठरी नहीं है, आर्या स्वभावतः अल्प बुद्धि वाली नहीं हैं, आर्या क्रय-विक्रया नहीं है, आर्या अवगुणों की खान नहीं है, आर्या काम की देवी ही नहीं है, वह मोक्ष के ध्येय वाली भी है, आर्या का जन्म मात्र घर गृहस्थी के लिए ही नहीं हुआ है, वह आर्य के उद्देश्य की भाँति ही उद्देश्य वाली है। जो मात्र भोजन-वस्त्र-आवास के लिए आर्याओं को दासी समझते हैं, केवल घर में बाँधे रखना चाहते हैं, मात्र भोग्या समझते हैं, ऐसी प्रवृत्तियों से बगावत करो, इस दासता के बन्धन और भाव दोनों को तोड़ो, इससे मुक्त ही आर्या होगी, इसका तात्पर्य उच्छृंखल और स्वच्छन्द होना नहीं है। ऐसी नास्तिक पाखण्डी वा कम्युनिष्ट महिलाओं को समाज का नेतृत्व करते देख बगावती महिलाएँ उन्हीं जैसा बन जाती हैं वा ऐसा स्वप्न देखती हैं तथा घर, परिवार, समाज एवं राष्ट्र की विरोधिनी हो जाती हैं, इस तरह से मूढ़ आर्या नहीं हो सकती हैं, आर्या आर्यसिद्धान्तों को मानने वाली ही होती हैं, स्वच्छन्द नहीं अपितु स्वतन्त्र होती हैं, उच्छृंखल नहीं अपितु सभ्य और शिष्ट होती हैं। नास्तिक नहीं अपितु आस्तिक होती हैं, राष्ट्रद्रोही नहीं अपितु राष्ट्रभक्त होती हैं, झूठी कल्पनाओं, मूल्यों, सिद्धान्तों को मानने वाली नहीं अपितु ईश्वर के संविधान के अनुसार चलने और चलाने वाली होती हैं। आर्या सन्तति को श्रेष्ठ बनाने वाली होती हैं, पहली निर्मात्री तो वही हैं आर्या परिवार को बनाने वाली होती हैं, आर्या समाज और राष्ट्र की भी निर्मात्री है, निर्मात्री इसके स्वभाव में है, जगन्नियन्ता ने इसकी सृष्टि ही इन्हीं गुणों से की है। इसीलिए दासता और अन्धविश्वास के बन्धनों को काटो, इसकी श्रृंखला को छिन्न-भिन्न कर दो और कष्टों की चिन्ता न

करते हुए यथार्थ में निर्मात्री बनो! किसकी? स्वयं की, सन्तति की, परिवार की, समाज की और राष्ट्र की निर्मात्री। यदि आर्या जगी तो अन्य आर्या को भी जगायेगी फिर उथल-पुथल-संघर्ष हो शान्ति और सृजन प्रारम्भ हो जायेगा, आर्या भी संगठित हो, एक दूसरे का साथ दे परिवर्तन करो! घर, परिवार, समाज और राष्ट्र का परिवर्तन, इन्हें आर्यपथ पर चलाओ, इनका पुनर्निर्माण करो, संघर्ष और बलिदान निरर्थक रूढ़ि, परम्परा, रीति, रिवाज, पाखण्ड और आडम्बर को जड़ से मिटा देगा। आर्या सूर्यसम् तेजस्विनी होती है, वह अज्ञान और अन्धविश्वास के गहन अन्धकार में क्यों रहे? कैसे रह सकती है? अर्थात् नहीं रहती है। वह स्वयं विवेकशील होती है, किसी के कहने मात्र से अनुगन्ता नहीं होती है, वह आर्या है वह भी प्रमाणों से परीक्षा करके ही सत्यासत्य का निर्णय करने वाली होती है। वह आर्य से किसी भी अंश में कमतर नहीं है, विद्या बढ़ाकर उनसे श्रेष्ठ भी हो सकती है, इसमें संशय नहीं है फिर घर, परिवार में क्यों नहीं लड़ सकती है, अवश्य लड़ सकती है, लड़ेगी तभी तो उन्हें आर्यपथ पर चला पायेगी, बरसों की प्रथाओं और मान्यताओं को छोड़ने में कष्ट, भय और संशय होना स्वाभाविक है, इसलिए संघर्ष भी होगा, इसे झेलना ही पड़ेगा, न झेलो तो इसी गहन कूप में पड़े रहो, संघर्ष करो तो सत्यार्थप्रकाश में रहो और निर्मात्री बनो। इतनी भावना का तात्पर्य है कि जैसे आर्य संघर्षशील और विवेकशील होता है उसी तरह आर्या भी संघर्षशील और विवेकशील होती है, अपने जन्म को दोयम दर्जे का नहीं समझना चाहिए, जब मोक्ष के लिए संघर्ष करके दोनों मोक्ष में जा सकते हैं तो अन्य लक्ष्य तो गौण और साधारण हैं वे क्योंकर न प्राप्त किये जा सकते हैं, इसलिए आर्या अब प्रबल होवे, आर्य को इसका सर्वविध सहयोग करना चाहिए, पश्चात् आर्या भी संगठित हो, उद्देश्य प्राप्ति के लिए संघर्ष करे, आर्य को आवश्यक होने पर उनका भी सर्वविध सहयोग करे, आर्यसिद्धांत दोनों के लिए समान हैं,

कार्यविधि विवेकपूर्वक निर्णय करते रहना चाहिये, यही आर्य अनुशासन है, यही आर्य का जीवन दर्शन है। आइये संक्षिप्त से प्रश्न का समाधान भी करते हैं- आर्या सन्ध्या करेगी, परिवार के साथ आरती वन्दन नहीं करेगी, नामदान आदि नहीं लेगी, आर्या अग्निहोत्र करेगी, परिवार की प्रथा के अनुसार देवी-देवता, मजार, ईसा आदि की पूजा नहीं करती है, आर्या यज्ञोपवीत पहनती है, ताबीज, गण्डे, धागे नहीं बाँधती है, आर्या आर्यसिद्धान्तों के पालन का व्रत लेती है, वासरी व्रत, उपवास, उद्यापन न मानती और न करती है। आर्या आर्यसमाज में जाती है; पण्डे, पुजारी, नामधारी, साम्प्रदायिक सत्संग, मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च, नामघर में प्रवचन सत्संग, पाठ, भजन, कीर्तन, तिलावत उर्स, जिक्र, पुरश्चरण आदि में भाग नहीं लेती हैं।

गृहस्थ आर्या पतिव्रता होती है; करवा चौथ जैसे निरर्थक पोपलीला नहीं करती है, आर्या सबको प्रसन्न रखती है परन्तु किसी को प्रसन्न करने के लिए पाखण्ड़-आडम्बर नहीं करेगी। आर्या आर्यसिद्धान्तों से समझौता नहीं करती है, रक्षा बन्धन आदि व्यर्थ के पाखण्डों को नहीं करती है, न प्रोत्साहित करती है, भाई बहिन की और बहन भाई की रक्षा के लिए हमेशा तत्पर रहती है, इस सिद्धान्त के अनुसार तो दोनों को एक दूसरे को रक्षा बन्धन बाँधना चाहिए, यह बाँधा हुआ धागा तो १० दिन में टूट जाता है फिर क्या बचता है? मात्र भावना, तो यह निरर्थक पोपलीला क्यों? हाँ रक्षा की भावना और सहयोग हमेशा होना ही चाहिए।

आर्या आडम्बर करने वाली नहीं होती है, तिलक, दोनों हाथों में वा एक हाथ में पतला वा मोटा कलावा, पैर में डोरा आदि टोना-टोटका का चिह्न नहीं पहनती हैं, यह सब अन्धविश्वास मात्र है।

आर्या आर्यरीति से संस्कार को मानने वाली होती है, मृतक भोज, मृतक पग-पूजा, तेरहवीं, पिण्डदान, गंगा में अस्थि विसर्जन, महा ब्राह्मण

भोज, गायत्री आदि पोपलीला न करेगी, न करने देगी। यह समय, धन, प्रवृत्ति, बुद्धि, सत्य को नष्ट करना है, मात्र अज्ञान और पेट-पूजा है, अन्तिम संस्कार हुआ और तीसरे दिन अस्थि चयन होकर समाप्त हो गया, कोई सूतक, चौथा आदि नहीं होता है, सब समझौतावादी प्रवृत्ति है, मात्र आर्य रीति ही होनी चाहिये। विवाह संस्कार केवल आर्य रीति से होना चाहिए, देगज, कंगना, तुनतुना आदि व्यर्थ की रूढ़ियाँ नहीं होनी चाहिये, जब एक बार संस्कार हो गया तो दुनियाभर को प्रसन्न रखने के लिए पोपलीला क्यों करायी जावे? यह निरर्थक है, नहीं करना चाहिए, यही नामकरण संस्कार हो जाने पर पश्चात् वा पूर्व में ही छठीपूजा, दशवां शुद्धि आदि व्यर्थ है, संस्कार में प्रक्रिया और मन्त्रार्थ हमारे शिक्षा के लिए होते हैं, प्रक्रिया लक्षक होते हैं, परिवार को उत्तरदायित्व का भी बोध कराते हैं, आस्तिक भी बनाये रखते हैं, अन्य अनेकों साम्प्रदायिक कर्म-काण्ड जो हजारों की संख्या में पृथक्-पृथक् रूप रंग में होते हैं, उनको छोड़ना ही एकमात्र उनसे बचने का उपाय है; इसी तरह हजारों मान्यताएं, कोई टूटी-फूटी, कोई पूरी, कोई सुनी-सुनाई, कोई जान बूझकर फैलायी गयी, कोई ऐसी जिसका कोई स्रोत ही नहीं पता, कोई निरर्थक, कोई अर्ध निरर्थक, कोई डरायी गयी, कोई स्वार्थपूर्ति के लिए बनायी गयी, कोई समझ में ही नहीं आयी और नई ही बन गयी; वर्तमान है, घर-घर, गाँव-गाँव, शहर-शहर, जंगल-जंगल, देश-विदेश में फैली हुई हैं, इनको विश्लेषित करने लगेंगे तो भी अनेकों जन्म लग जायेंगे और सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो पायेगा; दुनिया के अति बुद्धि जीवी यही कर रहे हैं। इनको छोड़ना ही एक मात्र इनसे मुक्ति का उपाय है, वैदिक मान्यताएँ ही सत्य हैं, इनका विश्लेषण, प्रमाणगत परीक्षा और इनका धारण किया जा सकता है, संसार भर में प्रचलित समस्त सत्य मान्यताएँ इसमें सन्निहित हैं, इसको इस रूप में भी कह सकते हैं कि यहीं से गयी हैं और पाखण्ड, अन्धविश्वास, असत्य मान्यता, असत्य मिश्रित

मान्यता इसमें नहीं हैं, वे उनकी उपज हैं। इसलिए निस्संशय और नि:शंक हो आर्य सिद्धान्तों को ही जानना, मानना और धारण करना चाहिए।

क्या माँस पकाने वाली, माँस परोसने वाली, आमलेट बनाने वाली, हुक्का भरने वाली, शराब, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, तम्बाकू बेचने वाली; शराब, बीड़ी, सिगरेट, हुक्का पीने-खाने के लिए देने वाली आर्या कहला सकती है?

आर्या शाकाहारी होती है, आर्या का परिवार शाकाहारी होना चाहिये। वर्तमान विपरीत परिस्थितियों में आर्या का माँसाहारियों के घर में विवाह हुआ है, तो समस्या आती है, माँस पकाये, परोसे वा नहीं, उन बर्तनों में भोजन पकाये, खाये वा नहीं, आर्या यदि समझौता करके बनायेगी, परोसेगी तो एकदिन स्वत: खायेगी भी और अपने बच्चों को भी खिलाना पड़ेगा, सामान्य व्यवहार यही देखने में आता है। फिर वह आर्या ही नहीं रह पायेगी, पूरे परिवार का आर्यीकरण करने की कौन कहे? आर्या है, आर्या बने रहना है तो माँस न पकायेगी, न खायेगी, न पति, न बच्चों को खाने देगी, अन्य परिवार के लोग खाते हैं तो उन्हें भी समझायेगी परन्तु अपनी गृहस्थी माँसाहारी, अण्डाभोजी नहीं होने देगी, जो भी संघर्ष करना पड़े वह करे, अन्य आर्या को भी उसका सहयोग करना चाहिये। हुक्का नहीं भरना चाहिए, व्यक्तिगत सम्बन्धों के आधार से हुक्का भर देने मात्र से वह आर्या नहीं रही ऐसा नहीं है परन्तु सुधारक की दृष्टि से नशा करने में सहयोग व प्रेरक नहीं होना चाहिये। शराब, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, तम्बाकू आदि मादक द्रव्य को बेचने वाली कदापि आर्या नहीं हो सकती है। आर्या बनने के पश्चात् इन मादक पदार्थों को बेचने वा पीने-खाने के लिए किसी को भी नहीं देना चाहिए, बेचना तो कदापि नहीं चाहिये, परिवार में कोई पी-खा रहा है तो उनको समझाना चाहिये न कि उसमें किसी भी प्रकार का सहयोगी बनना चाहिए। घर में कोई माँस खाता है, शराब पीता है, अण्डा

खाता है, बीड़ी-सिगरेट-हुक्का पीता है, अफीम खाता है, शराबादि बेचता है तो उसके घर में कोई आर्य वा आर्या नहीं हो सकती है, ऐसा नहीं है, आर्य वा आर्या व्यक्तिगत गुणों से होती हैं, वह गुण, कर्म, एवं सिद्धान्त जो आर्यों के हैं, उसके भीतर हैं तो वह आर्य है, आर्या है, इसमें संशय नहीं है, परिवार के लोगों के भी अवगुणों को दूर करने का प्रयास उसे करते ही रहना होगा, उनका आर्यीकरण कर उन पर भी उपकार करना होगा, यह पारिवारिक उत्तरदायित्व भी है। इसके लिए उसे संघर्ष भी करना पड़े तो करना चाहिए, शुरु में विरोध होगा पश्चात् जीवन भर परिवार के लोग उस आर्या के ऋणी भी रहेंगे।

क्या एक ही बार में सत्र कर लेने से महिला आर्या बन जाती हैं? नौकरी, सर्विस करने वाली क्या घर का कार्य न करे? करेगी तो सामाजिक कार्य के लिए समय ही नहीं मिलेगा, परिवार में एडजस्ट, महिलाओं को ही क्यों करना पड़ता है? क्या पत्नी का उपास्य देव पति है? क्या पाककला आदि की शिक्षा महिला ही लेवे, पुरुष क्यों नहीं? क्या स्त्री ज्यादा भावुक होती है? क्या महिला ज्यादा बोलती है? क्या श्राप के कारण स्त्री के पेट में बात ही नहीं पचती है? क्या ईश्वर की भक्ति बूढ़ी होने पर ही करनी चाहिये? क्या आर्या को स्वयं वा परिवार का जन्म दिन मनाना चाहिये? आदि अनेकों प्रश्न शेष रह जाते हैं, उनके समाधान के बिना आर्या कैसे हो सकती है?

कक्षा में विषय को सुनने मात्र से किसी को समझ में आ जाता है, किसी को आधा, किसी को कुछ भी समझ नहीं आता है, तो उसका परीक्षाफल भी उसी रूप में रहता है, सत्र भी एक विशिष्ट कक्षा ही है जहाँ मनोवैज्ञानिक रूप से शास्त्र सम्मत आर्यसिद्धान्तों को समझाया, सिखाया और हृदयङ्गम कराया जाता है, एक ही सत्र में सभी सिद्धान्त समझ में आ जायें, आवश्यक नहीं है, आ भी जाता है, नहीं भी आ सकता है, न आवे तो

घर में जाकर विचार करे तब आ सकता है, न आवे तो दूसरी बार, तीसरी बार सत्र करे, परन्तु आर्य सिद्धान्तों के भली-भाँति समझ में आ जाने के बाद और आर्य वा आर्या बनने के लिए प्रबल दृढ़ संकल्प होने पर ही यज्ञोपवीत ले आर्य वा आर्या बनना चाहिए, चाहे इसमें ६ मास लगें, वर्ष लगे वा कई वर्ष ही क्यों न लगें।

इस मध्य अन्य प्रकार का सहयोग करते रहना चाहिये, आर्य उद्घोषित तभी करना चाहिए, जब आर्य सिद्धान्त समझकर ग्रहण होवें, ऐसे एक, दो, दस, बीस नहीं अपितु हजारों युवक हैं जिन्होंने सत्र के बाद महीनों वा वर्षों के उपरान्त यज्ञोपवीत ले आर्य बने हैं, एक ही सत्र नहीं अपितु अनेकों सत्र लगाने के बाद आर्य बने और आर्य हैं। आर्य बनाना कोई दबाव वा देखा-देखी नहीं हैं; स्व विवेक से सत्यासत्य का निर्णय करके ही आर्य वा आर्या बनते हैं, फिर स्वाध्याय करके सुदृढ़ सिद्धान्ततम हो जाते हैं, परन्तु आर्यों के सहयोगी तो सत्रविद्या ग्रहण करके हो ही जाते हैं। हमारा मुख्य लक्ष्य आर्य बनना और आर्य बनाना है चाहे वह एक बार में बने वा अनेक बार में सत्रविद्या ग्रहण करके बने, परन्तु सत्य ग्रहण करे अवश्य। स्वार्थी न हो, छली, कपटी, ठग, कुटिल, धूर्त न हो तो सत्र विद्या ग्रहण करने के उपरान्त इतना तो अवश्य ज्ञात हो जाता है कि सत्य यही है, मुझे इसे समझना चाहिये, तब वह एकाग्रता से समझता है, सीखता है और शीघ्र ही सिद्धान्तों को अपने यथा सामर्थ्य बुद्धि से तर्क करके सिद्धान्तों को परख कर ग्रहण करता है और आर्य बनता है, यही विद्या देने वा लेने की सार्वत्रिक प्रक्रिया विधि है। यहाँ यह ऋषियों के दर्शन विधा पर आधारित है, इसलिए शीघ्र वा अल्प प्रयास से ही ग्रहीत हो जाता है, अविद्यान्धकार को दूर कर सत्यार्थ प्रकाश कर देता है और लाखों लोग आर्य और आर्या बन कर स्व स्व कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ चलते हैं, बिना एक-दूसरे को जाने, बिना पंजीकरण हुये, बिना कार्ड धारक के ही एक सिद्धान्त के बल

से संगठित हो आर्य पथ पर बढ़ चलते हैं। आर्या जन्मदात्री है, आर्या निर्मात्री है, आर्या प्रथम शिक्षिका है, इसलिए पाकविद्या विशेषकर आनी ही चाहिये, तभी लालन, पालन, भरण, पोषण कर पायेगी, आर्य भी सीखते हैं, पाक में भी सहयोगी होते ही हैं, मध्यकाल की तरह भूखे मर जायेगें परन्तु रसोई में नहीं जायेगें, यह अहंकार नहीं पालते हैं। आर्या भी नौकरी आदि करती हैं तो उसे इस पर अहंकार नहीं होना चाहिए, सहयोग से गृहकार्य चलाना चाहिए, समय का उचित समायोजन कर सामाजिक कार्य भी अवश्य करने चाहिए, आर्यीकरण की अनिवार्यता तो है ही, पुरुष नौकरी कर रहा है तो अपने को दीन-हीन नहीं समझना चाहिए, अर्थ का उचित विनियोग करके परिवार वा समाज के हित के लिए कार्य करने ही चाहियें। कोई भी आर्या केवल घरेलू महिला (एक मात्र चौका चूल्हा, सन्तान उत्पत्ति, झाड़ू-वुहारू, सारी दुनिया केवल घर में ही बसती है ऐसा भाव) नहीं रख सकती है उसे आर्यीकरण, समाज और राष्ट्र हित के कार्य और उसके लिए संघर्ष करना ही चाहिये। पत्नी का उपास्य यदि पति है तो पति का उपास्य पत्नी होगी, यह भी पोपलीला ही है। दोनों का उपास्य केवल परमपिता परमात्मा है, वही केवल उपास्यदेव है। स्त्री भावुक होती है, ज्यादा बोलती है, उसके पेट में बात नहीं पचती, कम बुद्धि वाली होती है आदि-आदि अनेकों दन्तकथाएँ प्रचलित हैं, सभी निरर्थक और आधारहीन हैं, क्या पुरुष भावुक नहीं होते हैं? क्या पुरुष मौन ही रहते हैं? क्या पुरुष रहस्य का उजागर नहीं करते हैं? करते हैं, खूब करते हैं, इसलिए उपरोक्त सभी कल्पनाएँ मिथ्या हैं इनमें जैसे पुरुष हैं वैसी महिलाएँ भी हैं। अन्तर मात्र विद्या, शिक्षा, पालन, परिस्थितियों का है। एक सिद्धान्त के बोध होते ही वे आर्य बन जाते हैं और महिलाएँ आर्या बन जाती हैं, सारे अवगुण दोष बहुत पीछे छूट जाते हैं। ईश्वर की भक्त बन जाती हैं, सारे अवगुण दोष बहुत पीछे छूट जाते हैं। ईश्वर की भक्ति, सन्ध्या और उपासना बचपन से प्रारम्भ होकर मृत्युपर्यन्त तक होती है, वृद्धावस्था

में समय अधिक होता है परन्तु युवावस्था में सामर्थ्य ज्यादा होता है तो अधिक सामर्थ्य में ही उपासना अधिक सम्भव है और यथावसर नियोजित कर उपासना अवश्य करनी चाहिये। जन्मदिवस वा जयन्ती आदि मनाने की परिपाटी आर्य परम्परा (आर्ष ग्रन्थों) में नहीं है, परन्तु यदि मना लेवें तो हानि भी प्रतीत नहीं होती है, उस दिन यज्ञादि करके मिष्ठान्न बनाना खाना चाहिए, इस में कोई सिद्धान्त की हानि भी नहीं है, निरामिष केक आदि काटना मिष्ठान्न में ही है परन्तु मोमबत्ती आदि बुझाना निरर्थक और ईसाइयों का अनुकरण है। इस निरर्थक कार्य को क्योंकर करें। महापुरुषों की जयन्ती मनाना मात्र लोकाचार है। युवती का विवाह शीघ्र हो जाने से उसका एक भी वेद पूरा नहीं होगा, युवा का एक वेद २४ वर्ष तक हो जावेगा, तो उसकी शिक्षा तो अधूरी रह जावेगी, वह गृहस्थी संभालेगी वा गुरुकुल में पढ़ेगी, इसका समाधान आगे के अध्यायों में करेंगे, यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उसकी अधूरी विद्या को उसका पति ही पूरा करा देगा, गृहस्थ में होते हुए भी उसे एक वेद की विदुषी तो बना ही देगा। आजकल तो दुर्भाग्य है कि युवा हो वा युवती जीवनपर्यन्त तक किसी का भी एक भी वेद का अध्ययन नहीं हो पाता है, एक दूसरे को पढ़ाना तो दूर की बात रही। आर्य करोड़ों में होकर स्वराज्य की स्थापना करें और शिक्षा प्रणाली को परिवर्तित कर ऋषि दयानन्द के अनुरूप कर वेदों के विद्वान् वा विदुषियाँ बनें, बनावें, तो उपरोक्त अनेकों अनुत्तरित वा भविष्य में आने वाले प्रश्नों का समाधान होता रहेगा और विद्या की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी। अन्यथा गुरुकुल, पाठशाला, विश्वविद्यालय साक्षरता और आजीविका के साधन मात्र बनकर रह जायेंगे, जो अभी तो यही हैं, भविष्य भी इनका यही है। आर्य और आर्या के सिद्धान्त तुल्य हैं, उद्देश्य तुल्य हैं, प्राप्ति के साधन तुल्य हैं, फिर इतना विभेद क्यों है? इतनी असमानता क्यों है? इतना शोषण क्यों है? दासदासी का भाव क्यों है? स्व सम्पत्ति का भाव क्यों है? फिर जो

प्रबल होता है अवसर आते ही एक दूसरे को पददलित करता है, इसका कारण गुलामी ही है, दस्युओं अर्थात् आक्रान्ताओं की परम्पराएँ, प्रथाएँ, मान्यताएँ हममें भी फैल गयी और हमने मानव को मानव ही न रहने दिया, देवी को दासी बना दिया, मित्र को असूर्यंपश्या बना दिया, जिनके अधिकार, कर्तव्य और उद्देश्य तुल्य थे, उन्हें शिक्षा विहीन करके उसे और स्व सन्तति को वैदिक धर्म से हीन कर स्वयं भी पोपलीला में फँसकर नास्तिक बन बैठे। और वेद को मानते हुए भी वेद विरुद्ध कर्म करते रहे; जो वेद को नहीं मानते हैं, वे तो वेद विरुद्ध कर ही रहे हैं; जो वेद के विरोधी हैं, वे तो वेद विरुद्ध करते ही करते हैं; सभी वेद विरुद्ध कर्म में रत रहकर जीवन के उद्देश्य से ही हाथ धो बैठे।

इसलिए आओ! सत्य जानें, मानें, ग्रहण करें और आर्य तथा आर्या बन जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करें।

क्या जंकफूड, पकौड़े, समोसा, टिक्की, पिज्जा, बर्गर, गोल-गप्पे, मसाला डोसा खाने वाली महिला आर्या नहीं हो सकती है? क्या आर्या होटल में भोजन करने नहीं जा सकती है? होटल में गयी नहीं कि आर्या से भ्रष्ट हो गयी। विवाह-शादियों-पार्टियों में आर्या भोजन नहीं करती है। आर्या प्याज लहसुन, मशरूम आदि नहीं खा सकती है क्योंकि यह तो तामसिक भोजन है, आर्या अंकुरित भी नहीं खा सकती है क्योंकि इससे जीवहत्या होती है, आर्या चाय, काफी, कहवा नहीं पी सकती है, आइसक्रीम, केक, पेस्ट्री नहीं खा सकती है, कोल्ड ड्रिंक भूलकर भी नहीं पी सकती है पी लिया तो कैसी आर्या? आर्या को तो बिना नमक, मिर्च, मसाले के सादा भोजन करना और कराना चाहिए? आर्या को ज्यादा गरिष्ठ भोजन, दूध, फल, मेवे आदि भी नहीं खाने चाहियें, इसे तो स्वाद-रहित भोजनकर इन्द्रियजयी होना चाहिये इसे तो हमेशा आधा पेट ही भोजन करना

चाहिये, आधा पेट खाली रखना चाहिये। परिवार में सब भोजन कर ले तब बचा-खुचा ही भोजन करना चाहिये। भोजन आदि सुविधाओं पर पहला हक तो पुरुषों का है। आर्या बीमार नहीं हो सकती है। बीमार हो गयी तो कैसी आर्या, आर्या तो बीमारी से कोसों दूर रहती है, आर्या को तो महिलाओं का आदर्श बनकर रहना चाहिये, यदि आर्या इस तरह से सब जगह खाने-पीने वाली चटोरी, खाने खाने की, पेटू, भुखनी, स्वादिष्टतम् गरिष्ठ खायेगी, पियेगी तो सामान्य जन पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसे तो आदर्श बन कर रहना है और आर्या का धर्म भी यही है?

आर्या और आर्य वैदिक सिद्धान्तों को ग्रहण करने से हैं, मध्यकाल में जैसे समुद्र का पानी छू लिया वा समुद्र पार कर लिया तो वह पतित, जाति बाह्य धर्मभ्रष्ट माना जाता था और लोग उसे जाति से ही बाहर कर दिया करते थे, बड़े परिश्रम और बुद्धिमता से यह भ्राँति छूटी है और जल को जल की ही तरह माना जाने लगा, इसी तरह न जाने कितने तरह के अन्धविश्वास, ढकोसला, मनघड़न्त विधान, आदर्शता, दृष्टिकोण, भावना, छुआछूत, भेदभाव और कल्पनाएँ फैली हुई हैं, हम इसके औचित्य वा अनौचित्य पर ठीक से विचार ही नहीं करते हैं, उल्टे इन ढ़कोसलों को सत्य सिद्ध करने के लिए तरह-तरह के प्रमाण ढूढ़ते और बनाते रहते हैं, कहीं आयुर्वेद, कहीं शिष्टता, कहीं आदर्शता, कहीं वैज्ञानिकता, कहीं परम्परा, कहीं रीति-रिवाज, कहीं अनुभव की ओट ढूंढते रहते हैं। अलग-अलग क्षेत्र, जलवायु, परिस्थितियाँ और देश के अनुसार यह खान-पान परिवर्तित होता रहता है, अनुकूल वा प्रतिकूल भी होता रहता है, उनके खाने-पीने के ढ़ङ्ग भी बदलते रहते हैं, शिष्टता का भाव भी उसी के अनुसार बदलता रहता है, अनुकूलता वा प्रतिकूलता भी बदलती रहती है, कहीं नीचे जमीन पर भोजन अनुकूल है, कहीं डाइनिंग टेबल पर, कहीं बिस्तर में ही, कहीं

खड़े-खड़े, कहीं लेटे-लेटे ही अनुकूलता रहती है; इसलिए किसी आर्या ने भिन्न रूपों में भोजन कर लिया तो आर्या ही नहीं रही, तो यह आडम्बर, अन्धविश्वास और पोपलीला के अलावा क्या कहा जा सकता है, आर्या होना भोजन वा उसकी विधियों पर निर्भर है क्या? आर्या आर्यसिद्धान्त के ग्रहण करने से ही है, संसार में हजारों तरह के भोजन हैं, उनके करने की, उनके बनाने की विधि प्रचलित है, उसके अनुसार खा पी लिया तो आर्य ही नहीं रहे वा आर्या ही नहीं रही, ऐसी सोच को बुद्धिहीन व संकीर्णता के अलावा क्या कहा जा सकता है? केवल माँस वा माँस से बने खाद्य निषेध हैं, शाकाहार के हजारों, लाखों रूप हों वा स्वादिष्ट से स्वादिष्ट हों वा उनके खाने की वा अनुकूल विधि से खाने की प्रथाएँ हो तो उस के अनुसार खाने-पीने में क्या समस्या है, अर्थात् कोई भी नहीं है, नशा करना निषेध है, जो स्वास्थ्य के लिए पेय हैं, उसे पीने में क्या समस्या है, संसार में हजारों तरह के पेय प्रचलित हैं हमने अगर पी लिया तो आर्यत्व ही नष्ट हो गया, यह सब मानना अज्ञानता ही है। नित नये भोजन के प्रकार, विधियाँ, पेय के प्रकार और बनाने की विधियाँ खोज करते रहते हैं, आती रहती हैं, संसार भर में अलग-अलग हैं, ऋतुओं के अनुरूप भी होती हैं, पहले भी थी अब चलन में नहीं है ऐसा भी है, आगे भी आयेंगी, जो अभी नहीं है तो हम खा-पीकर पतित हो जायेंगे, ये सब यहाँ कूपमण्डूकता, बुद्धिहीनता और असमर्थता की खीझ मिटाना मात्र है, यहाँ इस प्रश्न को लिखने का उद्देश्य मात्र इतना है कि इन ढकोसलों में आर्या वा आर्य न फँसे और न उलझें ठीक-ठीक सोच विचार सकें और संसार भर में आर्यीकरण कर सकें अन्यथा भोजन के बखेड़े में ही हमने बड़े-बड़े राज्य खोये हैं, देश को गुलाम बनाने में इसका भी बड़ा हाथ है, सखरी-निखरी का बखेड़ा आज भी अज्ञानता को ही दर्शाता है, हम बुद्धिमान आर्य वा बुद्धिमती आर्या इनको ठीक-ठीक समझकर इन बखेड़ों से दूर रहकर स्वस्थ हो विश्व का

आर्यीकरण कर सकें, उससे पहले तो हमारे देश में ही विविधताओं का अम्बार है, इसके आर्यीकरण करने में ही कठिनाई आयेगी, पुराने आर्य समाजियों को तो घर-घरोन्दों में रहना था, भले ही छिप-छिप कर सब कुछ खायें पीयें परन्तु दिखावे के लिए प्रकट में आदर्श की बातें खूब करेंगे और अपने परिवार को ही अपने से दूर कर लेंगे, आप लोगों को तो सभी को आर्य बनाना है, परिवार, समाज, राष्ट्र और संसार को, तो यथार्थ को समझना ही होगा और उसी रूप में क्रियान्वित करना होगा। सर्वप्रथम तो शाकाहार के खाने-पीने से आपकी आर्यता नष्ट नहीं होती है। मान लो एक आर्या ठेले पर बच्चों के साथ गोलगप्पे वा चाँदनी चौक पर जलेबी खा रही है तो उसको क्या कहोगे? क्या वह भ्रष्ट हो गयी, पतित हो गयी, आर्या नहीं रही, क्या हो गयी? क्या वह मुसलमान हो गयी, उसे मुसलमान बन जाना चाहिए, क्या वह ईसाई हो गयी, उसे ईसाई बन जाना चाहिए, क्या वह हिन्दू हो गयी, उसे हिन्दू हो जाना चाहिए, क्या वह बच्चों समेत चान्द्रायण व्रत करके प्रायश्चित करे, तब भी क्या होगी? हिन्दू वा आर्या! यही तो हिन्दू मुसलमानों वा चाण्डालों के छू जाने पर करते थे, पतित कर जाति बाहर कर देते थे, आर्या इतनी कमजोर है कि चार गोल-गप्पे वा पावभर जलेबी खाने मात्र से पतित हो जायेगी, ऐसा तो मूर्खों की जमात ही सोच सकती है, बुद्धिमानों की सोच हो ही नहीं सकती है, बुद्धिमानों में भी बुद्धिमान जो आर्य वा आर्या हैं, उनकी कैसे हो सकती है अर्थात् नहीं हो सकती है, आर्य तो ईसाईयों, मुसलमानों, यहूदियों आदि समस्त सम्प्रदायवादियों के साथ बैठकर शाकाहार भोजन करने से किंचित् भी विगुणित नहीं होता है अपितु वह तो इन सभी मतावालम्बियों को ही आर्य वा आर्या बनाने का महा उपक्रम करता है, इसलिए खाने-पीने की विधि, प्रकार, प्रक्रिया में न उलझते हुए, व्यापक दृष्टिकोण को रख, कार्य करना चाहिए, भूख मिटे और स्वस्थ रहे, क्रमिक दोनों का ध्यान रखना आवश्यक है, कूपमण्डूक न

बनें और स्वच्छता का भी ध्यान रखें, तो निर्णय लेने में सुभीता रहेगी। जिस देश में करोड़ों शिशु, बाल, वृद्ध एवं महिलाएँ कुपोषण का शिकार हों अर्थात् कुपोषित हों, करोड़ों को भूख मिटाना ही कठिन हो रहा हो, उन्हें आयुर्वेद के हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक् का उपदेश देवें तो क्या होगा, जबकि जहाँ तक मेरा अनुमान है कि एक भी गृह ऐसा नहीं होगा जहाँ इसका पालन होता हो, यहाँ तक कि वैद्यों के यहाँ भी नहीं, थोड़ा बहुत रोगियों को छोड़कर, फिर इसकी परिभाषा भी सर्वत्र अलग-अलग है, इसलिए भोजन-पान में इसका आश्रय नहीं लिया जा सकता है, फिर कैसे करें? देश, काल, परिस्थिति के अनुसार भोजनचर्या आयुर्वेद के सिद्धान्तों के अनुसार हो, इसका निर्धारण आर्यों का संगठन करावे ऐसी आशा है, भविष्य में आर्यविद्वान् आयुर्वेद शास्त्र को विधिवत् पढ़ें, फिर मनुष्यमात्र के हितार्थ दिग्दर्शन करें, यथार्थ में यह भोजन आदि का निर्धारण अलग-अलग ही होता है, ऋतु, आयु, देश, प्रकृति, पारिस्थितिकी, उपलब्धता, रुचि, काल के अनुसार पृथक्-पृथक् ही होगा, समष्टिगत कम ही होता है, व्यष्टिगत ही अधिक है, इसलिए निर्धारण हेतु वैद्यों का समूह ही चहिये, जो भविष्यगत है। वर्तमान में खाने-पीने के कारण आर्यत्व वा आर्यता ही नहीं रहेगी, यह धारणा निरर्थक, अन्धविश्वास, ढकोसला और पोपलीला मात्र है, आर्यता आर्यसिद्धान्तों के कारण से ही है। आओ! भ्रान्तियों पर विचार करते हैं कि आर्या नमक मिर्च, मसाला रहित भोजन करती है वा करना चाहिए? क्यों? स्वादिष्ट भोजन किसके लिये है? म्लेच्छों के लिए। अनार्यों के लिए! सम्भवतः आर्ष परम्परा से अनभिज्ञ लोग ही ऐसी मूर्खतापूर्ण अवधारणाएँ बनाते रहते हैं, आर्या वा आर्य तो ५६ प्रकार के स्वादिष्ट, राजसी भोजन भी खाने के लिए होते हैं, आर्या वा आर्य ही तो स्वर्ग में रहने के अधिकारी होते हैं, मात्र घास-फूस, वा शाक-पात खाने वाले निर्धन, दरिद्री थोड़े हैं, शाक-पात खाने वाले आर्य नहीं होते हैं, ऐसा भी नहीं है, वे

भी आर्य हैं; ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणियाँ सादा वा सुपोषित भोजन करें, क्योंकि उन्हें विद्या ग्रहण करनी है, गृहस्थ आर्य वा आर्या क्यों न करें? वानप्रस्थी वा संन्यासी इन्द्रियजयी बन जिह्वा इन्द्रिय पर नियन्त्रण करें, क्योंकि उन्हें मोक्षगमन करना है, बेचारे गृहस्थ को क्यों ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी बना रहे हो, हमें खाने को नहीं मिल रहा है तो हम गृहस्थ को भी नहीं खाने देंगे, ऐसा अन्याय क्यों कर रहे हो, कहते हैं कि अभी से आदत पड़ी रहेगी तो अच्छा होगा तो यह सुखोपभोग अनार्यों के लिए है क्या? हो विपरीत रहा है, अन्य तो गृहस्थों के ही यहाँ खीर पूड़ी चूरमा खाते हैं और गृहस्थ को त्याग करो का पाठ पढ़ाते हैं। अजब संसार है। संसार का उत्तम से उत्तम पदार्थ हम आर्यों के लिए ही है, चाहे वह पहनने का हो, खाने-पीने का हो, रहने का हो, आभूषित होने का हो, सुख का हो, देखने, सुनने, व्यवहार करने का, वाहन, स्तुति, आशी: आदि का हो, राज्य सुख भी हम आर्यों के लिए ही है। वेद में यह कहा भी गया है, अनेकों मन्त्रों में यह निर्देश दिया गया है- **ओ३म्। इन्द्रं सोमं सोमपते पिबेमं माध्यन्दिनं सवनं चारु यत्ते०।** -ऋ०

आदि अनेकों इसी के विधान करने वाले मन्त्र हैं। इन सभी का संक्षिप्त से भावार्थ है कि संसार के सभी उत्तम से उत्तम पदार्थ आर्यों के ही सुखोपभोग के लिए हैं और होने चाहिये। फिर सादा भोजन उच्च विचार तो आलसियों, प्रमादियों, साधु-सन्त-महात्माओं का है। आर्यों का तो स्वादिष्ट, पौष्टिक भोजन उच्च विचार होना चाहिए। परन्तु सामर्थ्य के अनुसार ही यह होना चाहिए, सामर्थ्य पुरुषार्थ करके बढ़ाते रहना चाहिये, दूसरे आर्यों के सुख को देखकर मैत्री और मुदिता के ही भाव होने चाहियें, आर्य कार्य के लिए स्वविवेक, स्वनिर्णय के अनुसार ऐश्वर्य से जीवन जीने को कम या ज्यादा करना चाहिये, बिना त्याग वा बलिदान किये आप संघर्ष करके जनहित, आर्यहित वा राष्ट्रहित का कार्य नहीं कर सकते हैं। परन्तु ऐश्वर्य का उपभोग

करते हुये को देखकर यह नहीं कहा जा सकता है कि वह आर्य वा आर्या नहीं है अपितु आर्य सिद्धान्तों से युक्त है तो अवश्य आर्य वा आर्या है और यदि बहुत त्याग वा तपस्या में ही जीवन-यापन हो और आर्यसिद्धान्त ही न हों तो वह आर्य वा आर्या नहीं है, यही समझा जाना चाहिये। जंकफूड, पकौड़ा, समौसा, टिक्की, पिज्जा, बर्गर, पेस्ट्री, केक, मसाला डोसा, इडली, मेवा, मिष्ठान्न, चॉकलेट, आईसक्रीम आदि हजारों प्रकार के व्यंजन हैं। इन्हें खाने मे समस्या नहीं होनी चाहिये, स्वास्थ्य के अनुकूल हो तो खाइये, यह आप की रुचि पर निर्भर करता है, यह माँसाहार नहीं है घर पर बनाईये, होटल में खाईये, इसमें आर्यत्व की कहाँ हानि हो रही है, अनुकूल न पड़े तो न खाईये, आप लोग आर्य वा आर्या हैं, स्वयं अनुकूल, प्रतिकूल समझ सकते हैं। गृहस्थ आर्य वा आर्या विवाह, उत्सव आदि में क्यों न खावें-खिलावें, अवश्य खाना, पीना, खिलाना चाहिये, इससे संगठन में वृद्धि ही होती है; हाँ ऋण लेकर न हो, सामर्थ्य और आवश्यकता के अनुसार ही निर्णय लेने चाहियें। प्याज, लहसुन, मसाले, मशरूम आदि अनेकों तरह के मसालें हैं, भोजन को स्वादु बनाने वाले हैं तो उनको आर्य व आर्या क्यों न खावें? इससे उनके कौन से आर्य गुण की हानि हो जायेगी? ये औषधि और सुपाचक भी हैं छिपकर क्यों खावें? यह माँस, अण्डा नहीं है, शाकाहार में ही इनकी गणना होती है। हाँ! ब्रह्मचारी, संन्यासी न खावें, यह तो उचित है, परन्तु गृहस्थ तो स्वादिष्ट बनाकर खावें तो इसमें क्योंकर किसी को समस्या हो सकती है। रही तमोगुण की समस्या तो छह रोटी की जगह आठ रोटी खा लीजिये, यह भी तमोगुण का जनक हो जायेगा, कोई न खाना चाहे तो निर्देश नहीं है, परन्तु कोई खा रहा है तो निषेध भी नहीं है, इसमें किसी को नाक भौं नहीं सिकोड़ना चाहिये, टिप्पणी वा व्यंग्य नहीं करना चाहिए, अपने को छोटा, पतित वा असंयमी नहीं समझना चाहिये। माँसाहारी अण्डे से तो बचा नहीं जाता, शाकाहारी प्याज से इतना दिखावटी

परहेज, आश्चर्य है! चाय, काफी, कहवा आदि शराब वा नशीलें पदार्थ नहीं हैं, गृहस्थों को पीने में क्या समस्या है। एक आर्या चाय पी रही है तो वह आर्या ही नहीं है, अज्ञानता के अलावा और क्या है? अनुकूल नहीं है न पीजिये परन्तु यह ध्यान रहे कि इस तरह के अनेकों पेय, काढ़े आदि हैं जो भारत के ही पर्वतीय क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रचलित हैं, संसार में तो हैं ही। इसके पीने से क्या हानि हो जायेगी अर्थात् कुछ भी नहीं होगी। आर्या आर्यसिद्धान्तों के पालन से हैं, इसके खाने, पीने से कौन से आर्यसिद्धान्त की हानि हो रही है, यह नशीली वस्तु नहीं है। आर्या को बचा-खुचा क्यों भोजन करना चाहिये? यह शोषण और पक्षपात नहीं तो क्या है? क्या इसे सुपोषित भोजन नहीं करना चाहिये? अवश्य करना चाहिये। यह तो निर्मात्री है इसके लिये तो आवश्यक ही आवश्यक है, तभी तो सम्पूर्ण परिवार को सम्भाल पायेगी। वह आवश्यकता के अनुसार निर्णय करे कि उसे कब भोजन करना है, साथ में वा पश्चात् वा पूर्व। यह परिस्थितियों पर निर्भर है, हाँ प्रत्येक सदस्य का ध्यान रखे यह तो आवश्यक ही है। यह आधा पेट क्यों खावे? कोई ब्रह्मचारिणी है क्या? यह तो निश्चित ही पेट भर खावे, पौष्टिक खावे, श्रेष्ठ सन्तति बनावे, परिवार को सम्भाले और समाज और राष्ट्र का कार्य करे, हिन्दू नारी न बने कि जो बढ़िया घी, दूध वा पर्याप्त मात्रा में पुरुषों को भोजन करावे, बालक को करावे क्योंकि उसे कार्य करना है, परिश्रम करना है, पढ़ना है वा कुल को बढ़ाना है। स्वयं वा बालिकाओं को दोयम दर्जे का स्वयमेव न समझे और त्याग करते हुये कुपोषित रह जावे वा भूखी रह जावे, इस प्रकार का त्याग सराहनीय नहीं है। आर्या श्रेष्ठ वा सबल नहीं बनेगी तो निर्माण कैसे होगा? इसलिये पुरुषों को भी खिलाओ और स्वयं वा बालिकाओं को भी सन्तुलित, सुपोषित वा तुल्य भोजन ही कराना चाहिये। आर्या अन्धविश्वासी वा शोषण करने वाली परम्पराओं को नहीं मानती है। अंकुरित शाकाहार को क्यों नहीं करना चाहिये? यह भी

पोपलीला ही है, जैसे- वीगन लोग दूध को भी पशु उत्पाद मानकर शुद्ध शाकाहार में न गिनते हुये नहीं पीते हैं, यह भी मनघड़न्त परिभाषा ही है, वीगन लोगों को जो शाकाहारी होते है उन्हें भी दुग्ध वा दुग्धउत्पाद को खाने-पीने में संकोच नहीं करना चाहिये, उसी तरह शाकाहारी को अंकुरित भी खाना चाहिये, यह भी कच्चे फल वा शाक आदि जैसे ही तो हैं। होटल, ढाबा, पार्टी, उत्सव वा विदेश आदि में जाने खाने-पीने घूमने से आर्या भ्रष्ट कैसे हो जावेगी, परिवार के साथ कभी-कभार खाना, पीना, घूमना हुआ तो क्या हानि हो गयी? इन सब पर प्रतिबन्ध लगाना साम्प्रदायिक और रूढ़ि सोच के अलावा क्या है? कोई नहीं जाना चाहता, सामर्थ्य नहीं है न जावे, कोई समस्या नहीं है, कोई जाता है तो इसमें भी समस्या नहीं होनी चाहिये। देखा-देखी जाना बुद्धिमत्ता नहीं है, सामर्थ्य वा रूचि के अनुसार खाने, पीने, घूमने, देखने में कोई हानि नहीं है। पुनः ध्यान रहे कि आर्या तो आर्यसिद्धान्तों के ग्रहण करने के कारण है। संसारभर में ऐश्वर्य का उपभोग करे तो करे, इसमें किसी को कोई समस्या नहीं होनी चाहिये। कोल्डड्रिंक आदि अनेकों प्रकार के पेय स्वास्थ्य वा रूचि अनुकूल पीने में किसी आर्यता की हानि नहीं है, हाँ! परिणाम को देखकर स्वास्थ्यप्रद ही पीना चाहिये। परन्तु प्रचार, प्रतिद्वन्दिता आदि को भी दृष्टिपथ में रखकर निर्णय करना चाहिये। आज पक्ष में है मान लिया, प्रतिपक्ष में है छोड़ दिया, ऐसा नहीं अपितु स्वयं गुण-दोष का विवेचन करके निर्णय लेना चाहिये, यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह भी शराब नहीं है, हाँ! प्रतिकूल हो तो छोड़ देना चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं है कि पी लिया तो आर्या ही नहीं रही। यह भी एक काल्पनिक धारणा फैली हुई है कि आर्या बीमार ही नहीं हो सकती है, बीमार हुई तो कैसी आर्या? हाँ! किसी को भी बीमार नहीं होना चाहिये, परन्तु बीमार हो गयी तो आर्या ही नहीं है यह सिद्ध हो गया, मूर्ख अवधारणा के अलावा कुछ नहीं है, बीमार होने के अनेकों कारण होते हैं।

हजारों वर्षों से आर्य परम्पराएँ धूल धूसरित हैं यहाँ तक कि जीन्स (डी.एन.ए.-आर.एन.ए.) में भी परिवर्तन आ चुके हैं और हम लोग आर्य वा आर्या भी युवावस्था/प्रौढ़ावस्था/वृद्धावस्था में बना रहे हैं, खान-पान, हवा-मिट्टी-जल सभी प्रदूषित हैं, सभी ठीक हों तो आर्या वा आर्य ही नहीं अपितु सामान्यजन भी स्वस्थ ही रहेंगे, बीमार ही नहीं होंगे, यह व्यवस्था आर्यों को बनानी होगी। इस तरह की कपोल कल्पनाओं को बिना सोचे समझे सिद्धान्त नहीं बना लेना चाहिये, आर्या वा आर्य भी बीमार होते हैं, होंगे, उनकी चिकित्सा कराके स्वस्थ कराना चाहिये। आर्या को आदर्श बनना चाहिए। निश्चित ही जन सामान्य का आदर्श बनना चाहिये, आर्या कोई भिक्षुणी नहीं है, जो टुकड़ों पर पले, मात्र जीने भर के लिए खावे, आधे पेट खावे, बचा खुचा खावे, खाने पर टूट ही पड़े वा मारे शर्म के एक-एक टुकड़ा खावे, पुरुषों से उल्टा मुख करके खावे, बढ़िया भोजन पुरुषों को खिलाकर स्वयं भूखी सो जावे, अपना न खाकर बचत करे वा माँग-माँग कर खाती ही जावे, निमन्त्रण पर खाने के निमित्त भूखी ही रहे वा निष्प्रयोजन भोजन-पान को ही जीवन का लक्ष्य बना लेवे, स्वार्थ के वशीभूत होकर यथेच्छ खा-पीकर बीमार ही बनी रहे आदि-आदि अनेकों प्रकार की प्रचलित अवधारणाएँ, कार्यविधि वा विसंगतियाँ हैं। आर्या को इनसे मुक्त ही होना चाहिए, संतुलित ही होना चाहिए, संयमित रहते हुए विवेक से निर्णय करते हुए विश्वभर के सुख का उपभोग करना चाहिए, यदि गृहस्थ के २५ वर्षों में ही सुखोपभोग नहीं करेगी तो आगे तो न विधि है और न ही सुखोपभोग की सामर्थ्य होगी, परन्तु गृहस्थ में भी संयमित, मर्यादित होना आवश्यक है, यही तो आदर्श है यही तो आर्यता है इसलिए अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, निरर्थक धारणाओं, व्यर्थ की आदर्शता को छोड़ना है, परन्तु जो उचित है, आवश्यक है, उसे मानना है। दो बातों को अवश्य ध्यान में रखना है कि विश्व भर का उत्तम से उत्तम सुखोपभोग हम आर्यों

एवं आर्याओं के लिए ही है, सामर्थ्य वा रूचि के अनुसार उपभोग करना ही चाहिये, द्वितीय आर्या आर्यसिद्धान्तों के जानने, मानने और धारण करने से ही है।

काली वा भयंकर काली आर्या हो सकती है? मोटे-मोटे होठ वाली क्या आर्या हो सकती है? मोटी वा स्थूलकाय भी आर्या होती है क्या? वृद्धा वा बीमार भी आर्या हो सकती है क्या? आर्या तो सुन्दर, सुशील, उचित परिमाप वाली, बुद्धिमती होती है। अनपढ़ महिला भी क्या आर्या होती है? पहाड़ी, बंजारन महिला क्या आर्या बन सकती है? छोटे कद-काठी की कहीं आर्या होती है; चपटी-चपटी नाक वाली, पिचके-पिचके गाल वाली भी आर्या कहीं होती है? भूरे रंग की आँख वाली महिला भी कहीं आर्या होती है, जिसके बाल रेशमी, सफेद, कत्थई हों, वह कैसे आर्या हो सकती है? जिसके शरीर पर बड़े-बड़े बाल हों वह तो निश्चित ही आर्या नहीं हो सकती है? क्षयी, मृगी, अग्निमांद्य, बवासीर, श्वेतकुष्ठ, गलितकुष्ठ, कैंसर, मधुमेह रोग वाली, पीतवर्ण वाली, अधिकांग वाली, पीली वा स्फटिक नेत्र वाली, रेवती, रोहिणी, गंगा, यमुना, विन्ध्याचला, कोकिला, हंसा, उरगा, भोगिनी, दासी, कालिका, चण्डिका, चित्तारी, तुलसिया, गुलाब, चम्पा, चमेली, चाण्डाली, हिमालया, पार्वती, मैना, नागी, माधोदासी, मीरादासी, काली, एमिली, रोजा, अशरफी, शिण्टी, डॉयची, हेले, वेले, शाइनी, अन्दलिब, डेनिश, जिनान, अवेवी, अकुआ आदि नामों वाली क्या आर्या हो सकती है? कुरूप महिला क्या आर्या हो सकती है? हाथ-पैर कटे-फटे वाली महिला क्या आर्या हो सकती है? भिक्षुणी क्या आर्या हो सकती है? बिल्कुल श्वेत वर्ण वाली क्या आर्या हो सकती है? पतिता क्या आर्या हो सकती है? मुसल्मानिन, ईसाई, नन,

यहूदी, पारसी, आदिवासी, दलित, वनवासी, थेवर, लिंगायत, बोक्कालिंगा, जैनी, बौद्ध, तियान क्या आर्या हो सकती है? पुलावन, ब्राह्मण ईसाई, नायर ईसाई, त्यागी मुसलमान, अजलाफ जात, परिया, नमोशूद्र, मतुआ आदि दबी, कुचली, निर्धन, उपेक्षित, जाति व्यवस्था से त्रस्त-प्रताड़ित महिलाएँ क्या आर्या बन सकती हैं? ये तो सामान्य निदर्शन मात्र है, संसार भर में सभी जातियों में उपेक्षित अस्पृश्य वा लगभग त्याज्य महिलाएँ हैं, क्या वे भी आर्या बन सकती हैं? विधवा क्या आर्या हो सकती हैं? सफाई कर्मचारी, मैला ढोने वाली, दरिद्र, खानाबदोश, दीन-हीन, अनाश्रित, उपेक्षित, समाज के हासिये पर रहने वाली महिलाएँ क्या आर्या बन सकती हैं? लड़ने वाली, बकवाद करने वाली, मार-पीट करने वाली, स्पोर्ट्स खेलने वाली, पशु वा खेती का काम करने वाली, मजदूरी का काम करने वाली महिलाएँ क्या आर्या बन सकती हैं?

आर्या बनने का द्वार नारी मात्र के लिए खुला है, संसार में कहीं पर भी रहने वाली नारी जो समझने में सक्षम है, आर्या बन सकती है। रूप, रंग, जाति, क्षेत्र, स्वस्थ, रोगी, शोषित, वंचित, दलित, सवर्ण, आदिवासी, मुस्लिम, ईसाई, हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिक्ख, उत्तर, दक्षिण, अफ्रीकन, चाइनीज, जापानी, अमेरिकन, आस्ट्रेलियन, अग्रेज, यहूदी आदि किसी भी नाम से सम्बोधित क्यों न किया जाये, किसी भी तरह की अमीर, गरीब, क्यों न हो; सफाई करने वाली क्यो न हो, मैला ढोने वाली आदि हीन कर्म करने वाली ही क्यों न हो, किसी भी नाम वाली क्यों न हो, सभी नारियाँ आर्या बन सकती हैं। कुष्ठ, कैंसर, मधुमेह, मृगी आदि किसी भी तरह की रोगी महिलाएँ आर्या बन सकती हैं ये रोग हैं, मात्र इसके कारण से आर्यविद्या से वंचित कैसे रखा जा सकता है, समझने में सक्षमता ही मात्र विद्या ग्रहण करने में साधन है, वह है, तो आर्या बन सकती है, क्षमता न्यून

है तो धीरे-धीरे बढ़ाई जा सकती है, भाषा समझ में नहीं आती है तो सीखा जा सकता है, सिखाने वाला उनकी भाषा सीखकर उस भाषा में सिखा सकता है। शरीरगत अंग-प्रत्यंग में अधिकांग वा न्यूनांग आर्या बनने में बाधक नहीं हो सकता है, हमारे देश में ही उत्तर-दक्षिण-पूर्वोत्तर क्षेत्रों में रंग, रूप, आकार में अन्तर है, आर्यसिद्धान्त समझने में सक्षम है तो हम विभेद कैसे कर सकते हैं; वे सभी हमारे देश की महिलाएँ हैं, इस विद्या पर उनका भी समान अधिकार है, कुछ अनाड़ी लोग मणिपुर, अरुणाचल आदि की दिल्ली में पढ़ने वाली छात्राओं को चाइनीज कहकर अपमानित करते हैं, यह बड़े दु:ख, लज्जा और शर्म की बात है, वे छात्राएं भी हम सभी के लिये वैसी ही सम्मानित हैं जैसे- उत्तर वा दक्षिण भारत की छात्राएँ। यह तो उन छात्राओं का ही नहीं, हम सभी का अपमान है। वे मूर्ख बालक यह नहीं समझते हैं कि ये छात्राएँ भी आर्या बन आचार्या होकर उन्हें भी आर्यविद्या वा अन्य विद्या पढ़ा सकती हैं, इसमें कोई संशय नहीं है, इसमें बुद्धि कौशल्य की ही आवश्यकता होती है, अपने देश में रहने वाली करोड़ों नारियाँ आर्या बन सकती हैं। जब शिक्षा ही कई हजार वर्षों से छिन्न-भिन्न है और आज भी बहुत अच्छी तो नहीं कह सकते हैं, जब सार्थक नाम का पता ही नहीं है तो सम्बोधन के लिये नाम तो रखना ही है जैसे-तैसे रख लिया, केवल नाम निरर्थक रख लेने मात्र से हम उन्हें आर्य विद्या से वंचित नहीं कर सकते हैं, अपने देश में ही नहीं अपितु संस्कृत दृष्टि से देखा जाये तो विश्व भर में निरर्थक ही तो नामकरण प्रचलित है। उनकी भाषा दृष्टि से सार्थक भी हैं, निरर्थक भी हैं, तो उनके लिये भी विद्या का द्वार खोल उन्हें आर्या बनाना ही होगा, आर्या बनने के बाद बहुत ही उपहासास्पद नाम है तो परिवर्तित कर लेना चाहिये वा व्यवहार के लिये सार्थक उपनामों का उपयोग करना चाहिये। परन्तु नाम निरर्थक है तो आर्या नहीं हो सकती है, ऐसा नहीं होना चाहिये। असाध्य रोगी हो वा साध्य रोगी हो, आनुवंशिक

रोगी हो वा जीवाणु-विषाणुगत रोग हो, यदि समझने में सक्षम है, जीवन है तो विद्यायुक्त रहे, रोगों से लड़ने में सहायक ही होगा। जीवन चलता ही है किन्हीं न किन्हीं सिद्धान्तो पर ही, विचार शक्ति आर्यसिद्धान्तों की हो तो आर्या हो गयी, इन सभी को आर्यविद्या दे आर्या बनाया जा सकता है। एक महिला जिसके गलितकुष्ठ से अंग गल रहे हैं, समझने में सक्षम है और आर्य विद्या ग्रहण करना चाहती है, तो उसे आर्यविद्या देकर आर्या बनाना ही चाहिये, आप इस असाध्य रोग के कारण भी इसे विद्या से वंचित नहीं रख सकते हैं। गोरी, काली, भूरे नेत्र, पीले नेत्र, चपटी नाक आदि रंग, रूप आर्य विद्या को ग्रहण करने से कैसे रोक सकते हैं? अर्थात् नहीं रोक सकते, उन्हें भी आर्या बना सकते हैं। भिक्षुणी आर्य विद्या ग्रहण करे तो क्योंकर वह भी आर्या नहीं बन सकती है? अर्थात् बन सकती है, बनने के बाद आर्या के गुण धर्म मानने होंगे, भिक्षुवृत्ति छोड़नी ही पड़ेगी, कतिपय कारणों से समाज में जो पतिता गिनी जाती हैं उनके लिये भी विद्या प्राप्ति का अवसर रहना ही चाहिये जिससे वे समस्त अवगुणों से मुक्त हो वा समाज के अपवादों से लड़कर सार्थक जीवन जी सकें। सिर पर मैला ढ़ोने वाली महिलाओं को तो विशेष प्रयत्न से विद्या देनी ही चाहिये, जिससे इस अमानवीय कार्य से मुक्त हो आर्या बन सके। समाज के उपेक्षित, अनाश्रित, दीन, हीन, प्रताड़ित शोषित, वंचितों के लिए भी आर्य विद्या के प्राप्ति का उपाय करना होगा, उन्हें भी आर्या बनने का अधिकार है और ऐसा करके हम अपने ही कर्तव्य का पालन करेंगे। लड़ने वाली, बकवाद करने वाली, मारपीट करने वाली, कठोर वचन बोलने वाली, कलह करने वाली महिलाओं को क्या वेदविद्या नहीं पढ़ानी चाहिये? यदि नहीं पढ़ायेंगे तो इन दुर्गुणों से कभी छूट ही नहीं पायेगी। केवल एकमात्र विद्या ही है जो इन अवगुणों से छुड़ा सकती है, अतः इन पर भी कृपा करनी ही चाहिये, इनको भी आर्यविद्या देकर आर्या बनाने का प्रयत्न करना चाहिये अर्थात् इनको भी

आर्य सिद्धान्त देने का निषेध नहीं है। खेल कूद करने वाली अर्थात् विभिन्न स्पोर्टस में भाग लेने वाली बालिकाओं वा युवतियों को आर्या बनाना ही चाहिये। खेती बाड़ी, उद्योग धन्धे वा मजदूरी का कार्य करने वाली महिलायें भी आर्या बन सकती हैं, ऐसी नारियों को भी आर्या बनाना चाहिए। इनका भी इस आर्यविद्या को पाने का पूरा अधिकार है। आप जिन्हें मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि कहते हैं, ये सभी अन्त्यज ही कहाते हैं, इन्हें भी आर्य वा आर्या बनाना ही चाहिये। सिद्धान्ततः मनुष्य मात्र को आर्य विद्या देकर आर्य बनाया जा सकता है। अपने देश में वा समस्त संसार में कोई भी नारी क्यों न हो, उसे इस विद्या से वंचित नहीं किया जा सकता हैं, उन्हे इस विद्या को पाने का अधिकार है वे भी आर्या बन सकती हैं। व्यावहारिक रूप से विद्वानों को निर्णय करना चाहिये कि किस प्रकार और कितनी विद्या दी जावे जिससे पुरुषार्थ की सार्थकता रहे, विद्या देना ही व्यर्थ न हो जावे। यह देश, काल, परिस्थिति और योग्यता पर निर्भर करेगा और यह परिवर्तित होता रहेगा। मुख्य रूप से सिद्धान्त यही है कि संसारभर की नारियों को आर्या बनाया जा सकता है; जो सक्षम हैं उन्हें आर्या बनाना ही चाहिये। आप रंगभेद, जातिभेद, रूपभेद, भाषाभेद, अर्थभेद, क्षेत्रभेद, देशभेद, कर्मभेद और नामभेद आदि के कारण पक्षपात नहीं कर सकते हैं। इन समस्त भेदों से ऊपर उठकर मनुष्य मात्र के लिये वेद का द्वार खोलना होगा और मनुष्य मात्र को आर्य विद्या देकर आर्य वा आर्या बनाना ही होगा।

आर्य प्रशिक्षण सत्र में एक व्यक्ति विद्या ग्रहण के लिए बैठा और वैदिक सिद्धान्तों को जान-समझकर आर्य बनने की उत्कट इच्छा हुई, तो उसे आर्य बनाओगे कि नहीं! जब कि वह शराबी, माँसाहारी, नशेड़ी, मूर्तिपूजक आदि अवगुणी था?

वैदिक शिक्षा की प्रणाली हजारों वर्षों से छिन्न-भिन्न है, गुरुकुलीय परम्पराएं पुरुषार्थ करने पर भी पुनः पुनः टूट जाती हैं। भारतवर्ष एवं संसार

में शिक्षा की व्यवस्था अलग ढंग की है, उसमें वैदिक सिद्धान्त का कोई स्थान नहीं है, हजारों वर्षों से जो विकृत सिद्धान्त प्रसृत हैं, वही यथा-कथंचित पढ़ाये जाते हैं, नहीं तो साक्षर, गणित, विज्ञान, भूगोल, इतिहास आदि व्यवहार की शिक्षाएँ ही प्रचलित हैं, जो जीवन-यापन का साधन मात्र हैं। इन विषम परिस्थितियों में संसार भर में नाम मात्र गुरुकुल में १० हजार छात्र पढ़ते होंगे और स्कूल आदि में २०० करोड़ पढ़ते हैं; आर्य विद्या तो सभी २०० करोड़ ही को नहीं अपितु ७ अरब को देनी है। भारतवर्ष में ही १३५ करोड़ को देनी है, अतः हर तरह के लोग आर्यविद्या ग्रहण करने के लिए आयेंगे, लाये जायेंगे। एक व्यक्ति का पूर्व जीवन चाहे जैसा रहा हो, विद्या ग्रहण करके आर्य बनना चाहता है, तो बनाना ही होगा, आप आर्य बनने का द्वार किसी के लिए बन्द नहीं कर सकते हैं, हाँ जिसके भीतर ये सब अवगुण कम होंगे वा न्यून होंगे, उन्हें आर्य बनने में, बने रहने में सुभीता होगी, जो अवगुण से भरे हुए होंगे, उन्हें आर्य बनने में कठिनाई होगी परन्तु वे भी आर्य बनेंगे ही, इसमें कोई सन्देह नहीं है। वे भी आर्य बनते हैं, इसमें भी संशय नहीं है, ऐसे हजारों आर्य बने हैं, यह भी प्रत्यक्ष है।

आर्य विद्या आज ही ग्रहण की है, यज्ञोपवीत लेकर आर्य बनने का संकल्प लिया है। तो क्या उसको आर्य कहोगे? जब आर्य के गुण आ जाएँ, तब तो आर्य कहना चाहिये। अभी मात्र विद्या ही तो ग्रहण की है, तो इसको आर्य कैसे कहा जा सकता है?

जब तक आर्य विद्या ग्रहण नहीं की तब तक वह हिन्दू आदि है, आर्य विद्या-आर्य सिद्धान्त जान लिये, तब उसे क्या कहें? क्या हिन्दू? मुसलमान वा ईसाई क्या कहें? इसका तात्पर्य है यदि मुसलमान सत्र में बैठकर आर्य विद्या ग्रहण की और आर्य बनने का संकल्प ले यज्ञोपवीत ग्रहण किया, तो क्या उसको मुसलमान कहोगे? हिन्दू कहोगे? नहीं कहना चाहिये, फिर क्या कहोगे? आर्य कहने में आपको आपत्ति हो रही है, अन्य

शब्द से सम्बोधित करोगे, तो उसके औचित्य पर भी प्रश्न उठेगा और एक साम्प्रदायिक प्रवृत्ति भी पनपेगी, इसलिए उसको आर्य ही कहना चाहिये। 'तदधीते तद्वेद' सूत्र के अनुसार व्याकरणं अधीते = वैयाकरणः, व्याकरणं वेद वा वैय्याकरणः, यज्ञं अधीते याज्ञिकः, यज्ञं वेद वा-याज्ञिकः, धर्मं अधीते वेद वा-धार्मिकः। अर्थात् जो व्याकरण को पढ़ता है वह भी वैय्याकरण और जो व्याकरण को जानता है, वह भी वैय्याकरण, इसी तरह जो धर्म को पढ़ता है, सीखता है वह भी धार्मिक और जो धर्म को जानता है वह भी धार्मिक कहा ही जाता है। उसी तरह जो आर्यविद्या को ग्रहण कर, संकल्पित हो आर्य बनने के लिए तत्पर हो उठा है और आर्य बनने के लिए संघर्षशील है वह भी आर्य और जो आर्य सिद्धान्तों को ग्रहण कर आर्य बन गया है वह तो आर्य नाम से कहा ही जायेगा। इसलिए आर्य कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। हाँ! यदि आर्य के लिए संघर्ष करने वाला युवक आर्य गुणों को ग्रहण नहीं कर पावे वा न करे तो उसे आर्य नहीं कहना वा मानना चाहिये। इसलिए सत्र विद्या ग्रहण करने के उपरान्त आर्य कहा जा सकता है।

यदि कोई आर्य सिद्धान्त को पूर्णरूपेण जानता ही नहीं है, १०-२०% ही जानता व ५-१०% ही मानता है और ग्रहण करता है, एक ९०% सिद्धान्तों को जानता, मानता और ग्रहण करता है, एक जानता तो ९०-१००% तक है, और १०% ही ग्रहण करता है, तो क्या उसे आर्य कहोगे? अथवा आर्य में ही वर्ग बनाओगे? या आर्य नहीं मानोगे? कोई व्यक्ति पूरा-पूरा वेद को जान-समझ और ग्रहण तो कर ही नहीं सकता है, न्यूनता तो रहती ही रहती है, रहेगी ही रहेगी अतः जब न्यून ज्ञान और न्यून ग्रहण होने पर भी आर्य होता है अन्यथा सम्भव ही नहीं है तो १०-२०-५०% सिद्धान्त ग्रहण करने वाला आर्य क्यों नहीं हो सकता है? यदि कोई सिद्धान्त तो वही मानता है परन्तु

उसकी व्याख्या अलग ढंग से करता है, तो वह तो आर्य होना ही चाहिये? मूल तो समान है परन्तु व्याख्या ही तो अलग है इसलिए उसे आर्य मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए? क्या उसे आर्य कहा जा सकता है?

संविधान जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानित होता है, तो कोई क्षेत्र आप छोड़ कैसे सकते हैं, आप को प्रत्येक क्षेत्र में मानना ही होगा, ऐसा नहीं होगा कि उपासना करने में नियम मान लो और भोजन में नियम को छोड़ दो, इसलिए आर्य सिद्धान्त को पूर्ण रूपेण जानना-मानना और ग्रहण करना ही होगा, तभी आप आर्य कहलायेंगे, ऐसा नहीं होगा कि पाठ करेंगे वेद का और पूजा करेंगे मूर्ति की और कहेंगे कि हम तो इतने ज्ञानी और इतने अज्ञानी हैं। इतने में इतना आर्य कहना तो बनता है।

एक सिद्धान्त जानता है और ग्रहण ही नहीं करता है तो उसे आर्य नहीं कहा जा सकता है, एक सिद्धान्त जानता है परन्तु उसकी व्याख्या अलग करता है, तो सिद्धान्त क्या हुआ, सिद्धान्त तो समझने का ही नाम है जब व्याख्या ही अलग हो गयी तो वही सिद्धान्त है, यह कैसे मानोगे? सिद्धान्त को समझने के लिए ही तो व्याख्या की जाती है, अलग व्याख्या तो अलग सिद्धान्त ही हुआ, फिर समान सिद्धान्त को मानने वाले कैसे हुए?

जैसे शब्द है सगुण अर्थात् गुण सहित आप शब्द तो सगुण का लें और व्याख्या करें सगुण रूप की अर्थात् साकार की तो सगुण का अर्थ ही बदल गया, शब्द चाहे वही रखो, व्याख्या के बदलते ही सिद्धान्त बदल गया, यह भी ध्यान रहे शब्द की अलग व्याख्या करते ही, वह गलत सिद्धान्त हो गया। सिद्धान्त की उल्टी व्याख्या आपको सही सिद्धान्त तक नहीं ले जायेगी अपितु वह एक नया सिद्धान्त ही गढ़ेगी। इसलिए व्याख्यामात्र के अलग होने से उसे एक न समझो अपितु अलग ही समझो। इसलिए सभी सिद्धान्तों को ठीक-ठीक, जानना, मानना और ग्रहण करने के

उपरान्त ही आर्य कहे जाने चाहिए, नहीं तो संसार के सभी सम्प्रदायवादियों को भी आर्य कहना होगा, क्योंकि उन सब में भी थोड़ा बहुत वैदिक सिद्धान्त हैं ही। क्योंकि विश्वभर में जीवन और सिद्धान्त यहीं से तो गये हैं और मुख्यतः हिन्दुओं को तो आर्य कहना ही होगा, क्योंकि इनमें सर्वाधिक वैदिक सिद्धान्त समाये हुए ही हैं। कोई कहे मुझे तो पता ही नहीं है, जितना पता था, उतना ग्रहण किया तो हम तो आर्य हैं ही, नहीं, आर्य नहीं है; कहो कैसे? विदेश में व्यक्ति को कहीं से यज्ञविधि मिल गयी, यज्ञ करता है, परन्तु माँस भी खाता है तो एक गुण धारण करने से वा एक कर्म करने से आप उसे आर्य नहीं कह सकते हैं, उसे आर्य सिद्धान्त जानना ही होगा। सम्पूर्ण वेद को पुरुषार्थ से अधीत किया जा सकता है, इसमें संशय नहीं करना चाहिये, ईश्वर सर्वज्ञ है, उतना ज्ञान किसी को नहीं हो सकता है, वहाँ न्यूनता नहीं है। हमारी न्यूनता-अल्पज्ञता को जानकर ही ईश्वर ने उतना ही ज्ञान दिया है जितना हम ग्रहण कर सकते हैं; इसलिए वेद हम जान सकते हैं, इसमें भ्रम न पालो। हाँ! आर्य जीवन के लिए जो जो अतीव आवश्यक सिद्धान्त हैं, उसे ऋषि, मुनि, आचार्यों ने हमें पृथक् से भी बताया है। आर्य प्रशिक्षण सत्र में वह आवश्यक सिद्धान्त हमें बतलाये-समझाये जाते हैं। वह आर्य सिद्धान्त हृदयङ्गम कराने की अद्भुत प्रक्रिया है, जो ऋषियों के मन्तव्यों एवं प्रक्रियाओं पर ही निर्मित है। ऋषियों के ग्रन्थ उपनिषद्, दर्शन, सत्यार्थ प्रकाश आदि हैं। ऋषि दयानन्द का वेद भाष्य है। वहाँ से हम जीवन यात्रा हेतु वैदिक सिद्धान्त जान-समझ और धारण कर आर्य बन सकते हैं। अतः सम्पूर्ण सिद्धान्तों को जानने, मानने, ग्रहण करने वाला ही आर्य है। सिद्धान्तों की व्याख्या भी एक ही होगी, अन्यथा वह सिद्धान्त ही बदल जायेगा। वह आर्य विद्या जो अत्यन्त आवश्यक आर्य सिद्धान्तों को समझाती है और उन सिद्धान्तों को निर्भ्रम बना देती है, उसे ग्रहण किये बिना कोई आर्य नहीं हो सकता है, संशय बना

रहेगा और अज्ञान वा भ्रम वश विपरीत भी मानने लगेगा। इसलिए आर्य सिद्धान्तों को समझना भी आवश्यक है, तभी पालन करने में हम निःसंशय होंगे। इसलिए आधे-अधूरे सिद्धान्तों को मानने वाले लोग आर्य नहीं हो सकते हैं, तभी आजकल यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है प्रति सप्ताह वा प्रतिदिन यज्ञ भी करते हैं और मृत्यु उपरान्त मृत्युभोज भी, चौथा भी, गंगा में अस्थि विसर्जन भी, वेद प्रवचन भी करवाते वा सुनते हैं और शादी-विवाह में किराये पर आर्य समाज मन्दिर भी देते हैं तथा वहाँ शराब आदि की पार्टियाँ भी होती हैं, अनमेल भगोड़ों के प्रेम विवाह भी दक्षिणा-सहयोग के लिए आर्य समाज मन्दिर में होते हैं; केवल विवाह के लिए ही आर्य समाज मन्दिर भी खुले हुए हैं। दयनीय, चिन्ताजनक स्थिति है।

सत्यार्थ प्रकाश भी पढ़े-पढ़ाये-परीक्षा ली जाती है और अण्डे भी खाये-खिलाये जाते हैं। यह थोड़े-थोड़े दिग्दर्शन मात्र हैं, आप विचारेंगे वा अन्वेषण करेंगे तो आश्चर्य, दुःख, चिन्ता वा वितृष्णा ही होगी। इसका एक मात्र कारण आर्य विद्या और आर्य सिद्धान्तों की अज्ञानता है, उन का दोष इतना है कि उन्होंने जानने का प्रयत्न ही नहीं किया और मृत्यु बेला सन्निकट आ गयी। दोष तो हमारा है कि अपने को आर्य कहने-कहलवाने वालों को ही हम आर्य विद्या दे आर्य सिद्धान्तों को नहीं अवगत करा पाये और यह दुर्दशा बनी है और आश्चर्य यह भी है कि आर्य समाजी भी इस आर्य विद्या के दान में बड़े भारी रोड़े अटकाते रहते हैं। हमें इन स्वजनों पर दया भी नहीं करने देते हैं, परन्तु जैसे भूखे-प्यासे को भोजन-पानी देना ही चाहिए, उसे मरने नहीं देना चाहिये, उसी तरह आर्य विद्या देने का प्रयास करते ही रहना चाहिए। परन्तु पूरे के पूरे सिद्धान्तों को जाने माने ग्रहण किये बिना आर्य नहीं कहा जा सकता है। आर्य नहीं कहना चाहिये, आर्य नहीं मानना चाहिये और वह आर्य नहीं है। जब आप उन्हें आर्य विद्या दे देंगे और वे भी समान ही सिद्धान्त को ठीक-ठीक मानने लग जायेंगे, तो समस्त

वैर-विरोध छूटकर एक ही संगठन में बंधकर जन-जन को आर्य बनाने का उपक्रम सभी लोग करके संसार का बड़ा उपकार करेंगे।

क्या ईसाई, मुसलमान आदि भिन्न मतावलम्बी भी आर्य बन सकते हैं? क्योंकि वे तो बाल्यावस्था से ही माँस, अंण्डा, शराब, चर्च, मस्जिद और अनेकों कार्यवलियाँ आर्यों से विपरीत ही करते हैं।

संसार भर के मनुष्य मात्र आर्य बन सकते हैं, आर्य बनने से पूर्व वह अज्ञानता और अपने-अपने मतानुसार पूजा पद्धति, खान पान वा वैर विरोध करता रहा है, परन्तु आर्य विद्या जो तर्क पूर्ण है, उसको जानकर, मानकर वह आर्य बन सकता है। हाँ आर्य बनते ही उसे आर्य विरोधी सभी क्रिया कलाप, खान पान और पूजा-पद्धति छोड़नी ही पड़ेगी और सत्यपथ का-वेद पथ का अनुगामी बनना ही होगा।

क्या एक मनुष्य पाप के दल-दल में नख से शिर तक धंसा हुआ है तो क्या उसके लिए भी आर्यत्व का द्वार खुला है? हाँ क्यों नहीं! वह भी आर्य बन सकता है, जितना वह समझता है कि यह पाप है, पहले तो उसे स्वयमेव उससे अलग होना होगा फिर सत्र में बैठकर आर्य विद्या ग्रहण कर शेष बचे हुए पापों से भी दूर होना होगा और आर्यगुण, आर्यकर्म ही अपनाना होगा। जितना वह पाप कर चुका है वह तो भोगना ही पड़ेगा, आगे पाप कर्म को न करें, पुण्यदायी कर्म ही करे, फल इस जन्म में भी भोगना पड़ सकता है वा अगले जन्मों में भी। परन्तु आर्य विद्या देने के उपरान्त उसे आर्य मान लेने में सतर्कता बरतनी होगी, बहुत संघर्ष करने वाला ही अपने दुष्ट स्वभावों से लड़कर आर्य में स्थिर रह पाते हैं। उन्हें सहसा आर्य कार्य नहीं दिया जाना चाहिए, परीक्षण की अवधि सामान्य से अधिक होनी चाहिये। परन्तु आर्य विद्या से वंचित नहीं करना चाहिए।

निरुक्त शास्त्र में कहा है कि **'असूयकाय अनृजवे अयताय'** अर्थात् कुटिल, धूर्त, निन्दा करने हारे, कहने में ज्यादा करने में थोड़ा अर्थात्

कामचोर को विद्या नहीं देनी चाहिए। वह नुकसान ही करेगा। तो आप सभी को, हर तरह के लोगों को यह विद्या दे आर्य क्यों बनाते हो?

आचार्य यास्क और उनसे भी पहले ऋषियों-मुनियों का यह मन्तव्य शिरोधार्य है, परन्तु सत्र में लाने से पहले हमें उसके इन दोषों के बारे में नहीं पता होता है, विद्या ग्रहण कर ली फिर आर्य बन भी सकता है और विद्या ग्रहण कर अधिक प्रबल विरोधी भी बन सकता है, दोनों सम्भावना हैं इसलिए अनुमति हो जाती है। प्राय: पता होने पर ऐसे लोगों को सत्र में कोई बैठाता ही नहीं है और वह कुटिलता करने के अलावा बैठता भी नहीं है, अज्ञानता के कारण ही ऐसा होता है और संगठन को इसका परिणाम भी भुगतना पड़ता है। पूर्वोक्त प्रश्न में पता होने पर भी कि यह सभी दोषों, निन्दा कार्यों और विरोधों में संलिप्त रहा है, तो नहीं बैठाना चाहिये। परन्तु बैठने से पूर्व ही जब वह सत्य को जानने का जिज्ञासु होकर संकल्पित होता है तब उसे स्वमत सम्प्रदाय के, कार्य, व्यवहार और सिद्धान्त में संशय होता है तभी वह सत्य जिज्ञासु होकर सत्र में बैठना चाहता है, तो बैठने की अनुमति देनी ही चाहिये और पूर्व में जिज्ञासुभाव एवं सत्यता का परीक्षण कर लिया जाय तो अत्युत्तम होता है, तब सत्र में बैठकर विद्या ग्रहण कराना चाहिए, हाँ जिसको आप विरोधी, द्वेषी, कुटिल प्रवृत्ति वाला समझते ही हैं, उसे नहीं बैठाना चाहिये, उस पर विद्या का न्यून प्रभाव पड़ता है, बहुधा वह सिद्धान्तों को जान अधिक कुटिल भाव वाला हो सकता है। इसलिए यहाँ इतनी सतर्कता तो रखनी ही चाहिये। आर्य विद्या तर्कपूर्ण, अकाट्य और सत्य है तो विरोध आदि होने पर उत्तर देने में किंचित् भी कठिनाई नहीं होती है इसलिए अधिक चिन्तित नहीं होना चाहिये। आर्यों के लिए नियम-"सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिये।" है यही परन्तु जिज्ञासु प्रवृत्ति के लिये- सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में उद्यत रहने वाले जिज्ञासु प्रवृत्ति को लाने में अधिक परिणाम होगा।

परन्तु वर्तमान काल में जो सरल भाव से विद्या ग्रहण करना चाहे, उसे सत्र में आर्य विद्या ग्रहण करने का अवसर अवश्य देना चाहिये और पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये कि वह आर्य बन सके।

क्या आर्य कोट, पैन्ट, शर्ट, टाई, कुर्ता, धोती, पाजामा, पगड़ी, टोपी, लुंगी, जीन्स, कटिवस्त्र, बनियान, कौपीन, कच्छा, जूता, मौजा, दस्ताना आदि पहन सकता है? यह सब कपड़े तो ईसाई, मुसलमान, हिन्दू आदि भी पहनते हैं। तो आर्य को क्या पहनना चाहिये? इनका वेश पहनने से वह आर्य कैसे रह पायेगा?

वेश-भूषा से कोई आर्य नहीं होता है, चाहे जितना श्वेत कटिवस्त्र उत्तरीय पहन ले, यदि वह आर्य सिद्धान्तों को नहीं जानता वा मानता है तो वह आर्य नहीं हो सकता है। कोट, पैन्ट, शर्ट पहनने वाला यदि आर्य सिद्धान्तों को धारण करता है तो वह निस्सन्देह आर्य है। न लिंगं धर्म कारणम्। बाह्यचिह्न अर्थात् ये वस्त्राभूषणादि मात्र से ही कोई धार्मिक हो गया, यह नहीं है, यह धर्म का चिह्न नहीं है, धर्म का चिह्न तो सद्गुण हैं, जो व्यवहार में प्रकट होता ही है। देश, काल, परिस्थितयों के अनुसार यथायोग्य वस्त्र धारण किये जा सकते हैं, जो आवश्यक, शोभायमान, शिष्ट, ऋतु अनुकूल और स्वास्थ्यप्रद हों। शरीर रक्षण में उपयुक्त हों। परन्तु जो केवल मात्र किसी मत के प्रकट प्रतीक रूप में हो उसे नहीं धारण करना चाहिए जैसे उष्ण, शीत वा वर्षा, सुरक्षा आदि में तुर्की टोपी किस काम की है, जाली-जाली ही तो है परन्तु मुस्लिम मतावलम्बी पहनते हैं। हिन्दुस्तानी टोपी, धूप, आदि से बचाती तो है। हाँ जिन आश्रम के लिए वस्त्र नियत है, रंग भी निश्चित हैं, उन्हें इन सबको नहीं पहनना होगा, गुरुकुल में आर्षविद्या पढ़ने के काल में नियत है और संन्यासी के लिए काषाय रंग नियत है तो वह रंग बिरंगे कोट-पैन्ट-पतलून कैसे पहन सकता है? यह पहनावा मर्यादा के विरुद्ध होगा। परन्तु यदि वह अण्टार्कटिक में जाता है तो

शरीर-रक्षण के उपयुक्त वस्त्र धारण करे, अन्यथा शरीर ही जम जायेगा, परन्तु अन्यत्र प्रायः जलवायु इतनी विकट नहीं होती है। टाई को कुछ लोग क्रॉस का चिह्न मानते हैं, कुछ शिष्टता, कुछ आवश्यकता वाले कहते हैं शीत के कारण पहने हुए शर्ट आदि को गले में बाँधने के लिये है और इसके कई रूप हैं, तो आवश्यकतानुसार छोटी करके पहन लो, यह भी चलन में है, तो अनेक कारण दिये जा सकते हैं, केवल टाई ही नहीं, अन्य वस्त्राभूषण की आवश्यकतानुसार, शिष्ट एवं देशानुकूल पहनने से आर्यत्व में कोई हानि नहीं है। आर्यत्व वैदिक सिद्धान्त ग्रहण करने में है। वस्त्राभूषणादि शिष्ट और उपयोगिता हो तो धारण करने में कोई हानि नहीं है। भारत वर्ष में ही अनेकों क्षेत्रों में वस्त्राभूषण पृथक्-पृथक् हैं, उनसे निरपेक्ष होते हुए आर्य विद्या से सबको आर्य बनाना चाहिए, पश्चात् शिष्ट, गरिमामयी, देशानूकूल, आवश्यकतानुसार धारण करने में कोई हानि नहीं है। जब भारत में ही इतनी विविधता है। तो संसार में तो विविधता की क्या कमी होगी? इसलिए सर्वत्र पूर्वोक्त एक ही नियम ध्यान रखना चाहिए। इन वस्त्राभूषणों के पृथक्-पृथक् होने पर भी सार्वत्रिक एक ही वैदिक सिद्धान्त मान्य होता है और इसी से सर्वत्र एक ही प्रकार के अर्थात् तुल्य आर्य होते हैं।

परिवार में एक ही युवक आर्य है, परिवार में कोई भी आर्य नहीं है, न ही बना पा रहा है, तो क्या वह आर्य है? क्या वह आर्य रह पायेगा? परिवार के दबाव से उसे कई कार्य आर्य से विपरीत करने पड़ते हैं तो क्या वह आर्य है?

युवक आर्य बन गया, घर के अन्य लोगों को आर्य बनाने का प्रयत्न करता है, नहीं बना पाता है, तो इस असफलता से वह आर्य नहीं रहा, ऐसा नहीं है, हाँ प्रयत्न ही न करे तो यह नियम का उल्लघंन होगा, यदि घर के लोग आर्य नहीं बनते हैं तो उसे आर्य बने रहने में कठिनाई आयेगी, इसलिए प्रयास नहीं छोड़ना चाहिये, अपने त्याग, सदगुण और विवेक से होना तो

यह चाहिये कि परिवार के लोगों को आर्य बना देवे, यह हजारों में हुआ है, परन्तु यदि वह परिवार के ही दबाव से पुनः मूर्तिपूजा, व्रत, उपवास, तिलक, कलावा, भूत-प्रेत में फंस गया और दिखावे के लिए ही सही उसे माने, कुछ कहने लगते हैं कि मन से तो मानता नहीं परन्तु घर में शान्ति बनी रहे, इसलिए करना पड़ता है, तो यह सब कमजोरी के बहाने मात्र हैं, धीरे-धीरे मन से न मानना मन से मानने में बदल जावेगा, तो उसे आर्य क्योंकर कहोगे? लोकाचार प्रकट वा अप्रकट, विरोध वा संतुष्टि, प्रशंसा वा लाभ के लिए सिद्धान्तों को तोड़ना-मरोड़ना-विपरीत करना, आर्यत्व से च्युत ही करेगा अर्थात् वह आर्य नहीं है, यही निश्चित हुआ। कल के दिवस विपरीत परिस्थितियों के आने पर वह आर्यों से, आर्य सिद्धान्तों से विश्वासघात, धोखा अवश्य करेगा; उसके लिए स्वार्थ पूर्ति परमावश्यक है। ऐसे आर्य नाम धारियों से सावधान रहना चाहिए अपितु उसे आर्य ही नहीं मानना चाहिये।

क्या फिल्म देखने वाला आर्य होता है? क्या आर्य देशाटन नहीं कर सकता है? क्या आर्य नृत्य संगीत नहीं करता है? क्या आर्य अभिनेता नहीं बन सकता है? क्या आर्य रंगमंच पर अभिनय नहीं कर सकता है?

गृहस्थ आर्य सुख का उपभोग क्यों नहीं कर सकता है अर्थात् कर सकता है, हाँ वह आवश्यकता, सामर्थ्य और परिस्थिति देखकर निर्णय करता है, जिससे आर्य नियमों का उल्लंघन न हो, वह सुखोपभोग क्यों न करे? अपितु सर्वोत्तम सुख का उपभोग तो आर्यों के लिए ही होना चाहिये, इसलिए कोई आर्य फिल्म देखने चला गया तो वह अनार्य हो गया, ऐसा नहीं है, हाँ! संन्यासी को देखने न जाना चाहिये। आर्य गृहस्थ को नृत्य-संगीत आदि भी वर्जित नहीं है परन्तु आवश्यकताएं उचित निर्धारित अवश्य करनी चाहिये। आर्य अभिनेता भी बनता है, रंगमंच कर्मी भी बनना

चाहिए, हाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह कार्य कर सकता है और करना चाहिए, तब भी वह आर्य है, एक युवक सत्र में आर्य विद्या ग्रहण कर ली और आजीविका के लिए सीवर को साफ करता है, दिनभर सीवर की गन्दगियों को साफ करके सायंकाल घर आ स्नान आदि करके सन्ध्या करता है तो उसके आर्य होने में क्या सन्देह है? अर्थात् वह आर्य ही है, आर्यत्व मात्र आजीविका से ही तय नहीं होता है, आर्य सिद्धान्तों को मानने और आर्योचित कर्म करने से होता है, यहाँ कोई यह न समझे कि एक आर्य आमलेट बना कर बेचता है, अण्डा बेचता है, माँस बेचता है, शराब बेचता है, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, चरस बेचता है तो वह आर्य है, नहीं है, चाहे वह सुबह-शाम दोनों समय सपरिवार यज्ञ ही क्यों न करता हो, उसका कर्म आर्य वाला नहीं है, यह कर्म करते-करते कुछ ही समय में वह सिद्धान्तों से भी भ्रष्ट हो जावेगा और बाहर का ढाँचा-ढाँचा यज्ञोपवीत आदि मात्र दिखायी पड़ेंगे, कुछ काल बाद वह भी उतर जायेगा। इसलिए इन कार्यों को तत्काल ही छोड़ा जाना चाहिए, तभी वह आर्य बनेगा, इसी तरह हजारों युवाओं ने यह अण्डा, माँस, पोल्ट्री फार्म आदि का कार्य छोड़ा है और आर्य हैं। मृतपशु के चमड़े आदि से आजीविका कमाने वाला भी आर्य हो सकता है परन्तु मछली बेचने-खाने वाला आर्य नहीं हो सकता है। आर्य बनने के लिए उसे इसे छोड़ना ही होगा।

यदि यज्ञोपवीत टूट जाता है और कई दिन तक मिले भी न, तो क्या वह आर्य से पतित हो जाता है अर्थात् आर्य नहीं रह जाता है? यदि गले में से यज्ञोपवीत उतर जाता है, तो क्या वह आर्य है?

यज्ञोपवीत विद्याग्रहण का चिह्न अर्थात् परिचायक है, यदि यज्ञोपवीत टूट जाये, गले से निकल जाये वा प्रयास करने पर भी कई दिन तक न मिले, तब कैसे धारण कर पायेंगे? केवल विद्या का चिह्न ही तो कंधे पर नहीं है। विद्या तो अन्तःकरण में है ही, सिद्धान्तों का पालन कर ही

रहा है तो वह आर्य ही है। हाँ! यह अवश्य होना चाहिये कि गले में यज्ञापवीत हो ही और टूट जाये वा गले वा कंधे से उतर कर गायब हो जावे तो दूसरा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। इसलिए यज्ञोपवीत को धारण करने में श्रद्धा, दृढ़ता और निरन्तरता चाहिये। यज्ञोपवीत धारण किये रक्खे, परन्तु जिस लिए धारण कर रखा है, उसका ध्यान ही न रहे तो मात्र धागा ही पहनना हुआ वा पूर्वी पण्डितों की तरह कुंजी लटकाने का साधन मात्र बनकर रह जायेगा। ऋण को केवल याद ही नहीं रखना है, ऋण है तो उतारने की भी सोचना है और प्रयास करना है तभी उतरेगा, केवल यज्ञोपवीत पहन लेने मात्र से ही ऋण नहीं उतरता है, नहीं तो ३ लड़ियों के धागे हमें क्या शुद्ध वा अशुद्ध कर पायेंगे बल्कि उसे ही धोकर साफ करते रहना पड़ता है। हाँ! हिन्दूओं वा आर्यों को ठगने का साधन अवश्य बन सकता है कि हम बड़े सनातनी, धार्मिक, कर्मकाण्ड वा परम्परा को मानने वाले हैं, जीवन भर धागे पहने रखे परन्तु कुछ लाभ नहीं मिलेगा, जब तक वह इन ऋणों को न उतारे और यह ऋण एक दिन में उतरता नहीं, पूरा जीवन लग जाता है, हम कभी इस ऋण को भूल न जावें। इसलिए २४ घण्टे ३६५ दिन इसे धारण किये रखना पड़ता है, ऋण-ऋण का ध्यान है परन्तु उतारने की सोचे भी न, कभी उतारे भी न, तो धारण करने का विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। इसलिए विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत धारण रखे, ऋण को समझे, ऋणों को उतारने का पुरुषार्थ करे, कभी यज्ञोपवीत गले में न रहे तो यथाशीघ्र यज्ञोपवीत पुनः धारण करने का प्रयत्न करें। यह ऋण भी और ऋण का उतारना भी कर्त्तव्य कर्म बन जाता है जो परिवार, समाज और राष्ट्र को श्रेष्ठता अथवा आर्यत्व की ओर ले जाता है, यही ऋषियों का मन्तव्य था और यही यज्ञोपवीत धारण करने-कराने का मर्म भी है।

यहाँ का मूल निवासी कौन है, शूद्र है क्या? आर्य है क्या? आदिवासी शूद्र है वा आर्य है?

मूल निवासी का तात्पर्य है उनकें पूर्वजों का यहाँ रहना, कहीं बाहर से आकर अधिकार करके यहाँ रहने वाले किसी को भगाया न हो अर्थात् निर्जन स्थान में प्रारम्भिक बसने वालों को मूल निवासी वा आदिवासी कहा जाता है। तो निश्चित रूप से यहाँ के मूल निवासी शूद्र हैं, क्योंकि शूद्र आर्य है, यहाँ का आदिवासी आर्य ही है, अन्य कोई नहीं। कोई यह कहै कि शूद्र तो यहीं के रहने वाले हैं, आर्य बाहर से आये, तो बुद्धिमान साहब इसको मानने से पहले, लोगों को भ्रमाने से पहले यह क्यों नहीं विचारते कि शूद्र आर्य का एक अंग है, बाहरी नहीं और आर्य परिवारों का सदस्य है। आर्य कुल का है। इसलिए शूद्र और आर्यों में संघर्ष की कल्पना करने वाले परम्परा एवं शास्त्र दोनों से अनभिज्ञ हैं। पाश्चात्य और विधर्मियों के फूट डालो राज करो के चक्रव्यूह में उलझ गये और विरोधी बन श्रेष्ठता की तरफ बढ़ने की बजाय गड्ढे में ही अपना घेरा बना लिया और इस घेरे से निकलना ही नही चाह रहे, उसे ही और मजबूत किये जा रहे हैं। अपने को शूद्र मानने वालों से मैं कहना चाहूँगा उठो अपने कुल को संभालो! उसका शुद्धिकरण करो और मनुष्य जीवन के उद्देश्य को पूर्ण करो।

द्रविड और आर्य क्या अलग-अलग हैं? क्या दक्षिण भारत और पूर्वोत्तर आदि के लोग आर्य नहीं बन सकते हैं, वे आर्यों से इतना द्वेष क्यों रखते हैं?

द्रविड़ और आर्य के संघर्ष की परिकल्पना फिलॉस्फरों, वामपंथियों वा इन जैसे विचार धारा वालों की है। भारतवर्ष में पूरा दक्षिण भारत समुद्रपर्यन्त और पूर्वोत्तर आदि के क्षेत्र भी आते हैं, ये भी आर्यों के ही वंशज हैं, जैसे- उत्तर भारत (पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, तिब्बत आदि भी इसी के भाग थे) के लोग आर्यवंशज हैं उसी तरह दक्षिण भारत के लोग भी हैं, इनमें तनिक भी अन्तर नहीं है, यह सम्पूर्ण क्षेत्र आर्यावर्त ही था, आज यह भौगोलिक रूप से भी और वैचारिक रूप से भी खण्ड-बण्ड हो

रहा है, नामरूप भी नहीं बचा है। आर्यों के वंशज ही एक दूसरे के शत्रु बन बैठे हैं, जो आर्य नाम से ही घृणा करते हैं, फूट डालने वालों की कितनी सफल योजना है कि आज इनकी पीढ़ियाँ भी विद्वेष की भट्ठी जलाये बैठी हैं, उसे बुझने ही नहीं देते हैं, बुझाने भी नहीं देते हैं, उसमें अलगाव का ईधन डालते ही रहते हैं। उसमें काल्पनिक सिद्धान्तों, किस्सों-कहानियों, अत्याचारों, दासता के करुणाजन्य भावों, अलगाव की कृत्रिम प्रकृतियों का ईधन डालते ही रहते हैं। इसे बुझाकर सत्य सिद्धान्तों को जानने का प्रयत्न ही नहीं करते हैं। जैसे उत्तर भारत के लोग आर्य बन सकते हैं, बनते हैं, उसी तरह दक्षिण भारत, पूर्वोत्तर भारत आदि में लोग भी आर्य बन सकते हैं, बनाया जाना ही चाहिए, ये भी आर्य सन्तान हैं। सत्य सिद्धान्त जानकर ये भी विद्वेष की अग्नि, ज्वालामुखी से निकल तप्त कंचन हो आर्य बन शेष आर्य सन्तानों को भी आर्य बनाने के प्रबल पुरुषार्थ में सहायक बनेंगे, अभियान में प्रबल पुरुषार्थ करेंगे। जन्मनः जायते शूद्रः के अनुसार तो सभी जन्म से शूद्र हैं, तो शूद्र तो सभी होते ही हैं, पश्चात् संस्कार से त्रैवर्णिक बनते हैं, यह तो वर्ण नहीं हुआ, उसने कुछ भी वरण नहीं किया उसे तो जन्मते ही शूद्रत्व मिला, तो यह वर्ण कैसे हुआ, वर्ण तो ३ नहीं अपितु ४ हैं। शूद्र क्या वरण करेगा?

जन्म से सभी बालक/बालिका होते हैं, न कि शूद्र, शूद्र भी एक वर्ण है, न कि जन्मते ही कोई शूद्र होता है, यह किसी भी आर्ष ग्रन्थ का वचन नहीं है। इस श्लोक को लोग मनुस्मृति का मानते हैं। यह वहाँ भी नहीं है, यह स्कन्द पुराण का श्लोक है, जन्मना ब्राह्मणो ज्येष्ठः यह पद्म पुराण का श्लोक है। तो इसके अनुसार जन्म से ब्राह्मण अर्थात् ब्राह्मण जन्म से होता है, किसकी मानोगे? इसी तरह से अनेकों श्लोक वचन, पराशर उपसंहिता, अत्रिसंहिता, 'वैखानस' कल्पसूत्र, भागवत पुराण, भविष्य पुराण, गौतम धर्म सूत्र, रामचरित मानस, महाभारत, औशनस उपपुराण,

परमानन्द तन्त्र, योगिनी तन्त्र विभिन्न स्मृति ग्रन्थ आदि में विभिन्न प्रकार की परस्पर विरुद्ध विवादित आर्ष ग्रन्थों के प्रतिकूल अनेकों विधान विहित हैं। इनमें से कुछेक के अनुसार मध्यकाल में व्यवस्थाएँ हुई हैं। जिन के खण्डहर-अवशेष आज भी कभी-कभी कहीं दृष्टिगोचर, कर्णगोचर हो ही जाते हैं। ये मान्य नहीं है। इनके शूद्र सम्बन्धित अधिकांश विधान वेद विरुद्ध होने से अमान्य हैं। चार वर्ण हैं, तीन नहीं। यह 'एकजाति' है। अर्थात् विद्या नहीं ग्रहण कर पाया है। परन्तु इसने भी वरण तो किया है। किसका वरण? आर्य कर्म का वरण, यथा सामर्थ्य इसने भी आर्यों के गुण, धर्म, कर्म और स्वभाव को वरण किया है और आर्य कुल में सम्मिलित हुआ है, यह पशु नहीं है, मनुष्य है और यह भी नहीं है कि जो बच गया अर्थात् रह गया अर्थात् सब रेल में चढ़ रहे थे, जो-जो चढ़ने से रह गये, वे शूद्र हो गये, यह केवल वैचारिक और व्यावहारिक दीनता और दयनीयता को ही व्यक्त करता है, सत्य को किञ्चित् भी स्पर्श नहीं करता है। शूद्र भी वरण करके बना है, तभी तो यह वर्ण में गिना जाता है, जन्मते ही न कोई ब्राह्मण, न कोई क्षत्रिय, न कोई वैश्य और न ही कोई शूद्र होता है, सभी आर्यत्व को वरण करके सर्वप्रथम आर्यकुल में हुए, पश्चात् अपनी क्षमता के अनुसार गुण, कर्मों को वरण करते हुए आर्य कार्य में निरत हुए। आर्य क्या इन चार वर्णों से पृथक् है? ऊपर से तो यही संशय हो रहा है?

आर्य इन चार वर्णों में ही समाहित है, आर्य इन चार वर्णों से पृथक् नहीं है और चार वर्ण आर्य से पृथक् नहीं है। क्योंकि ये ही तो आर्य है, जिन्होंने गुण, धर्म, कर्म के अनुसार गुणों एवं कार्यों का वरण किया है, ग्रहण किया है। परन्तु इन सभी को सूक्ष्मता से अवलोकन करोगे तो पाओगे कि कुछ गुण इन सभी में समान हैं वह आर्य मात्र में होना चाहिये, इन चारों वर्णों में तुल्य है, उसका वरण सभी को करना ही होता है, सभी करते ही हैं, तभी तो आर्य होते हैं, तभी तो आर्य परिवार कहलाते हैं, आर्यकुल बनते हैं,

आर्यकुल के सभी सदस्य होते हैं।

शूद्र आर्य कैसे हैं? यह किन गुणों का वरण करके आर्य बनता है? शूद्र का क्या कर्म है? शूद्र क्या करे? क्या न करे? शूद्र बनना जरूरी है, शूद्र बनें ही क्यों? आज तो इनमें भी कई विभेद और वर्ग हैं, समाज और संस्कार सभी वर्ग में, वर्ग में वर्ग बनाकर अनेकों में विभक्त कर रखा है, ये उसी घेरे में अपने को सुरक्षित, संतुष्ट और सक्षम पाते हैं, ये करोड़ों में हैं, वर्त्तमान समय में इनका स्वरूप, निर्धारण और आर्यकरण कैसे सम्भव है? इसका व्यवहारिक स्वरूप क्या होगा?

आर्य वैदिक सिद्धान्तों को जानता-मानता और ग्रहण करता है, वैदिक सिद्धान्त के दो रूप हैं, एक तो मानना है और दूसरा व्यवहार में लाना है जैसे ईश्वर की सत्ता को मानना और सन्ध्या कर्म को प्रातः सायं करना। आत्मा को मानना, मानने वाले पक्ष में और माँस को न खाना, यह व्यवहार में है। हम माँस खाने के दोषों को नहीं जानते हैं, परन्तु माँस नहीं खा रहे हैं, तो व्यवहार में यह कर्म तो आ ही गया, एक व्यक्ति माँस खाने के दोष पर घण्टों लेक्चर देता है परन्तु माँस भी खाता रहता है तो उसने अपने ज्ञान को मानकर व्यवहार में उसको क्रियान्वित नहीं किया, वह लाभ से वंचित हो गया। परन्तु दोषों को न जानते हुए भी जो माँस नहीं खा रहा है, वह लाभान्वित है। ठीक है, मेरे पास इतनी बुद्धि नहीं है कि मैं गुण-दोष जानकर सिद्धान्तों को ग्रहण करूँ, परन्तु मैं आर्यों के गुणों को धारण करने वाले का अनुकरण तो कर ही सकता हूँ, उसके स्थूल रूप सिद्धान्त को तो समझ ही सकता हूँ और क्रियारूप को धारण कर सकता हूँ, तो उतनी विद्या के न होने पर भी मैं आर्य गुण, कर्मों को धारण कर सकता हूँ तो मैं भी आर्य क्यों नहीं, निश्चित रूप से हूँ, उनसे तो श्रेष्ठ ही रहूँगा, जो घण्टों लेक्चर देते हैं, परन्तु कर्म में है ही नहीं, खैनी (तम्बाकू) की हानियों को

जो खैनी खाकर ही बता रहे हैं, बिना खैनी खाये तम्बाकू की कमियाँ ही नहीं प्रस्फुटित होती हैं, मस्तिष्क ही नहीं चलता है, 'यह केवल चञ्चा-डरावा मात्र हुआ,' वे आर्य ही नहीं हैं, अपितु अवगुणों-कमियों को न जानने-बता पाने में अक्षम यदि उस कर्म को धारण रखता है तो वह निश्चित आर्य हुआ इसका मतलब हुआ माँस दोनों आर्य नहीं खायेंगे, जो उसके गुण-दोष जानता है और बताता है वह भी और जो इसके गुण दोषों को नहीं जानता है वह भी, यही तो समानता हुई जैसे माँस कोई आर्य नहीं खायेगा, शराब कोई आर्य नहीं पियेगा, ईश्वर को सभी आर्य मानेंगे, इत्यादि तो धारण किया ही जा सकता है, इन्हीं को मानने और न खाने, न पीने का वरण करता है, यही तो आर्यों की मान्यताएँ सिद्धान्त हैं, यही तो मांस का न खाना, व्यवहार में लाना है, शाकाहार करना है, कर्म है, इन्हीं को वरण करके अर्थात् अपनाकर शाकाहारी बनना है, माँसाहार छोड़ना है, यही तो आर्य सोपान है। शूद्र कोई बचा खुचा अवशिष्ट नहीं है, यह आर्य घर का एक सदस्य है, सम्पत्ति, सुविधा, संसाधन, सुरक्षा का भी अधिकारी है उस पर इसका भी अधिकार है। हेय दृष्टि वा घृणा का पात्र नहीं है, दया वा कृपापात्र नहीं है परन्तु हमारा कर्त्तव्य भी उसके प्रति होता है, उसका भी स्वाभिमान, मानवीय संवेदनाएँ हैं, मात्र इतना ही तो है कि उसकी बौद्धिक क्षमता कम है, उतनी आर्यविद्या नहीं ग्रहण कर पाता है। इतिहास से प्रतीत होता है कि मध्य काल में यह भाव और विचार लुप्त वा आधे-अधूरे रह गये थे और एक पूरे वर्ग को ही शूद्र में परिवर्तित कर दिया गया, जो इनके घरों में बुद्धिमान अर्थात् सक्षम भी निकले उन्हें आगे के वर्णों को चुनने नहीं दिया गया, बल्कि इन्हीं में नये-नये विधान बनाये गये जिससे एक घर, एक परिवार और एक कुल का भाव ही लुप्त (समाप्त) हो गया और वर्ण जाति में बदलते चले गये, फिर जाति में जाति बदलते चले गये। वरण की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाने से सक्षमता आ जाने पर वैश्य वर्ण में सम्मिलित न करके

शूद्र के ही कार्यों का विस्तार कर दिया गया, परिणामतः इनमें भी अनेकों जातियाँ खड़ी हो गयीं, इनमें कुछ धनार्जन में सफल होकर वैश्य के समकक्ष बन गये, परन्तु तब भी इनको त्रैवर्णिक में स्वीकार नहीं किया गया, जो शरीर और बुद्धि से सक्षम थे उनको सेना में भर्ती किया गया, युद्ध लड़े परन्तु तब भी उनको त्रैवर्णिक में नहीं लाया गया, परिणाम संघर्ष होना था और हुआ, इतिहास इसका साक्षी है। धीरे-धीरे हजारों वर्षों में व्यवस्थाएँ और बदली फिर वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में पूरी तरह बदल गयी, सभी तथाकथित वर्णों में अर्थात् जातियों में सभी वर्णों के योग्यता वाले लोग हो गये हैं। और आज भी हैं। जब वर्ण व्यवस्था का मार्ग ही बन्द है तो उससे नियन्त्रण और लाभ कहाँ से मिले, उलटे योग्यता का अनुपयोग, जातिसंघर्ष और पराभव ही मिलता है मिला और मिल रहा है। इसलिए वर्ण व्यवस्था का उद्धार जब होगा तब होगा, उसके लिए करोड़ों में संख्या एवं राज्य व्यवस्था चाहिये परन्तु जिन को सभी द्वेष-छोटा वा हिमाकत से देखते हैं उनको आर्य परिवार वा आर्य कुल में लाना चाहिये अर्थात् उनका भी आर्यीकरण करना चाहिये। एकजाति और द्विजाति विद्या होने, न होने से है, न होने का मतलब अलोमिका एडका की तरह (बाल रहित कोई भी भेड़ न होने के कारण थोड़े बाल वाली भेड़ को अलोकिमा कहा ही जाता है।) थोड़ी विद्या होने से है। अब वर्त्तमान काल की परिस्थितियों एवं शास्त्र की भावनाओं को समन्वित करते हुए जो वेदानुकूल भी है, कुछ प्रक्रिया निर्धारित करते हैं, यह जब तक आर्यावर्त्त नहीं बन जाता है, तब तक तो क्रियान्वित करना ही होगा, कम से कम ५० वर्षों तक की रूपरेखा बनानी ही चाहिये, उसके बाद आर्यों की विद्यार्य सभा परिस्थिति के अनुसार शास्त्रानुकूल और वेद सम्मत स्वरूप निर्धारित करे। वर्ण व्यवस्था केवल जाति ब्राह्मण की तरह जातिवर्ण में नहीं अपितु वर्ण भी हटकर केवल जाति-जाति में बँटकर रह गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शराब, माँस

खाते-पीते और मूर्ति पूजा आदि करते हैं, शूद्र भी माँस, शराब खाते-पीते और मूर्ति-पूजा आदि करते हैं, दोनों सिद्धान्त भ्रष्ट हैं, बढ़िया धन, पढ़ाई-लिखाई, रूप को देखकर धर्म का निर्णय नहीं होता है। दोनों तुल्य हैं। इनमें भी बिना खाने-पीने वाले मिल जायेंगे, उनमें भी। इसलिए जातिवाद की सम्पूर्ण कारा को तोड़ो, जातिवाद के पिंजड़ों को खोलो, जातिवाद के कारागार को खोलकर उसमें बन्द मानवों को स्वतन्त्रता का श्वास लेने दो, मन को भी दास बना देने वाली स्मृतियों को तीर्थों में डुबोने का समय आ गया, हजारों वर्षों तक करोड़ों जीवित आर्य सन्तानों को खूब दासता में जकड़ने वाले विधानों को धूल-धूसरित करने का समय आ गया है, झूठे प्रपञ्चनाओं, दिलासों, भयभीत करने वाली कथाओं, परलोक का डर दिखाने वाले ग्रन्थों, पुस्तकों, पोथियों, स्मृत्तियों, परम्पराओं को धक्का देकर बीच समुद्र में डुबोने का समय आ गया है। आओ! करोड़ों लोगों के गर्दन से झूठे धर्म एवं धार्मिक विश्वासों की जंजीरों को तोड़ें उन्हें आजाद करें, उन्हें सत्य चुनने का अवसर दें, उन्हें स्वयं निर्णय करने का अवसर दें, करोड़ों आर्य सन्तानों के कन्धों पर हजारों वर्षों से जो यह अधर्म का जुआ आन पड़ा है, उसे उतार फेंकें, यह निर्णय करने का अधिकार कोई पाकिस्तान चुनने का नहीं है अपितु पाकिस्तान जैसे न जाने कितने टूटे हुए हिस्सों को जोड़ने का एक साधन है। क्योंकि गुलाम संगठित भी हुए तो मारे जायेंगे, जीते तो भी गुलाम ही रहेंगे, मालिक जीता तो भी मालिक, हारा तो भी मालिक, तो आओ! गुलामी अब नहीं, अब हम मालिक हैं, मालिक बनें, अपनी परम्परा, जड़ें और सत्यता को विश्लेषित करें और आर्यकुल में सम्मिलित हों, हम स्वाधीन होकर हिप्पी वा नास्तिक नहीं बनेंगे, यह तो कुएँ से बचे और खाई में गिरे वाली बात हो जायेगी, हम यहाँ तर्कपूर्ण ढंग से लिख सकते हैं कि हमें श्रेष्ठ पथ का अनुगामी ही बनना है। इसी में हमारा एवं राष्ट्र का हित है। आपके सभी वर्तमान और भावी प्रश्नों का

यथोचित् उत्तर दे सकते हैं परन्तु कार्याधिक्य के कारण यह अवसर नहीं है, यह कई अन्य आर्य विद्वान् भी दे सकते हैं, सम्भवतः निकट भविष्य में देंगे भी। यदि मुझे भी अवसर मिला तो प्रयत्न करूँगा, यहाँ इतना ही कहना चाहूँगा कि तथा कथित धर्म-जाति-परम्परा की बेड़ी को तोड़ आर्य बनों व यथार्थ धर्म और सनातन परम्परा जो जीवन उद्देश्य को बताती है और प्राप्त कराती है, इसे धारण करो। अब एक बहुत बड़े अशिक्षित वर्ग को आर्य कुल में लाना है, तो वह कैसे लायेंगे? जो-जो इन में शिक्षित हैं, सत्र के सिद्धान्तों को समझ सकते हैं, उन्हें सत्र में आर्य विद्या दे आर्य बनाओ। जो सत्र विद्या नहीं समझ सकते हैं, उनको भी आर्यपथ पर लाने के लिए निम्न सिद्धान्तों को सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप से समझाया जाए और ग्रहण कराया जावे-

१. ईश्वर- ईश्वर को मानना ही होगा, उसके गुण सर्वज्ञ, चेतन, सर्वव्यापक, निराकार और वह एक है, उसका नाम ओम् है। इसका जप और अर्थभावना जो गुण रूप हैं ही, प्रातः और सायं १०-१० मिनट तक करनी ही है।

२. मूर्तिपूजा नहीं- निराकार ईश्वर की मूर्ति सम्भव ही नहीं है इसलिए किसी भी तरह की मूर्ति पूजा नहीं करनी है।

३. अवतारवाद नहीं- ईश्वर सर्वव्यापक है, उसे दुष्टों के संहार के लिए अवतार लेकर मानुष, पशु, पक्षी, जलचर बनने की आवश्यकता नहीं। ईश्वर हर जगह मौजूद है, इसलिए उसका अवतार नहीं होता है।

४. पुनर्जन्म- आत्मा चेतन, अजर, अमर, अल्पज्ञ, परिच्छिन्न और आकार वाला है, कर्मों के अनुसार शरीर मिलता रहता है, पाप पुण्य क्षमा नहीं होते हैं, भुगतना ही पड़ता है।

५. मृतक भोज- मरने के बाद कर्मानुसार जीव को शरीर मिलता है फिर उसके निमित्त भोज, तर्पण आदि व्यर्थ हैं।

६. संस्कार- कम से कम ४ संस्कार तो होने ही चाहियें-

१. नामकरण। २. मुण्डन। ३. विवाह। ४. अन्त्येष्टि।

७. **माँसाहार नहीं**- माँस का क्रय, विक्रय, आहार आदि वर्जित है।

८. **नशा रहित**-शराब, गांजा, भांग, अफीम, तम्बाकू आदि सभी प्रकार के नशे आर्य नहीं कर सकता है।

९. **अन्धविश्वास/पाखण्ड**- जैसे भूत-प्रेत का अन्धविश्वास, पत्थरों का दूध पीना, लड्डू खाना, बोलना, आशीर्वाद देना आदि बुद्धि-विरुद्ध , सुनियोजित पाखण्ड है।

१०. **विद्या-शिक्षा**- स्वाध्याय बढ़ाने का स्वयं एवं सन्तानों का प्रतिदिन यथासामर्थ्य प्रयास करते ही रहना चाहिए।

११. आर्य से परस्पर द्वेष, ईर्ष्या, वैर, विरोध, भेदभाव, छुआ-छूत, शोषण, ऊँच-नीच और उत्पीड़न नहीं कर सकते हैं।

१. ईश्वर, २. मूर्तिपूजा, ३. अवतारवाद, ४. पुनर्जन्म, ५. मृतक कर्म, ६. संस्कार, ७. माँसाहार, ८. नशा मुक्त, ९. अन्धविश्वास-पाखण्ड, १०. विद्या, ११. आर्यों के साथ पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष और विरोध का परित्याग इत्यादि।

सिद्धान्त को यथासामर्थ्य समझने एवं धारण रखने का प्रयत्न करना चाहिए। जो सक्षम होवें वा होते जावें तो उनको सत्र में बैठाकर आर्य सिद्धान्त समझाने का प्रयास करना चाहिए। यज्ञोपवीत विद्या का चिह्न है, सत्र में अर्थात् लघु गुरुकुल में आर्य सिद्धान्त समझकर ही धारण करना एवं कराना चाहिए। इन सिद्धान्तों को मानने के उपरान्त आर्यों कों अपने इस कुल के सदस्य के योगक्षेम का भी उत्तरदायित्व ग्रहण करना होगा। परस्पर कहीं भी स्वार्थपूर्ति के लिये शोषण, उत्पीड़न और संघर्ष नहीं होना चाहिये, सभी आर्यजनों को संगठित ही रहना होगा। यदि अपने इस कमजोर, असमर्थ, अक्षम सदस्य को नहीं सम्भाल सकते हो तो आर्य से इतर को कैसे

सम्भाला जा सकता है, पहले अपना घर, अपना कुल तत्पश्चात् संसार यदि हम त्याग, बलिदान, बुद्धिमत्ता से प्रयास और संघर्ष करें तो करोड़ों आर्य सन्तानों को यथाशीघ्र आर्य संगठन में सम्मिलित कर सकते हैं। प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था का स्वरूप यही था, वर्ण का सबसे अक्षम सदस्य यही था, तो सबसे अधिक देखभाल भी इसी की होती थी, इसे पूर्ण आरक्षण प्राप्त था और इनके परिवार में सक्षम को ब्राह्मण तक बनने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। परन्तु दुर्भाग्य हमने ईश्वर के संविधान को भुला दिया, आर्य परम्परा को भुला दिया और स्वयं का ही उत्पीड़न करके एक जड़वत्, निष्ठुर, क्रूरतापूर्ण, द्वेषयुक्त, गुलामी प्रथा को जन्म दिया, धीरे-धीरे हमी गुलाम बन गये, आज हमारे आर्यवंशज करोड़ों की संख्या में निराश्रित हैं, उन्हें पत्थर, मिट्टी की मूर्तियों को दर्शन करने के लिए भी लड़ना-मरना पड़ता है, विवाह में घोड़ी पर चढ़ जाने मात्र से मरना पड़ता है, पेशाब-पीना पड़ता है, महिलाओं को सरेआम निर्वस्त्र कर घुमाया जाता है और नारकीय जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ रहा है और उनका उत्पीड़न और शोषण करने वाले कोई बाहर से नहीं आये हैं, हमीं हैं, शास्त्र की असत्य-स्वार्थपूर्ण व्याख्या, नये-नये शास्त्र की संरचना, इनके उत्थान को रोकने के नये-नये हथकण्डे अपना कर इनको पृथक् और पददलित ही कर रक्खा है, यह कई हजार वर्ष से हो रहा है। इसे रोकना ही होगा, रोकने का प्रबल उपाय हैं उन्हें कुल में सम्मिलित कर संरक्षण देते हुये आर्यीकरण करना, यही इनके दुर्दिन को सुदिन में बदल देगा। आओ! संभालें अपने कुल को। आओ! बदलें समाज को। आओ! मनुष्यता की अग्नि प्रज्वलित करें। आओ! बिछड़ों को मिलायें। आओ! बढ़ें राष्ट्र निर्माण की तरफ। बिना करोड़ों पददलितों को आर्यकुल में सम्मिलित किये, यह राष्ट्र निर्माण सम्भव नहीं है। कुछ विद्वान् यह सोच रहे होंगे कि यह मैंने सब कपोल-कल्पित लिखा है, वे ब्राह्मण ग्रन्थों को गम्भीरता से पढ़ेंगे तो बोध

होगा कि मैंने तो शुरुआत मात्र की है। मैंने इस समय वर्तमान काल को देखकर शास्त्र प्रवर्तना के अनुसार कुछ उपाय ढूंढे हैं, अब उसी के क्रियान्वयन का यह संक्षिप्त स्वरूप निर्धारण है। ब्राह्मण ग्रन्थ प्राय: अध्येता पढ़ते नहीं हैं, सामान्य शब्द-अर्थ जान भी लिये तो सायणाचार्य के ही मत को मात्र समझने में सक्षम होते हैं, परन्तु वह भी कितना समझ पायेंगे इसके अनुमान वे अपनी और सायणाचार्य की योग्यता की तुलना कर समझ सकते हैं, जब ब्राह्मण ग्रन्थ ही नहीं समझ सकते हैं तो उसके कठिन भाग को समझाने के लिए बने पूर्व मीमांसा शास्त्र को कैसे समझेंगे। जब सामान्य अर्थ ही नहीं समझते हैं तो विशेष अर्थ को जानने की जिज्ञासा वा शंका ही नहीं उठेगी, फिर अर्थ संग्रह जैसे ग्रन्थ को ही आधार मान पढ़ते-पढ़ाते रहेंगे और कदाचन स्तरीरसिनेन्द्रसश्चसिदाशुषे में- श्रुतिलिंग के बलीयस्त्व में बाल की खाल निकालते रहते हैं, मुख्य अभिधेय प्रमाण विचार का कहीं पीछे ही छूट जाता है। वाराणसी में पढ़ने वाले छात्र एक तथ्य जानते हैं कि पण्डित वर्ग को यदि संस्कृत में शब्द-अर्थ का सम्बन्ध लगाना आता है तो उनके पास कोई भी ग्रन्थ पढ़ने जाओ तो कह देते हैं हाँ मैं पढ़ा दूँगा और पढ़ाते हैं, चाहे पंक्तियों का अर्थ मुश्किल से लगे, ऐसे महामहोपाध्याय विद्वानों से शास्त्र पढ़ने में कितनी योग्यता अर्जित होगी, हम अनुमान लगा सकते हैं। यही प्रवृत्ति अन्यत्र अधिकांश विद्वानों की है, मीमांसा शास्त्र और प्रातिशाख्य पढ़ते समय इसका साक्षात् अनुभव हमें भी हो चुका है। शाबर भाष्य का एक पाद तक पढ़ाना आता नहीं है और पूरा शास्त्र ही पढ़ा जाते हैं, छात्रों का वर्षों का श्रम, काल और धन व्यर्थ कर देते हैं, योग्यता कुछ होती नहीं है, उल्टे शास्त्र जानने का अहंकार और हो जाता है। इसको लिखने का तात्पर्य है कि ब्राह्मण ग्रन्थ और पूर्व मीमांसा शास्त्रों को समझने की एक नींव रख देते हैं, यही कारण है ऋषि दयानन्द जी ने दर्शनों में सबसे पहले पूर्व मीमांसा को ही पढ़ने का निर्देश किया है। शतपथ ब्राह्मण

में आर्य कुल में शूद्र है वा नहीं?

स नैव व्यभवत्। स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणम्। इयं वै पूषा। इयं हीदं सर्वं पुष्यति। यदिदं किञ्च। श०प०ब्रा० १४/१/२/२५

स नैव व्यभवत्। तत् श्रेयोरूपमत्यसृजत धर्मम्। तदेतत् क्षत्रस्य क्षत्रम्। यद्धर्मः तस्माद्धर्मात्परं नास्ति। अथो अबलीयान् बलीयांसमाशंसते धर्मेण। यथा राज्ञैवम्। यो वै स धर्मः। सत्यं वै तत्। तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति। धर्मं वा वदंतं सत्यं वदतीति। एतद्ध्येवैतदुभयं भवति। - श०प०ब्रा० १४/१/२/२६

तदेतद्ब्रह्म क्षत्रम्विट्छूद्रः। तदग्निनैव देवेषु ब्रह्माऽभवत् ब्राह्मणः मनुष्येषु क्षत्रियेण क्षत्रियः। वैश्येन वैश्यः। शूद्रेण शूद्रः॥ तस्माद् अग्नौ एव देवेषु लोकमिच्छन्ते। ब्राह्मणे मनुष्येषु एताभ्यां हिं रुपाभ्यां ब्रह्माऽभवत् ॥ श०प०ब्रा० १४/१/२/२७

वेदज्ञान प्राप्त कर ब्राह्मण ने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को निर्धारित किया, ये सभी स्वतन्त्र नहीं हैं, इनकी पूर्णता श्रेय अर्थात् धर्म के पालन से ही है अर्थात् इन चारों वर्णों को धर्म का पालन अर्थात् वैदिक सिद्धान्तों का पालन करना ही होगा। शूद्र के निर्धारण के बिना पूर्णता होगी ही नहीं, जो ज्ञान के आधान से बच जायेंगे, उनको आप छोड़ कैसे सकते हो, हाँ इनके निर्धारण के उपरान्त ही प्रक्रिया समृद्ध हुई अर्थात् पूर्ण हुई, बिना इसके निर्धारण के अधूरी ही है। परन्तु चारों वर्णों में बिना धर्म के परिपालन के ये कोई भी पूर्ण नहीं हैं अर्थात् वर्ण ही नहीं है अर्थात् आर्य ही नहीं हैं। शूद्र गर्हित नहीं है अपितु तीनों वर्णों का पूरक है, पोषक है, संग्राहक है। क्षत्रिय और वैश्य के गुणों को धारण करके ही वह क्षत्रिय और वैश्य बना है। ब्राह्मण तो वेदज्ञान से और ब्राह्मण के गुण-कर्मों को ग्रहण कर बना है, शूद्र भी शूद्र के गुण कर्मों से शूद्र बना है। अर्थात् यदि आर्य सिद्धान्त/धर्म शूद्र नहीं धारण करता है, तो वह शूद्र ही नहीं है, इसलिए शूद्र भी आर्य सिद्धान्तों

का वाहक है, केवल जो बच गया वही नहीं है। यहाँ पारिशेषिक न्याय नहीं है। पारिशेषिक तो आर्य बाह्य है। इसलिए छुआ-छूत, अस्पृश्यता, भेदभाव, ऊँच-नीच, शोषण, उत्पीड़न, घृणा दया का पात्र, कर्म का फल, अधोगतिभाव, दुर्गन्धवाहक, वंचित, दलित के भावों को छोड़कर, उन्हें धर्म देकर आर्यकुल में सम्मिलित कीजिए बिना इसके हमारी व्यवस्था पूर्ण ही नहीं होगी। इसलिए इनको शोषण और उत्पीड़न के नये-नये रूपों तथा आयामों से छुड़ाकर आर्य बनाओ। यही श्रेयस्कर है यही हमारे उत्थान का एक मात्र कारण है। यही अपने को पूर्ण करने का एक मात्र साधन है।

क्या सभी शूद्र समान हैं वा इनमें भी भेद है? क्या भेद है? पाणिनि के निरवसित और अनिरवसित शूद्र क्या होते हैं, इनसे व्यवहार क्या किया जाये?

जो-जो धर्म युक्त हैं वे समान हैं, वेद सम्मत हैं, शास्त्रानुकूल आर्य हैं, निरवसित और अनिरवसित शूद्र का अर्थ बताने के पूर्व कुछ दृष्टान्त देकर समझाना होगा। शूद्र बिना आर्य धर्म को ग्रहण किये होता ही नहीं है, वह हमारे परिवार का अंग है जैसे परिवार में भेद भाव-छुआ छूत नहीं होता है, वैसे ही यहाँ भी नहीं है परन्तु जैसे अन्त्येष्टि संस्कार में गये हुए व्यक्ति को हम घर में नहीं आने देते हैं क्यों? क्योंकि मृत व्यक्ति के दाहसंस्कार से उत्पन्न हुए कण हमारे शरीर और वस्त्रों पर चिपके हुए होते हैं श्वास के कारण भीतर भी गये हुए होते हैं। स्नान और यज्ञ करके हम पुनः स्वच्छ हो जाते हैं और तब घर में आते हैं अन्यथा बालक, वृद्ध वा रोगी आदि के अस्वस्थ होने की सम्भावना बनी रहती है और उपासना करने में भी कठिनाई होती है। क्योंकि उसके लिए वातावरण और शरीर सात्विक होना चाहिए। मैं काशी में पढ़ते समय मणिकर्णिका घाट और हरिश्चन्द्र घाट पर घण्टों बैठकर शवों को जलते हुए देखा करता था जब घाट पर अधिक भीड़ हो गयी तो गंगा नदी में नाव पर बैठकर भी अनेकों बार देखता रहा हूँ, जो

व्यक्ति लगातार उस श्मशान घाट में शवों को जलाने में सहयोग करते थे, वहीं रहते थे उनके शरीर से उसकी दुर्गन्धि आनी स्वाभाविक थी, उन के बालक और पत्नी भी उन से व्यवहार करने में झिझकते थे, सायं जब वे स्नानादि कर घर जाते थे, तभी व्यवहार होता था, जब वे और उनका परिवार स्वयं दूरी बना लेते थे, तो अन्यों के क्या कहने, परन्तु धर्म का पालन वे भी करते थे, केवल व्यवसाय के कारण ही पृथकता थी, आज भी केमिकल फैक्ट्रियों, जीवाणु प्रयोगशालाओं वा परमाणु अनुसन्धानकर्ता भी इस तरह पृथकता रखते हैं, उससे मुक्त होने के बाद ही घर जाते हैं। उसी तरह जिनका व्यवसाय इस तरह का रहा है, वे अपने को शूद्रों से भी पृथक् करते थे, परन्तु धर्म का पालन उनके लिए भी अनिवार्य था, वे भी आर्य थे, जब इन व्यवसायों से मुक्त होकर शरीरादि को जल वा यज्ञादि से शुद्ध कर लेते थे तो पुनः सामान्य शूद्रों में घुलना-मिलना प्रारम्भ जो जाता था, यही अनिरवसित अर्थात् सामान्य शूद्र और निरवसित अर्थात् अशुद्ध कर्म का व्यवसाय करने वाले शूद्र जो स्वतः ही दुर्गन्धादि के कारण पृथक् रहते थे, भोजन आदि पृथक् करते थे। परन्तु आर्य धर्म का पालन दोनों करते थे, निरवसित से अनिरवसित होकर मेल-जोल प्रारम्भ कर सकते थे, इसमें छुआ-छूत, भेदभाव, अस्पृश्यता की गन्ध वा कारण छिपा नहीं है, यह तो परिशुद्ध स्वास्थ्य से जुड़ा है, वह स्वयं के परिवार की वा कुटुम्बी जन की सुरक्षा के लिए ही यह करता था। जब सारी वर्ण व्यवस्था ही चौपट हो गयी, तो यह अस्पृश्यता जो इसका स्वयं का ग्रहण किया हुआ था, पक्का हो गया फिर इससे मुक्त होकर भी शूद्र में जा नहीं पाया फिर अन्य आर्य कुल में जाने की कौन सोचे? यही मध्य काल में हुआ, क्षत्रियों को पराधीन कर मुगलों ने मैला ढ़ोने में लगा दिया और वे अस्पृश्य कुछ स्वतः बने, कुछ समाज ने बना दिया, स्वाधीन होने के बाद सिर पर मैला ढोने की प्रथा को बन्द किया गया, परन्तु आज भी कहीं-कहीं यह प्रचलित है, इस पर पूर्ण

प्रतिबन्ध लगना ही चाहिए, यह अमानवीय है, मरे हुए पशु से चर्मकार का कार्य भी यन्त्रों के माध्यम से होना चाहिए, जिससे सीधे सम्पर्क में कम रहें और वे स्वस्थ रह सकें। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी कत्लखानों में जीवित वा मृत गाय आदि पशु की खाल, मांस वा हड्डी निकालते हैं, जीवित पशु को मारने वालों को आर्यकुल से ही बाहर कर देना चाहिए, जो स्वयं मृत पशु की खालादि निकालते हैं, उनके भी दुर्गन्धादि के कण से सने होने के कारण स्वास्थ्य एवं सुरक्षा को देखकर व्यवहार करना चाहिए और उनका यह कर्म द्विजाति का नहीं हैं, उन्हें एकजाति में कर देना चाहिए, यही तो अनिरवसित है। हो सकता है किसी शोध कर्म करने वालों को भी निरवसित रखा जाय, शुद्ध होने के बाद अनिरवसित हैं(यह निर्वासन नहीं है) अपितु वस्त्र, पात्र आदि को पृथक् रखने का है जैसे आजकल रोग विशेष में भी करते हैं। केवल शब्द होने से वा इससे अस्पृश्यता बढ़ेगी और पृथक्ता की याद दिलायेगी, आज इस स्वाभाविक प्रक्रिया से बच नहीं सकते हैं। इसे कार्य के दृष्टिकोण से तात्कालिक व्यवहार के रूप में लेना चाहिए। परन्तु आर्य सिद्धान्त मानने के कारण वह भी आर्य कुल में है, चाहे वह निरवसित हो वा अनिरवसित, उन कार्यों से मुक्त होकर शुद्ध होने के उपरान्त वह सामान्य जन की भाँति परिवार में रहेगा जैसे टीबी के मरीज करते हैं, परन्तु आज आधुनिक यन्त्रों का युग है, प्रयास होना चाहिए कि इस तरह के आविष्कार हों जिससे सीवर आदि में लगातार न उतरना पड़े, मैला न साफ करना पड़े। मृत पशुओं को हाथ से न चीरना पड़े, यदि यह कार्य करना भी पड़े तो वस्त्र आदि पूर्णतः ढ़के हुए हों जिससे दुर्गन्धादि एवं रोग का भय न हो, तो कोई बात नहीं है। यह शोध वा इस तरह के कार्य करने वाले दोनों के लिए सामान्य है। चाहे कोई कितना ही इस पर शोर मचाये, यह स्वाभाविक है, हम वैज्ञानिक विधा को अपना कर समाप्त प्राय कर सकते हैं, फिर केवल शोध वाले रह जायेंगे तो वहाँ तो करना ही

पड़ेगा, करते ही हैं। यदि सुरक्षित वस्त्रादि हैं तो सामान्य दृष्टिकोण रहना चाहिए। तो इसका मतलब यह हुआ कि आओ लाखों ऐसे जो अछूत जाति में हो गये हैं, परन्तु कार्य तो कबका, कितनी पीढ़ियों से छूट गया है? उन्हें आर्य कुल में शामिल करें, जाति के रूप में 'कोई भी अछूत न हो, निरवसित कोई नहीं है,' उन्हें शामिल करें, इस प्रकार के वैज्ञानिक आविष्कार करें कि यह दुर्गन्धादि के कार्य मशीनों से हों और पूरी तरह से इस दु:खद, मजबूरी के कार्य को समाप्त करें। करोड़ों लोगों के द्विजाति बनने के द्वार भी खोलें। इनमें भी लाखों योग्य और सक्षम जन हैं जो आर्य विद्या ग्रहण कर शीघ्र आर्य बन सकते हैं और एक सामाजिक परिवर्तन में तूफान ला सकते हैं जो हजारों वर्षों के शोषण और उत्पीड़न को छिन्न-भिन्न कर सकते हैं। एक बात और सभी को स्मरण रखना चाहिए कि वे परम्पराएँ, जीवन मूल्य और सिद्धान्त जो गलत हैं, अमानवीय हैं, हानिकारक हैं, उन्हें मिटाना ही होगा, परन्तु ईर्ष्या, द्वेष, अज्ञानता वा प्रतिशोध के कारण जीवनदायी परम्परा, सत्य जीवन मूल्य, यथार्थ सिद्धान्त को भी न मिटाने लग जायें, नहीं तो हाथ में कुछ न आवेगा, लगभग १५० वर्षों से यह हम देख रहें हैं, परिणाम भी देख रहे हैं, प्रतिक्रिया असत्य को मिटाने की हो, सब कुछ मिटाने की न हो, इसमें नि:स्वार्थी, निष्कपटी, त्यागशील, बुद्धिमान, आर्यजन सहयोग और मार्गदर्शन के लिए तत्पर रहें, उन्हें तत्पर रहना चाहिए, यदि उन्नति चाहते हो तो तत्पर रहना ही होगा। आओ! अविद्या, अन्धकार, अन्धविश्वास को जड़ से उखाड़ फेकें और विद्या, सत्यार्थ प्रकाश और श्रेष्ठ कर्मों को धारण कर आर्य बन जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करें।

आर्य सिद्धान्तों को मानने वाले को आर्य कहते हैं, इसमें भी आपने दो वर्ग बनाये हैं, न्यूनतम आवश्यकीय आर्य सिद्धान्तों को सभी को मानना ही होगा? बुद्धिमान को अधिक और सूक्ष्मता से भी

वैदिक सिद्धान्तों को पालन करना होगा। आपने एक सिद्धान्त निष्पादित किया है कि आर्य कभी भी एक दूसरे आर्य से द्वेष, विरोध नहीं कर सकते हैं, वे एक दूसरे का शोषण वा उत्पीड़न नहीं कर सकते हैं, एक दूसरे के साथ ठगी, धूर्तता, विश्वासघात वा कुटिल व्यवहार नहीं कर सकते हैं। एक आर्य दूसरों के साथ छल, कपट, नहीं कर सकता है। क्या यह सम्भव है? केवल सिद्धान्तों के एक हो जाने मात्र से क्या वे इस प्रकार का व्यवहार कर पायेंगे? यह प्रत्यक्ष तो दीखता नहीं है? छोटी-छोटी बातों को लेकर आर्य लोग ही परस्पर द्वेष पाल लेते हैं फिर द्वेष के वशीभूत हो बड़ा से बड़ा नुकसान करने से भी नहीं चूकते हैं? यह पूर्वोक्त सिद्धान्त भी शास्त्र सम्मत, तर्कपूर्ण और आवश्यक है, यह समझ तो आ रहा है, परन्तु यह क्या सम्भव है? अन्यथा लड़ते हुए दोनों तथाकथित आर्य में से एक को निकालना पड़ेगा, एक को आर्य स्वीकार करना पड़ेगा? यह कैसे उपपन्न और सुनिश्चित किया जाय कि एक ही आर्य सिद्धान्त के मानने वाले आपस में द्वेष न करें, विरोध न बाँधें, मन-मुटाव भी न हो, संघर्ष न हो, संगठित रहकर ईश्वर के संविधान वेदानुसार कर्म कर सकें? करोड़ों लोगों को आर्य बना, आर्यावर्त्त राष्ट्र की स्थापना कर सकें?

वैदिक सिद्धान्त जीवन का नियमन करते हैं अर्थात् चलाते हैं, जीवन उद्देश्य बताते हैं, उसको प्राप्त करने का साधन भी बताते हैं, जब उद्देश्य समान है, उसको प्राप्त करने के साधन भी तुल्य वा एक हैं, परस्पर के सहयोग से हम उसे प्राप्त कर सकते हैं इसकी भी आज्ञा दी है- संगच्छध्वं.., फिर परस्पर द्वेष क्यों? परस्पर विरोध क्यों? नहीं होना चाहिये। यदि परस्पर विरोध है तो स्वार्थ प्रमुख कारण होगा, सिद्धान्तों को ठीक से न समझना तो कारण होता ही है, परन्तु यदि हम यह मान लें कि सिद्धान्तों को ठीक-ठीक समझें हैं तब भी द्वेष भाव है तो स्वार्थ ही कारण होगा,

स्वार्थ-पद, प्रतिष्ठा, धन, अति महत्वाकांक्षा आदि अनेकों रूपों में होता है, जो मात्र अपने प्रयोजन, अपने हित के लिए होता है। योग्यता की कमी और पुरुषार्थ न कर पाना परन्तु शेखचिल्ली की तरह अतिमहत्वाकांक्षा अर्थात् बहुत पाने की चाह व्यक्ति को छली, कपटी, विश्वासघाती, कुटिल, ईर्ष्यालु, द्वेषी, विरोधी बना देता है। और वह बन जाता है। आर्य के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों को सत्रों में समझाये-सिखाये और ग्रहण कराये जाते हैं, परन्तु अन्य अनेकों सिद्धान्त और व्यवहार आर्योद्देश्यरत्नमाला और सत्यार्थ प्रकाश आदि आर्ष-ग्रन्थों में बताये गये हैं, उन्हें भी जानना और मानना होगा, हम यहाँ यह तो अवश्य सुनिश्चित करना चाहेंगे कि एक आर्य दूसरे आर्य का विरोधी न हो। विरोध वा द्वेष व्यवहार के कारण भी होता है, कोई अपनी निन्दा कुछ भी सुनना नहीं चाहता है, प्रशंसा सुनकर ही अपना हितैषी मानता है, कोई किसी को किसी भी कार्य के लिए वा कार्य बिगड़ जाने पर रोके-टोके न, रोकना-टोकना हुआ कि वैर-बाँधने में देरी नहीं लगाते, अपने मन की नहीं हुई कि भीतर ही भीतर द्वेष पाल बैठे, समय आने पर बदला जरूर लेंगे, परिस्थिति बदला लेने की न हुई तो व्यंग्य अवश्य करेंगे, अपने जैसे लोगों का समूह बनाकर वैर-विरोध निकालेंगे, अपने बड़े-बड़े दोषों को कुछ गिनेंगे ही नहीं अपितु दूसरे की छोटी से छोटी और वर्षों पूर्व हुई घटना को बहुत बड़ी करके बतायेंगे, अपने थोड़े से त्याग को इतना बड़ा बतायेंगे कि सब कुछ छोड़ त्यागी बाबा हो गये, दूसरे के त्याग को मजबूरी बतायेंगे। विरोध के सम्भावना वा आशंका को देखते ही अवगुण की सृष्टि कर पहले ही आरोपों की बौछार कर देंगे कि जिसने पहल की जीता वही, बाद में विरोध ही न होने पर माफी मांग लेंगे और अपने को नम्र घोषित करने में भी पीछे नहीं हटते, बाहर किसी का भेद ले नहीं सकते परन्तु घर के ही भेदों को जान, वहीं साम, दाम, दण्ड, भेद लगा बड़ा नीतिज्ञ होना चाहते हैं, सारी चाणक्य नीति घर में ही लगाते हैं, छल,

कपट कर स्वयं दुःखी हो, अन्यों को भी कष्ट पहुँचाते और अपने को महात्मा दर्शाते हैं, कार्य न कर पाने का दोष झटिति दूसरों पर डालने से संकोच भी नहीं करते हैं, पूरी बात बिना समझे ही, जितनी समझे उतने को ही लेकर विरोध प्रारम्भ कर देते हैं और अपने को सत्य का देने वाला बताते हैं, सामने मौन रहकर, पीछे नीतिशास्त्र के पण्डितों की भाँति जन-जन का हितैषी बनने का ढोंग रचते हुए निन्दा करते और नुकसान पहुँचाते हैं, प्रसन्न भी होते हैं कि मैंने इतना अहित कर दिया, ठीक किया, अपने मन से ही धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य का निश्चय कर, विद्वानों की न मान परस्पर विरोधी गुट बना लेते और विघटित हो जाते हैं। एक दूसरे को नीचा दिखा कर उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ना चाहते हैं कहते हैं कि यह तो नीतिगत है, वहाँ पहुँचकर फिर नीति को मानेंगे, जब तक प्रीति रहती है तब तक दोष दिखाई नहीं पड़ते हैं, दोष भी हो, तो उसे नजर अंदाज करता रहता है और जैसे प्रीति हटी, द्वेष आया तो दस साल पुराने छोटे-छोटे अपमान की बातें भी याद आने लगी और विरोध बढ़ गया, पद से हट गये, तो प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया, जो-जो उसमें कारण थे, उन सबसे द्वेष पाल जब भी अवसर मिला, अपमान वा नुकसान ही किया, किसी आर्य ने कुछ कह दिया जो मन के अनुकूल नहीं है वा हमारी त्रुटिपर ही सामान्य प्रतिक्रिया दे दी तो इसे मूँछ का प्रश्न बना लिया और जब तक उससे माफी न मंगवा ली चैन नहीं, अपनी मूँछ ऊपर ही रहे चाहे इस चक्कर में कितनों की मूँछें नीची क्यों न करवानी पड़ें, चाहे मूँछ ऊँची रखने के चक्कर में अपना कितना ही नुकसान क्यों न करना पड़े, करेंगे, चाहे संगठन की कितनी ही हानि क्यों न हो जावे, करेंगे, बस अपनी बात ऊँची ही होनी चाहिये दूसरे की बात की चिन्ता ही नहीं है। कुछ आर्यभेषी बड़ी प्रशंसा की वाक्यावली प्रयोग करते हैं, संगठन मेरी माँ है, चाहे उस की जड़ें, तना, पल्लव सब ध्वंस करते रहें। आचार्य मेरे पिता हैं, चाहे सम्मुख अप्रत्यक्ष वा अन्यों के

सम्मुख प्रत्यक्ष निन्दा ही करते रहें और कहते रहते हैं कि कोई सर्वज्ञ नहीं है अर्थात् इस की सारी बात सत्य और उचित ही हों आवश्यक नहीं है, मैं भी सत्य जानता हूँ? एक तरफ पितातुल्य एक तरफ छद्म खण्डन, वाह क्या अद्भुद कला खोजी है। मैं संगठन का विरोधी नहीं हूँ, इसका उद्घोष बड़े जोर शोर से करते हैं और अवसर पाते ही इसके जड़ों में मठ्ठा डालने का कार्य करते रहते हैं। कितने बडे संगठन भक्त हैं, क्या उत्तम संगठन भक्ति है, ऐसे छद्म वेशधारी ही सबसे पहले संगठन को बर्बाद करने का कार्य करते हैं, कोई इनको संगठन द्वेषी न कहे, उससे पहले स्वयं ही अपने को सबसे बड़ा संगठन भक्त होने का जोर-शोर से बखान करते हैं और सोचते हैं कि इस शोर में स्वार्थपना छिप जायेगा, कैसे ऊँचे-ऊँचे विचार हैं। अवसर आते ही परिवार, संगठन छिन्न-भिन्न करने से भी नहीं हिचकते हैं, कहते और सोचते हैं यदि मैं, मेरा नहीं तो किसी का भी नहीं, यहाँ आर्यत्व पता नहीं किस खोह में छिप जाता है, प्रकट में केवल द्वेष और विरोध ही रहता है। संगठन भक्ति का ढ़िंढोरा पीटते-पीटते कब संगठन की सीमा रेखा को लाँघ जाते हैं सगठन को पता ही नहीं चलता है। परन्तु इनकी तो यह सुनियोजित लीला होती है इस भक्ति लीला में कितने ही भावुक, अल्पविकसित, विकासशील, निरीह देहधारी भी देह छोड़ जाते हैं, इस अपराध का पाप भी इन्हीं की गठरी में बँधता रहता है योग्य आर्य को छोड़कर अपने जाति के लोगों को कमयोग्य होने पर भी अधिक महत्व देते हैं, उसकी कमियों को छिपाते हैं, जाति पहले और आर्य बाद में; वा अपने पक्ष के लोगों अर्थात् जो अपनी प्रशंसा करें, हाँ में हाँ बोलें, धन दें, उसको आगे बढ़ाते और योग्य आर्य को कार्य करने का अवसर ही नहीं देते हैं उसकी अनेकों गलतियाँ सार्वजनिक कर हतोत्साहित करते रहते हैं। सत्र विद्या को ग्रहण करा प्रशंसा और अहसान जताते तथा उनको आर्य न बना, स्वयं का पिछलग्गू बनाते हैं, उनको संगठन से जुड़ने ही नहीं देते हैं जिससे

संरक्षित और विद्या में अभिवृद्धि हो वे दृढ़ आर्य बन सकें, एक अलग ही स्वार्थ की खिचड़ी पकाते रहते हैं, अपने को संगठन भक्त तथा आर्य भी कहते, कहलवाते हैं। अपनी मान, दान, सेवा का बड़ा ध्यान रखते हैं, दूसरे का मान, दान, सेवा कुछ होता ही नहीं है। जैसे लोग आयु का अहं रखते हैं कि मैं ६० वर्ष का हो गया, ८० वर्ष का हो गया, उसी तरह यहाँ भी कहते हैं कि १० वर्ष संगठन में लगा दिया, १२ वर्ष संगठन में लगा दिया, मुझे कुछ नहीं मिला, मैंने यह किया, मैंने यह दिया, संगठन से जो मिला, पद, प्रतिष्ठा, सहयोग, दान वह तो इनके अपने व्यक्तिगत गुणों एवं प्रभावों के कारण था, मैंने दिया-दिया लिया कुछ नहीं, संगठन ने मेरे लिये क्या किया? समाज ने मेरे लिये क्या किया? ऐसे लोग संगठन से जुड़ने की पूर्व स्थिति को भूल जाते हैं, जिनको पता रहता है, उनसे वैर-विरोध बाँधे रखते हैं कि कहीं जीवन दान की पोल पट्टी न खोल दें, कहीं-कहीं ऐसे लोगों की भी प्रशंसा करते रहते हैं। अपने स्वाध्याय का भी अहं पाल लेते हैं कि हम भी जानते हैं, हम भी निर्णय कर सकते हैं फिर सत्य को ग्रहण करने की अपेक्षा स्वपक्ष का समर्थन वा तर्क ही पुस्तकों में ढूँढ़ते फिरते हैं और ऐसे-ऐसे उदाहरण ढूंढ कर निकालते हैं, जिससे संगठन वा व्यक्ति का अपमान हो और अपने को आर्य भी कहते हैं। कुछ लोग कहते-रहते हैं कि हम संगठन से न जुड़े होते तो एम.ए., पी.एच.डी., साईंटिस्ट, एडवोकेट होते, मैंने इसका त्याग कर दिया अर्थात् संगठन मेरा अहसान माने, आश्चर्य है कि मैं धनी, मानी, मन्त्री, सन्त्री, प्रधानमन्त्री होता, है नहीं, केवल कल्पना में अपने को बना, मानकर ही त्याग दिखाते हैं, प्रत्यक्ष में संगठन में रहने पर इतनी सामान्य योग्यता है संगठन के अभाव में रोडपति, मूर्खपति, एकपति जीवन जी रहे होते, इसका भान ही नहीं होता है, जिस सीढ़ी पर चढ़कर योग्य बने, वही सीढ़ी ही गिराने का प्रयास करते हैं। घर में चौधर चली नहीं, बिना कुछ किये धरे ही बाहर चौधर चलाना चाहते हैं, कार्य करे

कोई, श्रम करे कोई और योजना बनाये कोई और बना बनाया भोजन बँटे इनके अनुसार, ऐसा न हो तो द्वेष, वैर, विरोध, निन्दा, स्वप्रशंसा तथा कलह इतनी करते हैं कि व्यक्ति हताश, निराश, शर्मिन्दा हो दूरी बनाने लगता है, फिर कार्य अवरूद्ध, तथा इसका भी दोष उसी आर्य पर डालते हैं, क्या चाणक्य नीति लगाते हैं? घर के लोगों पर चाणक्य नीति, विरोधियों की प्रशंसा तथा सहयोग, वाह! क्या उत्थान का कारण ढूँढा है? झगड़ते व्यक्तिगत हैं, न्याय की बात कहने वाले से यदि वह अपने पक्ष में न हो तो वैर विरोध; लड़ते व्यक्तिगत हैं, अपेक्षा संगठन से करते हैं कि वह मेरे पक्ष में निर्णय दे, न दे तो संगठन से ही वैर-विरोध; सत्य वा अपना दोष बताने वाले से ही वैर-विरोध; इतना स्वाभिमान से भरे रहते हैं कि ठीक से कार्य न होने पर टोक देने मात्र से नाराज हो जाते हैं और वर्षों तक नहीं भूलते हैं, अवसर पाते ही उसकी प्रतिपूर्ति करने में देर नहीं लगाते कहते हैं हम उधार कुछ नहीं रखते हैं, जो लिया यहीं से लिया, जो दिया यहीं पे दिया, वाह! क्या-क्या प्रमाण ढूंढकर लाते हैं कि जिससे द्वेष, वैर, विरोध भी उचित लगे। कुछ अपने को स्थापित करने, बड़ा दिखाने, महत्व दिखाने वा पद पर काबिज़ होने आदि स्वार्थपूर्ति के लिए निराशाजनक बातें फैलाकर हतोत्साहित करते संगठन तोड़ते रहते हैं, मानो ये करते तो सब तरफ आशाजनक, आशातीत सफलता मिलती, दूसरे कुछ कर ही नहीं पाते हैं, स्वयं के न कर पाने पर परिस्थिति, काल, अभाव वा दूसरों पर दोष देते रहते हैं। अपने छोटे-छोटे स्वार्थपूर्ति के लिए क्या-क्या जाल नहीं बुनते, क्या-क्या ताने बाने नहीं बुनते अर्थात् बड़े-बड़े ताने बाने बुनते हैं। घर के एक कोने में पड़े-पड़े, घर के लोगों के ताने सुनते-सुनते, जीवन के दो चार कारनामों के स्वप्न देखते-देखते, घर के लोगों द्वारा उपेक्षित भाव सहते-सहते, घर में ही चारपाई पर दम तोड़ देते हैं, मरने पर भी दो-चार लोग श्मशान भूमि पर जा आधा जला, आधा कच्चा ही नदियों में छोड़ आते

हैं, निराश्रित जीवन और निराश्रित मृत्यु ही रहती है। संगठन ने अवसर दिया तो उसके साथ इतना विश्वासघात, अपने साथ हुई छोटी-छोटी बातों का बतगंड बना अर्थात् राई का पहाड़ बना नुकसान पहुँचाते रहते हैं और तनिक भी खेद नहीं जताते हैं। अपनी मूंछें ऊँची रखने के लिए अन्य व्यक्ति वा संगठन का कितना ही नुकसान क्यों न हो जाए, उसको सोचना ही नहीं चाहते, कहते हैं कि मैं रहूँ बस, दुनिया चाहे जैसी और जितनी जले, अपनी नाक ऊँची रखने के लिए दूसरे की नाक भी काटनी पड़े तो झूठ का अम्बार और तिल का ताड़ बना देते हैं, थोड़े से धन और स्वार्थ की पूर्ति के लिए विश्वासघात करने में किञ्चित भी संकोच नहीं करते हैं और इस का भी आरोप सज्जनों पर डालते रहते हैं, यह नहीं सोचते हैं कि इससे आर्य पर क्या बीतेगी, कितनी निष्ठुरता है, बहुधा तो राजनीतिक दलों से भी अधिक छल, कपट, दुष्प्रचार, आरोप, प्रत्यारोप, विश्वासघात छोटे-छोटे पद, प्रतिष्ठा और स्वार्थपूर्ति के लिए करते हैं और अपने को आर्य भी कहते हैं। संगठन में रहकर कुछ स्वार्थी लोग समाज में ऐसा भ्रम उत्पन्न कर देते हैं कि संगठन उन्हीं के कारण चल रहा है जैसे गोवर्धन पर्वत तो उन्हीं ने उठा रखा हो, वे हटे वा हटाये गये तो संगठन भी बिखर जायेगा, कई टुकड़ों में बंट जायेगा, वे चाहें तो संगठन का बहुत बड़ा नुकसान कर सकते हैं, पोल पट्टी खोल सकते हैं गीत भी गाने लगते हैं कि पर्दे में रहने दो, पर्दा न उठाओ, पर्दा जो उठ गया तो भेद खुल जायेगा, बहुत से लोग उनको विभिन्न माध्यमों से सम्पर्क करके उन्हीं का साथ देने वा समर्थन देने की बात करते हैं, ऐसा लोगों से कहते फिरते हैं। 'पीठ पीछे बातचीत में मर्यादा की सीमा का भी उल्लंघन करते हुए गाली गलौच, अशिष्ट वचन, रोना, धोना, भी करते हैं, इस प्रदेश के वा अन्य प्रदेशों के सभी मुख्य लोग उनके साथ ही हैं, इसलिए सिद्धान्त विरुद्ध इनकी बातों वा संगठन विरुद्ध इनके कार्यों को स्वीकृत कर लिया जावे, इसके लिए सभी प्रकार के

छल-छद्म-प्रपञ्च का उपयोग करते हैं, झूठे आरोपों का मायाजाल रचने में बाजीगर को भी मात दे सत्यसदृश्य वातावरण बना देते हैं जिसे आर्य मानते तो नहीं परन्तु संशयशील हो उठते हैं, इससे शिथिलता आ ही जाती है। इन सभी कारणों से कुछ आर्यजन चिन्तित, भयभीत और आक्रामक हो उठते हैं और संगठन रक्षार्थ प्रयत्नशील हो जाते हैं परन्तु सत्य वा सत्य आधारित संगठन सूर्यसम प्रखर होता है, आर्य संगठित हो समस्त संशयों, आरोपों, भ्रमजालों, झूठे आश्वासनों, मायाजालों और असत्य के वातावरण को छिन्न-भिन्न कर देते हैं, झूठा-कृत्रिम भेद वा आरोप भी कितनी देर तक टिकेगा, सत्य के एक ही प्रकाश से अज्ञान तिमिर मिट ही जाता है। साथ ही साथ ऐसे स्वार्थियों, विश्वासघातियों वा संगठन द्वेषियों को संगठन से पृथक् करने में भी देर नहीं लगाते हैं, देर लगाना भी नहीं चाहिए। इनके साथ समझौता भी कदापि नहीं करना चाहिये। इस तरह से लाखों रूप हैं जो अति सामान्य हैं, जिनको आधार बना द्वेष पाल लेते हैं, वैर-विरोध करते हैं, छल, कपट और विश्वासघात करते हैं, मनमुटाव रखते हैं, अलगाव पैदा करते हैं, स्वार्थ पूर्ति करते रहते हैं। ५-६ हजार वर्षों से यही हो रहा है। वेद को मानने वाले आर्य भी न जाने कितने फिरकों में बँटकर, वेदों को भी भूल, नये-नये ग्रन्थ बना पूरे संसार में बँटते चले गये और सम्पत्ति, राज्य तथा जीवन के उद्देश्य को ही गंवा बैठे, भारत में भी एक ही धर्म को मानने वाले, अनेकों सम्प्रदायों में तो बँटे ही बँटे अपितु नये-नये धर्म ही बना डाले और धर्म ही भूल बैठे, स्वामी दयानन्द ने सत्य जाना और जीवन पर्यन्त जनाया, संगठन का एक स्वरूप दिया, अनेकों आर्य सिद्धान्त जानने समझने के लिए ग्रन्थ दिये परन्तु इन १५० वर्षों में ही इसको भी खण्ड-खण्ड, खण्ड-बण्ड कर दिया, वैदिक सिद्धान्त तो एक ही था, फिर इतना विभाजन क्यों? फिर इतना फिरका परस्ती क्यों? फिर इतना छींटाकसी क्यों, फिर इतना वैर-विरोध क्यों? यही प्रवृत्ति आर्य निर्माण के कार्यकर्त्ताओं में उत्तराधिकार से ही प्राप्त

हुई हैं, परन्तु यह है बड़ा घातक और विनाशकारी। आर्यों में परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, विश्वासघात, कुटिलता, वैर और विरोध नहीं हो सकता है, नहीं होना चाहिए।

वेदाज्ञा भी है-

येन देवा न वियन्ति नोच विद्विषते मिथः ।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि॥
सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्रुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ।

आदि अनेकों मन्त्रों में इसको कहा है, जब ईश्वर की आज्ञा का ही उल्लंघन हो रहा है तो आर्य कहाँ बचेंगे, समाज कहाँ रहेगा, संगठन कहाँ से बचेगा, अर्थात् नहीं बचेगा, हम लोग आर्य विद्या से आर्य-आर्या बना रहे हैं, यह रोग इनमें भी लग रहा है, इसका निदान आवश्यक है अन्यथा उत्तराधिकार अर्थात् अनुवांशिक में प्राप्त यह भीषण रोग असमय ही काल-कवलित कर देगा, यदि हम इसकी चिकित्सा खोज कर सकें तो ऋषि दयानन्द के द्वारा निर्मित संगठन भी स्वस्थ होकर कन्धे से कन्धा मिलाकर लक्ष्यपूर्ति और जीवन उद्देश्य की तरफ बढ़ चलेगा।

आर्य सिद्धान्तों को जानकर-समझकर और ग्रहण करके ही मनुष्य आर्य बनता है। ठीक-ठीक सत्य जानना और उसे धारण करना अर्थात् व्यवहार में लाना है, तभी आर्य कहलाता है, अन्यथा तो शाब्दिक ज्ञान मात्र हुआ। द्वेष के प्रमुख कारणों में होता है, झूठ का आरोप-प्रत्यारोप, छल, कपट और विश्वासघात; यह दूसरे आर्य को पता तो होता ही है कि यह झूठ है परन्तु यह रचा इस प्रकार से गया होता है कि उसे झूठा सिद्ध करने में बड़ा कठिन पड़ता है अर्थात् झूठ को झूठा सिद्ध करना ही असाध्य लगने

लगता है फिर उस झूठे को काटने के लिए झूठ, सच, अर्द्धसत्य सभी का सहारा लेता है, फिर वह भी कलुषित हो उठता है, क्षुब्ध हो उठता है, स्वयं को कुछ अर्जित हो न हो परन्तु अन्य को नुकसान और परेशान तो कर ही देता है, इससे द्वेष और विरोध बढ़ता ही है और कभी-कभी तो यह जीवन पर्यन्त असाध्य रोग बन जाता है। इसका प्रमुख कारण है, आर्य सिद्धान्तों के प्रथम सिद्धान्त ईश्वर को ही ग्रहण न करना, हमने मात्र शाब्दिक जाना कि ईश्वर चेतन, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। जब ईश्वर हमारे अन्त:करण में है और बाहर भी सब जगह है तो हम उससे छिपाकर वा छिपकर कैसे झूठ का बवण्डर खड़ा कर सकते हैं, वह चेतन है और वह कर्मफल दाता है, तो हम सभी से छिपा लें बहुधा यह भी कठिन होता है, पता चलने पर जीवन भर का विश्वास चला ही जाता है; परन्तु ईश्वर से कैसे छिपा सकते हैं, थोड़े से स्वार्थ और मान के लिए हमने छल, कपट का आश्रय से कितना बड़ा नुकसान किया है, हम अपने स्वार्थ की पूर्ति कर भी लें, तब भी आपके झूठ, छल, कपट को ईश्वर जानता है, इसका फल अवश्य देगा इसी जन्म में वा अगले जन्म में, फिर इस झूठ का आश्रय क्यों लेवें। ईश्वर को ऐसा मानना नहीं है, वह ऐसा ही है, इस तरह से ईश्वर को ग्रहण कर अर्थात् हृदयङ्गम कर हम इस द्वेष के वीभत्स कारण को समाप्त कर सकते हैं। यदि यह नहीं हुआ तो शाब्दिक ज्ञान मात्र रहा, ऐसे तथाकथित आर्य को संगठन से पृथक् करने में ही भलाई है। यदि उसने अज्ञानता में किया है तो एकाध झूठ होता है, झूठ का आवरण तो जानते हुए ही बनाया जाता है, ऐसे लोग स्वार्थ के लिए किसी का भी अहित कर सकते हैं, निश्चित ही ये आर्य नहीं हैं।

जब हम किसी से द्वेष करते हैं तो सोच लेते हैं कि उसने जो कहा, किया वा हो गया, वह गलत था, हमने अपने मनोनुकूल सत्यासत्य की कसौटी बनायी और दण्ड का भी स्वरूप हमने अपने संतुष्टि के लिए

निर्धारित किया, चाहे वह प्रतिकार वा परिमाण उचित था वा अनुचित, कम था वा ज्यादा, हम न्याय करने चल पड़े, हम उसे वह मन चाहा दण्ड देना ही चाहते हैं और द्वेष, ईर्ष्या, छल, कपट, विश्वासघात की अन्तहीन श्रृंखला चल पड़ती है, फिर दूसरी तरफ से भी यही हुआ, यह छिपकर वा प्रकट चलता ही रहता है, जीवन का अधिकाँश काल इसी में खप जाता है। इसका समाधान भी ऋषि दयानन्द ने दिया है-

हम सन्ध्या करते समय प्रातः ६ बार और सायं ६ बार बोलते हैं, विचार करते हैं-

योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः तं वो जम्भे दध्मः ॥

अर्थात् जो हमसे द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं। उसको हम आपके जबड़े में देते हैं वा रखते हैं।

कोई हमसे द्वेष करेगा तो कारण होगा, जिस कारण से वह हम से द्वेष करता है, हो सकता है वह कारण उचित हो, वा गलत हो, उसका निर्धारण हमी नहीं कर सकते हैं,

इसी तरह हम किसी से द्वेष करते हैं तो वह भी किसी न किसी कारण से ही करेंगे, तो वह कारण क्या ठीक है? हमी कैसे निर्णय करने वाले हो गये। पता चला यह द्वेष करने का कारण ही गलत है। तो क्या करें? कौन इसका निर्णय करेगा; उसी को अगले भाग में कहा है कि दोनों तरफ के दोष के कारण को हम आपके हवाले करते हैं तात्पर्य हम वेदज्ञान से परीक्षा करेंगे कि यह ठीक है वा गलत। जो सत्यासत्य का निर्धारण वेदज्ञान से करते हैं, वे ही आर्य हैं। तो ऐसा होने पर लाखों प्रकार के जो छोटे-छोटे मन-मुटाव, कटुवचन, व्यंग्य हैं, वे अस्तित्व हीन हो जायेंगे अर्थात् वे द्वेष के कारण ही नहीं बनेंगे, कारण तो तभी बनते हैं जब हम उस पर विचारते नहीं, झूठे अहं, हठ, दुराग्रह वा अविद्या ग्रसित हो प्रतिशोध के लिए उतावले हो उठते हैं। फिर उचित-अनुचित, लाभ-हानि का विचार त्याग विवेक

शून्य हो क्रोध वा मोह के वशीभूत हो वैर-विरोध बाँध लेते हैं। किसी ने पानी का गिलास लाने मे देर कर दी तो वह निन्दा का वा हमारे क्रोध का कारण बन जाय, कहाँ तक उचित है, इसे हम अपना अपमान क्यों समझे, अगर लगता है तो ईश्वर के जबड़े में इसे रखिये जबड़ा इसलिए कि यह भक्षण दण्ड का भी उपलक्षण है, गुस्सा जबड़े में ही ठण्डा होता है, यह पानी पीकर ठण्डा होने वाला कोप नहीं है। तब सहज ही बोध हो जायेगा कि पानी देर से लाने का कारण और भी कुछ हो सकता है, शान्त होने के उपरान्त ज्ञात करेंगे तो कारण पता चलेगा और उससे उपजने वाला कोप भी चला जायेगा, नहीं तो यह छोटा सा अपमान किस श्रृंखला को जन्म देता, स्वयं का, अन्यों का कितना नुकसान कराता, अनुमान लगाना कठिन है। ऐसे ही हजारों कारण घर में, परिवार में, संगठन में बनते जाते हैं। हम इसको सन्ध्या मे निरीक्षण करें और ईश्वर आज्ञा मानें तो द्वेष रूपी महान शत्रु से छुटकारा मिल सकता है। परन्तु यदि हमने छोटे-छोटे, निरर्थक, किसी अन्य कारण से उपजे हुए ईर्ष्या, द्वेष को निरीक्षित-परीक्षित नहीं किया और वैर-विरोध बाँध नुकसान पर नुकसान करने लगे तो हमने सन्ध्या ही नहीं की, हमने तो मन्त्र पाठ मात्र बुलेट ट्रेन की रफ्तार से की, कब खत्म हो गया पता ही नहीं चला, जब याद आया तब ओं नमः शम्भवाय चल रहा था। इससे आप आर्य कैसे रह पाओगे, चलो यह मान लें कि आज बुलेट ट्रेन से नहीं अपितु बैलगाड़ी की रफ्तार से सन्ध्या के मन्त्रों को बोला, तो बोला ही है न, अर्थ तो नहीं जाना, चलो! यह भी मान लें कि आपने अर्थ भी जान लिया, तो इसका ठीक-ठीक सत्य अर्थ तो नहीं जाना, शब्दार्थ हो गया बस, फिर लाभ कैसे मिलेगा? ठीक है आपने सत्य-सत्य अर्थ जान लिया। परन्तु उसे ग्रहण कहाँ किया, केवल मन्त्रपाठ वा मन्त्र का अर्थ जान लेने से ही पेट नहीं भर जायेगा, पेट भरने के लिए भोजन तो करना ही पड़ेगा। यहाँ भी १२ बार प्रतिदिन 'द्वेष भाव का द्वेष के कारणों का वा द्वेष

के परिणाम का' आँकलन, निरीक्षण-विश्लेषण करना चाहिए और द्वेष का परित्याग करना चाहिए, यहाँ यह अर्थ मत निकाल लेना कि हे ईश्वर! हम यह आपके ऊपर छोड़ते हैं, अब हम तो निश्चिन्त हो गये, मेरे घर का झगड़ा आप निपटाइये वा मेरे घर का भोजन आप बनाइये। यह पोपलीला के अलावा कुछ नहीं है, वेदज्ञान के प्रकाश में हम इसे जांचेंगे, परखेंगे और झूठे कारणों को छोड़ेंगे, उचित कारण रहने पर वह मेरा हो वा उसका, दूर करने का प्रयास करेंगे, प्रतिशोध नहीं सुधार, सुधार भी उचित का होता है, कपोल कल्पना, झूठ वा निराधार का नहीं, तो वह निश्चित आर्य होगा। सन्ध्या करने वाला आर्य, ईश्वर को मानने वाला आर्य, ईश्वर की आज्ञा को मानने वाला आर्य, मन्त्रों को ग्रहण-व्यवहार में उतारने वाला आर्य अर्थात् आर्य -सच्चा आर्य जब द्वेष ही नहीं तो वैर-विरोध कहाँ रहेगा, वैर-विरोध के मुख्य कारणों में एक है द्वेष, जब यही नहीं रहा तो वैर-विरोध छूटकर संगठन सुदृढ़ होगा। आर्य सिद्धान्तों को जानने और ग्रहण करने पर उपासना की रीति सिखलाई ही जाती है। उसमें यम और नियम का पालन प्रारम्भिक कर्त्तव्य ही है अर्थात्- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान हैं। इसके पालन से आनुवंशिक रोग का शमन होगा ही-

अहिंसा- वैर-त्याग।

सत्य- सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना।

अस्तेय- मन, वचन और कर्म से चोरी त्याग।

ब्रह्मचर्य- उपस्थेन्द्रिय का संयम।

अपरिग्रह- अत्यन्त लोलुपता, विषय और अभिमानादि दोषों से रहित होना।

शौच- पवित्रता करनी, सो भी दो प्रकार की है एक भीतर की और दूसरी बाहर की। भीतर की शुद्धि धर्माचरण, सत्यभाषण, विद्याभ्यास,

सत्संग आदि शुभगुणों के आचरण से होती है और बाहर की पवित्रता जल आदि से शरीर स्थान, मार्ग, वस्त्र, खाना, पीना आदि शुद्ध करने से होती है।

सन्तोष- सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं किन्तु पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना, हानि लाभ में हर्ष वा शोक न करना।

तप- कष्टसेवन से भी धर्म युक्त कर्मों का अनुष्ठान।

स्वाध्याय- पढ़ना-पढ़ाना।

ईश्वर प्रणिधान- सब सामर्थ्य, सब गुण, प्राण, आत्मा और मन के प्रेम भाव से आत्मादि सत्य द्रव्यों का ईश्वर के लिए समर्पण करना।

इसका प्रतिक्षण, प्रतिदिन पालन करने वाला किससे वैर रखेगा? किससे झूठ बोलेगा? किसके पदार्थ को हड़पेगा? अहंकार कैसे कर सकता है? आर्य पर ही आरोप-प्रत्यारोप कैसे लगा पायेगा? जब ईश्वरार्पण स्वयं को भी कर दिया तो क्या द्वेष के कारण का विश्लेषण नहीं करेगा? क्या छोटी-छोटी बातें द्वेष का कारण बनेंगी? क्या नाक की लड़ाई बना द्वेष कर सकेगा? क्या आर्यों से छल, कपट, कुटिलता और विश्वासघात कर सकेगा? निश्चित नहीं कर सकेगा तब असंख्य द्वेष और विरोध के कारणों पर विचार करने में सक्षम होगा, विचार करेगा तो उसकी निरर्थकता का पता चलेगा, अधिकांश बिना विचारे वा प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाने के कारण होती हैं, इसके पश्चात् ईश्वरोपासना से आत्मिक, बौद्धिक और मानसिक बल की वृद्धि होने से सात्विक गुण से युक्त हो इस असाध्य रोग पर नियन्त्रण हो जावेगा।

धर्म क्या है?

वेद की आज्ञाओं का पालन करना ही धर्म है। वेद की आज्ञाओं का पालन करेगा तो निम्न गुण तो आयेंगे ही आयेंगे, यह धर्म के लक्षण हैं, इसी से जाना जाता है कि वह धार्मिक है, यह गुण है तो हम समझ सकते हैं कि वह वेद की आज्ञाओं का पालन कर रहा है, ईश्वर की आज्ञा का पालन

करते हुए से और भी धारण करने चाहिये, फिर ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट का आनुवंशिक रोग जड़ समूल नष्ट हो जायेगा, यह उसकी परमौषधि है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

धर्म के दश लक्षण हैं- १. धृति, २. क्षमा, ३. दम, ४. अस्तेय, ५. शौच, ६. इन्द्रियनिग्रह, ७. धी, ८. विद्या, ९. सत्य, १०. अक्रोध।

१. धृतिः- सदा धैर्य रखना (वह सहनशील होता है, धैर्यशाली होता है जैसे घर, परिवार चलाना है तो दिन में सैकड़ों ऐसी चीजों को सहन करना पड़ता है जो अनपेक्षित और मनोनुकूल न हों, तभी घर चलता है, आज सहन किया कल मनोनुकूल भी होंगे, परन्तु यह कलह का कारण नहीं बनेगा, जो सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं हैं परन्तु व्यवहारगत कमियाँ हैं, उन्हें सहन करते हुए ठीक करना होगा, तो द्वेष नहीं होगा, उन्नति का कारण बनेगा, उतावलापन ठीक नहीं है, सहनशीलता ही सत्य को जानने का अत्युत्तम साधन है और लक्षण भी है।)

२. क्षमाः- जो कि निन्दा, स्तुति, मानापमान, लाभ-हानि दुखों आदि में भी सहनशील रहना, उसका प्रतिकार न करना, प्रतिशोध न लेना, उसे माफ कर देना। (धृति में धैर्य रखना है, विचलित नहीं होना है, धर्म में ही स्थिर रहना है, उचित-अनुचित को सम्यक् जान उचित का ग्रहण और अनुचित का त्याग वा सुधार करना वा करवाना है, परन्तु क्षमा में जो 'क्षमूष्' सहने से बना है, माफ करना है, प्रतिकार नहीं करना है, ऐसे भूल जाना है जैसे कुछ हुआ ही नहीं है, बुद्धिमान इससे भी शिक्षा अवश्य ग्रहण करके सावधान रहते ही हैं। निन्दा में दुःखी हो द्वेष पाल लिया और विरोधी बन गये, यहाँ प्रतिक्रिया न देकर, उचित है तो दूर करना, अनुचित है तो भुला देना, भूल जाना ही उचित है किसी ने हमारी स्तुति की तो हम प्रसन्न हो गये, दूसरे की स्तुति की तो दुःखी हो गये, यहाँ भी धैर्य रखकर स्तुति से

प्रसन्न आदि न हो ठीक-ठीक निर्णय लेना चाहिये, इसे स्वपक्ष का आधार नहीं बनाया जा सकता है, स्वार्थपूर्ति के लिए की जाने वाली स्तुति को समझकर उसके प्रति द्वेष से बचना चाहिए, उसे क्षमा कर देना चाहिए, प्रतिकार के बारे में नहीं सोचना चाहिए, तो आपका कोई अनुचित लाभ नहीं उठा पायेगा।

इसी तरह मान में, अपमान में, लाभ में वा हानि में धैर्य पूर्वक निर्णय कर क्षमा करते हुए द्वेष को उठने वा पनपने से रोकना होगा, तभी आप आगे बढ़ पायेंगे अन्यथा यह असंख्य छोटे-छोटे कारण प्रगति रोके खड़े रहेंगे, हम इसके माया जाल से कभी निकल ही नहीं पायेंगे, एक आर्य क्षमाशील होता है, तभी तो संगठित रहता है।

३. दमः- मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न उठे।

जब मन को सदा धर्म अर्थात् वेदाज्ञा पालन में लगाये रखेगा तो स्वार्थपूर्ति के लिए छल, कपट, विश्वासघात कैसे कर सकेगा, आर्य को ठगने की वृत्ति उठते ही उसका दमन कर देने वाला, व्यवहार में एक आर्य को कैसे ठग सकता है? जब हम धर्म में ही रहेंगे तो आर्य को ठगने वा नुकसान पहुँचाने की वृत्ति भी नहीं उठेगी, ठगने की तो दूर बात रही। यह केवल ठगने तक के लिए ही सीमित नहीं है अपितु वेद-विरुद्ध, सिद्धान्त-विरुद्ध , संगठन विरुद्ध बातें भी मन में नहीं आयेंगी तो आर्यों से वैर होगा ही नहीं, यदि हमने अपनी विरोधी वृत्तियों को रोका नहीं, दमन नहीं किया, उसको हवा दी और अन्यों की विरोधी वृत्तियों को पनपाकर मजबूत किया, तो यह दम का पालन नहीं हुआ, अधर्म हुआ, दुःख स्वयं को वा अन्यों को वा लाखों को भुगतना पड़ता है, ऐसे को क्या आर्य कहोगे? इस तरह के वेद विरोधी को, संगठन विरोधी को क्रियान्वयन तक पहुँचने ही न दो, वृत्ति को पनपाते ही, भड़काते ही समझ जाओ कि यह

कुटिल है, स्वार्थपूर्ति के लिए छल-कपट, विश्वासघात करेगा, उसे वहीं रोको, न रोक सको तो संगठन को सूचित करो, बीमारी को जैसे शरीर में फैलने से पहले ही रोक लिया जाय तो जल्दी स्वस्थ हो जाता है अन्यथा कीमोथैरेपी करनी पड़ती है और कठिनाई से ठीक होता है इस में जैसे संकोच किया तो नुकसान उठाना पड़ता है, उसी तरह ऋषि दयानन्द की आज्ञा से विरोध की वृत्ति उठते ही स्वयं रोकें। स्वयं रोकने की कौन कहे, दूसरे के भीतर भी द्वेष की वृत्ति पनपावे, पैदा करे, उसे भड़कावे तो उसे रोका जाना चाहिए संगठन को जानकारी दे, उससे रुकवाना चाहिए, न माने तो आर्य कुल से ही बाहर कर देना चाहिए। मन को स्वतन्त्र छोड़ कर परिवार नहीं चलता है, तो आर्य संगठन कैसे एकजुट रह सकता है, इसलिए दम का अंकुश जरूरी है, मन धर्म में ही चले, अधर्म में चलने पर वृत्तियों का दमन करना ही चाहिये। ऐसा होने पर ही हम मनमाना निर्णय, मनमाना प्रतिशोध, मनमाना कार्य, मनमानी कार्य योजना, मनमाना सिद्धान्त छोड़ वेद अर्थात् धर्म के अनुसार चलेंगे, यहाँ मनमाना व्यवहार नहीं, वेद सम्मत उचित व्यवहार होगा और हम पुनः स्वार्थ से मुक्त हो परस्पर सहयोगी बन सकेंगे।

४. अस्तेयः- चोरी त्याग अर्थात् बिना आज्ञा वा छल, कपट, विश्वासघात वा किसी व्यवहार तथा वेदविरुद्ध उपदेश से पर पदार्थ का ग्रहण करना चोरी और इसको छोड़ देना साहुकारी (धर्मयुक्त व्यवहार) कहाती है। -ऋषि दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश

इस अस्तेय को स्वीकार करने वाला अस्तेयव्रती आर्यों के ही साथ ठगी, छल, कपट, विश्वासघात, लूट कैसे कर सकता है? नये-नये विधान से जैसे- १ के बदले स्वर्ग में १० मिलेगा, कैसे कर सकता है, आर्यों का पैसा असत्य बोलकर जान बूझकर कैसे ले सकता है, जबकि परिणाम पूर्व से पता हो, किसी और के बहाने से धन लेकर कहीं और व्यय कर देना, यह

धोखा कैसे कर सकता है? मजबूरी का फायदा उठाकर अन्धाधुन्ध ब्याज पर रुपया चढ़ाकर लाभ कमाने की कैसे सोच सकता है? विवशता में तो सहयोग करना चाहिए, बस इतना सतर्क रहना चाहिए कि मजबूरी भी यथार्थ हो, बनावटी न हो, परन्तु दोनों यदि आर्य हैं तो यह अधर्म का व्यापार वा व्यवहार नहीं होना चाहिये। अर्थशुचिता तो आवश्यक ही है। अस्तेयव्रती अर्थ की ठगी नहीं कर सकता है।

५. शौचः- राग-द्वेष, पक्षपात छोड़ के भीतर और जलमृत्तिका, मार्जन आदि से बाहर की पवित्रता रखनी।

राग-द्वेष और पक्षपात जब तक रहेगा तब तक भीतर अशुद्धि, अशान्ति, चिन्ता, भय, संशय आदि बने रहेंगे। राग के कारण भी व्यक्ति पक्षपात करता है अर्थात् सत्य को छोड़, न्याय को छोड़ मनोनुकूल की तरफ ही बात करता है सहयोग करता है। तब यह प्रायः अन्यों की तरफ द्वेष भी पैदा करता है। द्वेष के कारण भी व्यक्ति मन के प्रतिकूल का विरोध करता है, भले ही वह उचित ही क्यों न हो, जब तक यह रहता है तब तक आप उचित कथन, उचित व्यवहार नहीं कर पायेंगे, यह राग, द्वेष, पक्षपात छूटा नहीं कि अधिकांश आनुवंशिक रोग दूर होने लग जायेंगे, यह शुद्धि तो आर्यों को करनी ही करनी चाहिए अपितु ईश्वर के संविधान को मानने वाला आर्य भीतर यह अशुद्धि रक्खेगा ही नहीं, आयी, वा है तो शुद्ध करता रहेगा और आर्यों को संगठित वा संरक्षित रखेगा।

६. इन्द्रियनिग्रहः- अधर्माचरणों से रोक के इन्द्रियों को धर्म ही में सदा चलाना।

एक आर्य अधर्म आचरण में इन्द्रियों को नहीं लगायेगा, उन्हें सदा धर्म में ही चलायेगा, यही तो धर्म पर चलना हुआ, बिना इसके धर्म कोई चरणामृत तो नहीं है कि पीने मात्र से फल प्राप्त हो गया, धर्म तो आचरण में लाया जाता है, वह क्या है? ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय से वेद सम्मत ही कार्य

करना, वेद विरुद्ध नहीं। इन्द्रियों को स्वतन्त्र नहीं छोड़ा जा सकता है, वह तो रुचि वा आवेग से अपने-अपने विषयों की ओर स्वाभाविक रूप से प्रवृत्त होंगी ही, उसे रोक कर धर्म अर्थात् उचित मार्ग पर ही रखने के लिए निग्रह शब्द का प्रयोग किया गया है, जैसे डायबिटीज का रोगी मीठे खाने की तरफ लालायित होगा परन्तु इस प्रवृत्ति को रोकना ही होगा, नहीं तो रोगी मर भी सकता है। मीठा खाने से रोकना होगा और नीमसत्व आदि कड़वी औषधि खानी पड़ेगी। इन्द्रियनिग्रह से बड़े-बड़े दोष शमन होते जाते हैं, न होने से पतन निश्चित है, एक आर्य इन्द्रियनिग्रही होगा ही और वह सभी के अनुकूल भी होगा। यह गुण संगति रखने में प्रबल सहायकारी है।

७. धीः - मादक द्रव्य, बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ, दुष्टों का संग, आलस्य, प्रमाद आदि को छोड़ के श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन, सत्पुरुषों का संग, योगाभ्यास, धर्माचरण, ब्रह्मचर्य आदि शुभ कर्मों से बुद्धि का बढ़ाना। बुद्धि एक अन्तःकरण का यन्त्र है, हम उसको नहीं देख रहे हैं, उसके कार्य को देख कर अनुमान प्रमाण से वा शब्द प्रमाण से जानते हैं, बुद्धि का कार्य है निर्णय करना, मन का कार्य है संकल्प-विकल्प उठाना, चित्त का कार्य है ज्ञान का संचय रखना, यहाँ व्यवहार करते समय हम तीनों के कार्यों को ध्यान में रखते हुए बुद्धि शब्द से व्यवहृत कर देते हैं और साहित्य में भी करते हैं। यहाँ विचार करने में सक्षम हो, विचार में से सही को ग्रहण करने वा गलत को छोड़ने में सक्षम हो ऐसी सामर्थ्य, जो विचार कर रहे हैं उस सम्बन्ध में सारी जानकारी हमारे पास होनी चाहिये अर्थात् हमारे ज्ञान में होना चाहिए, तभी हम विचार करने में सक्षम होंगे, निर्णय तो दूर की बात है, इसके लिए और भी विविध ज्ञान चाहिये। इन सभी को हम बुद्धि वा धी से कहते हैं। यह सामर्थ्य हमारी बढ़नी चाहिए, बिना इसके हम मनुष्य धर्म ही नहीं निभा पायेंगे, आर्य धर्म के क्या कहने, जो खान, पान, व्यवहार इसमें बाधक हैं उन्हें छोड़ना होगा और जिससे हमारा ज्ञान बढ़े तथा बुद्धि

आदि साधन स्वस्थ रहें, करना चाहिए।

आर्य बनने, बने रहने और बनाने का सबसे प्रबल एवं प्रमुख साधन है धी, सत्र विद्या से हमारी बुद्धि बढ़ती है, हम स्वाध्याय करते हैं, अध्ययन करते हैं जिससे सत्यासत्य का ठीक-ठीक निर्णय ले सकें। आर्य बुद्धिशाली होता ही होता है, इसी सामर्थ्य से वह अन्यों को भी सम्भालता है, कम बौद्धिक क्षमता वाले परन्तु आर्य धर्म का पालन करने वाले सभी को संभालता है, संरक्षित करता है। इसी सामर्थ्य से तो वह राग-द्वेष, छल-कपट, विश्वासघात को समझ पाता है और बचा पाता है, धी में कमी हुई तो राग, द्वेष, छल, कपट आदि करता रहता है और फूट का कारण बनता है।

८. विद्या :- पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त यथार्थ ज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना, सत्य जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में, जैसा वाणी में वैसा कर्म में वर्तना विद्या, इससे विपरीत अविद्या है। जब ज्ञान होगा और उसका यथायोग्य उपकार लिया जायेगा अर्थात् ज्ञान-ज्ञान मात्र है, कभी उसको क्रियान्वित ही न किया जाय, पढ़ा-लिखा-मर गये तो वह पढ़ा-लिखा किस काम का, क्योंकि क्रिया रूप आया नहीं, परिस्थितियाँ परिवर्तित हो गयी, तो नया विधान देना होगा, केवल मूल सिद्धान्त-नीतिगत सिद्धान्त ही प्रभावी रहते हैं, (ज्ञानं भार: क्रियां विना।) इससे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह यथार्थ ज्ञान हो; कल्पना, तुकबन्दी वा उद्धरण न हो, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में प्राय: ऐसी ज्ञानवाली पुस्तकों, ज्ञानभण्डार व्यक्तियों का ही बाहुल्य है। एक आर्य किसी भी यथार्थ ज्ञान से, जानने से पीछे नहीं हटता है, यथार्थ में यही तो बुद्धिजीवी है, वैज्ञानिक है, खोजी है। फिर इस विद्या को सत्य-सत्य क्रियारूप में क्रियान्वित करता है। ठगी, छल, कपट, धोखा नहीं करता है। जैसा आत्मा में बोध है, वैसा ही विचार करना, वही बोलना और उसी तरह

कर्म में वर्तना होता है, इस तरह से प्राप्त हुई विद्या हजारों वर्षों तक मार्ग दर्शन करती है और अधिकाधिक उन्नत होती जाती है, यही तो धरोहर होती है, यह हो सकता है गलत हो, परन्तु उसने उल्टा विचार करके नहीं दिया जैसा ज्ञान था वैसा बता दिया, तो इस पर विचार करके छोड़कर आगे बढ़ा जाता है, इस असत्य ज्ञान के कारण को ढूँढकर, समझकर हटाया जाता है, परन्तु यदि विचार से कृत्रिमता शुरू हुई हो प्रायः बुद्धिमान् परीक्षण के बाद जादूगरी समझ ही जाते हैं, फिर उस पर विश्वास नहीं होता है, वहाँ आत्मा में जैसा है वैसा बताने वाले का गलत ज्ञान भी विचारणीय, सुधार के योग्य होता है, सत्य ज्ञान तो शिरोधार्य होता ही है। विद्या की उन्नति के लिए, पूर्वोक्त निर्देश स्वर्णाक्षरों में अंकन योग्य है, यही वैज्ञानिकता को बढ़ावा देता है। इस प्रकार विद्या वाला परिस्थिति, वस्तुस्थिति समझ भी लेता है, ठीक-ठीक बताता है तभी तो आर्य निर्भ्रम हो पाते हैं और छल, कपट, झूठ, कुटिल को पहचान भी लेते हैं, स्वयं बच जाते हैं और अन्यों को भी बचा लेते हैं। विद्या ही सत्यासत्य को जानने का नेत्र है।

९. सत्यः- जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना, वैसा ही बोलना और वैसा ही करना भी।

विद्या से सत्य जाना जाता है, सत्य को जानने का प्रयास करना चाहिए, ठीक-ठीक सत्य जान लिया तो वैसा ही मानना, बहुधा हम स्वार्थ, हठ, दुराग्रह के कारण सत्य को जान लेने के उपरान्त भी वैसा मानते ही नहीं हैं, मानना ही नहीं चाहते, अन्य रूप में ही बताते हैं और दिखावे के लिए करते भी हैं, यह छल छद्म चलता रहता है फिर सभी कार्य इसी तरह से होने लगते हैं, फिर मनुष्य का विश्वास ही हट जाता है, ऐसे व्यक्ति आर्य कैसे हो सकते हैं, जो कृत्रिमता का आवरण ही हमेशा ओढ़े रहते हैं पारिवारिक, सामाजिक वा सांगठनिक व्यवहार में ऐसे लोग सक्षम होते हुए भी अविश्वसनीय और अनुपयोगी ही बने रहते हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में तो

ये अपने को ही कृत्रिमता वा असत्य के बादल में ढके रखते हैं, कल्पना विमुग्ध रहते हैं, नयी-नयी कल्पनाएं, कथाएं , यात्राएं अवतरित होती रहती हैं। इस काल्पनिक वृत्ति के पार अर्थात् असत्य के बादलों के पार देख ही नहीं पाते हैं फिर इसी को सत्य जान, मान, बताते, मानते, लिखते, लिखवाते मर जाते हैं फिर मरने के बाद भी यही मत-पन्थ विरासत में छोड़ जाते हैं। इसलिए विद्या से सत्य जानो फिर स्वार्थ, हठ आदि छोड़कर वैसा ही बताना चाहिए, तभी तो संगठन आगे बढ़ेगा, यदि हम विद्या से ठीक-ठीक जान ही नहीं पाये, जानने का प्रयास ही न किया, वैसा का वैसा ही मान लिया तो बहुधा असत्य ही गले पड़ेगा, इसलिए विद्या से सत्य जानना ही चाहिए, मैंने विद्या कहा है, केवल किसी का कथन मात्र नहीं, वेद, सिद्धान्त, आप्त वाक्य, संचित ज्ञान, वार्ता, साक्ष्य आदि अनेकविध उपायों से सत्य जाना जाता है, विद्या के यही तो स्वरूप होते हैं, विद्या केवल किसी एक पुस्तक का नाम नहीं है। (वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।) लौकिक सत्यता की परीक्षा के लिए इसका और अन्यों का ज्ञान अपेक्षित है, विद्या से सत्य जानें, उसे निष्पक्ष, निस्वार्थ और निर्भीक हो वैसा ही क्रियान्वित करना चाहिए, फिर संशय, अविश्वास, धोखे को अवकाश कहाँ है अर्थात् कहीं नहीं है, तब सभी आर्यगण एक दूसरे पर विश्वास करते हुए सुदृढ़ रहते हैं और कर्त्तव्य पथ पर आगे बढ़ते हैं, अन्यथा जीवन पथ पर बढ़ने का सामर्थ्य व्यर्थ के कार्यों, मन्तव्यों, स्वार्थपूर्ती हेतु योजनाओं के जाल बनाने में ही लगा देते हैं, जो कभी पूरी होती ही नहीं हैं और मर जाते हैं। दूसरी तरफ सत्यमानी की असफल योजनाएँ भी कमियों को बोध कराकर सफलता का सोपान बनती हैं।

१०. अक्रोधः- क्रोधादि दोषों को छोड़ के शान्त्यादि गुणों का ग्रहण करना। केवल क्रोध छोड़ना ही नहीं है अपितु शान्ति के गुण को ग्रहण भी करना है।

क्रोधाद् भवति सम्मोहः, संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

क्रोध से मूढ़ता अर्थात् कर्त्तव्य वा अकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं रहता है, संमूढ़ व्यक्ति जो आचार्य ने ज्ञान दिया है, सत्यासत्य का विवेक जो स्मृति में रहता है, जिसके ही प्रकाश में व्यक्ति ठीक-ठीक निर्णय ले पाता है, बिना संचित ज्ञान के कौन निर्णय ले पाता है उस स्मृति में भी संशय उत्पन्न हो जाता है, जब संचित विद्या-ज्ञान में ही संशय हो गया तो निर्णय होगा कैसे? इसी को बुद्धिनाश कहते हैं, अर्थात् क्या उचित है? क्या अनुचित है? क्या कर्त्तव्य है? क्या अकर्तव्य है? क्या करणीय है? क्या अकरणीय है? क्या कथनीय है? क्या अकथनीय है? इसका बोध ही नहीं रहता है, जब ऐसा होता है तो प्रणश्यति अर्थात् मनुष्य का नाश होता ही है, इसमें क्या सन्देह है। इसलिए कहते हैं कि क्रोध विवेक हर लेता है, प्रक्रिया यही है। अतः क्रोध से दूर रहकर विवेक का साथ कभी न छोड़ना चाहिए। मूढ़ता से जो नुकसान हो चुका होता है बाद में पश्चाताप से, उसकी पूर्ति नहीं होती है, इसलिए इस क्षणिक वा दीर्घ कालिक आवेग से बचना चाहिए। स्थूलरूप से कहें तो स्वार्थ की पूर्ति न होने से, स्वार्थ की पूर्ति में बाधक बनने वाले के प्रति क्रोध उत्पन्न होता है, जब हम वैदिक सिद्धान्तों का पालन करेंगे तो विवेक युक्त होंगे। स्वार्थ, छल, कपट, तृष्णा, विश्वासघात नहीं करेंगे तो क्रोध का कारण ही नहीं होगा, क्रोध के स्थान पर शान्तचित्त रहेंगे, न मूढ़ होंगे, न ज्ञान संशय युक्त होगा, आचार्यों की दी हुई विद्या के प्रकाश में उचित-अनुचित, सत्य-असत्य का निर्णय कर सकेंगे और आर्य पथ पर आगे बढ़ेंगे, तथा संगठित रहेंगे।

ईश्वर, सन्ध्या, उपासना, धर्म के लक्षण को ठीक-ठीक जानकर, मानकर और धारण कर हम ईर्ष्या, द्वेष आदि के आनुवँशिक महारोग से मुक्त हो सकते हैं, बिना ईश्वर, सन्ध्या और उपासना अर्थात् ईश्वर को

जाने, माने और धारण किये बिना हम ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, वैर, विरोध से नहीं बच सकते हैं, यह महारोग है; तो हम ईश्वर को जानने में, मानने में वा धारण करने में त्रुटि कर रहे हैं, सन्ध्या, उपासना तो ईश्वर की ही होती है यदि ईश्वर में ही संशय वा अविश्वास है तो सन्ध्या, उपासना क्योंकर होगी, जब सन्ध्या, उपासना ही नहीं होगी तो स्वार्थ, वैर, विरोध रहेगा, ईश्वर को ग्रहण करने के लिए ही तो सन्ध्या, उपासना है, इसी के साथ वह संविधान मानकर धार्मिक होता है तब धर्म के लक्षण आयेंगे ही, हम भी प्रयत्नशील रहेंगे कि धर्म के लक्षणों से हम अन्वित रहें। यही प्राचीनकाल में आर्य जीवन की रीति थी, आज के काल में ईर्ष्या, द्वेषादि के विनाश के लिए ईश्वर का स्वरूप, सन्ध्या एवं उपासना के अवयवों को अतीव ध्यान से मानना होगा।

ईश्वर के- सर्वज्ञ, चेतन, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और सर्वान्तर्यामी गुणों को समझना और मानना होगा। तब भीतर और बाहर सब जगह रहने वाले अनन्त सामर्थ्य युक्त चेतन ओम् को अनुभव कर कौन परस्पर आर्यों के साथ छल, कपट, विश्वासघात कर सकेगा?

सन्ध्या के- मनसा परिक्रमा में ६ बार द्वेषभाव का आत्म निरीक्षण करने के कारण कौन ईर्ष्या, द्वेष और वैर-विरोध कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं। यह केवल कल्पना नहीं है, निरीक्षण और द्वेष भाव दूर भी करना है।

उपासना में- यमनियम जो प्रारम्भिक और बहिरंग साधन हैं, इसी को मानने वाला कैसे मूर्खता एवं स्वार्थ के कारण ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, कर सकता है? छोटे-छोटे स्वार्थ के कारण, थोड़े-थोड़े मान-अपमान के कारण, ईर्ष्या-द्वेष-विरोध की अग्नि कौन जलायेगा? कोई नहीं, उसे इसे छोड़कर ईश्वर की प्राप्ति के लिए प्रयास करना ही होगा और आर्यों का हित तथा आर्यों को संगठित, आर्यों के साथ संगठित रहना ही होगा।

धर्म के लक्षण- धर्म के लक्षणों से अन्वित रहना होगा अर्थात् ईश्वर के सर्वान्तर्यामी आदि गुण, सन्ध्या के मनसा परिक्रमा का आत्म निरीक्षण, उपासना के यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि साधन के ही अनुष्ठान और धर्म के दश लक्षणों से अन्वित हो हम इस आर्यों के विनाशकारी, आर्य संगठन के घातक, मनुष्य उद्देश्य के विघातक और राज्य के संहारकारी ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, विश्वासघात, वैर और विरोध को समाप्त कर सकते हैं। बिना ईश्वर एवं उसकी प्राप्ति के उपाय सन्ध्या, उपासना, धर्मग्रहण के हम आर्य ही नहीं हो सकते हैं, हम आर्य ही नहीं हैं, जहाँ छल, कपट, वैर आदि कार्यों में वा आर्यों के साथ दीखें, वहाँ एक पक्ष आर्य नहीं है, परीक्षित कर उसे आर्य संगठन से पृथक् करना ही चाहिए, नहीं तो वह कैंसर की भाँति स्वस्थ कोशिकाओं को भी नुकसान पहुँचाता रहेगा। ईश्वर तथा उसकी प्राप्ति के उपाय को ग्रहण करने से ही हम आर्य परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, विश्वासघात से बच पायेंगे। बिना धैर्य, क्षमा, दम, धी के छोटी-छोटी असंख्य बाधाओं को पार नहीं कर सकते हैं। आर्य सिद्धान्तों को जानते-मानते हुए भी व्यवहार में त्रुटियाँ करते रहेंगे, आर्य सिद्धान्त के अन्तर्गत ही ये उपाय हैं, यहाँ मात्र इतना किया है कि लक्षण सहित विस्तृत लिख दिया है, जिससे समझकर व्यवहार में लाने में आसानी हो। जब हम आर्य हैं तो धार्मिक हैं, धर्म के लक्षण आने ही चाहिएं, नहीं तो शब्द मात्र बोध होगा, आर्य भी नाम मात्र के कहायेंगे इसलिए आर्य दूसरे आर्य से कभी भी द्वेष वा विरोध नहीं करता है, द्वेष वा विरोध करने वाला आर्य ही नहीं होता है, ऐसा आर्यनामधारी आर्यकुल में कलह और विघटन ही करेगा, इसको रखना ही नहीं चाहिए, बहुत विद्वान् न हो परन्तु आर्य है तो धार्मिक है, धार्मिक का अर्थ है- आर्य सिद्धान्तों को मानने वाला, आर्यों का अनुकरण करने वाला है तो परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, वैर, विरोध, कुटिलता और विश्वासघात का स्थान ही नहीं है। इस

आनुवँशिक रोग से आर्यों को मुक्त होना ही होगा, यह आर्य समाजियों को भी हजारों लाखों वर्षों की परम्पराओं से मिला है, और हमें आर्यसमाजियों से मिला है। हम इस रोग की महौषधि खायें, रोग मुक्त हों, त्याग, बलिदान, समर्पण, सहयोग, निस्वार्थता, निष्कपटता और परस्पर विश्वसनीय हों, आर्य समाजियों के भी रोग को दूर कर सकते हैं, आर्य निर्माण करके लाखों आर्यों को भी इस महारोग से छुटकारा दिला, संगठित हो जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

आर्य भ्रम से कैसे बचें? संगठन के ही कुछ कार्यकर्ता झूठ को ऐसे प्रस्तुत करते हैं मानो वह सच ही हो, सामान्यजन को वह सच ही लगने लगता है, परन्तु जब सच पता चलता है तो शार्मिन्दगी, निराशा वा अपराध बोध से ग्रसित हो आर्यत्व को ही छोड़ बैठते हैं वा विरोध को ही गाँठ बाँध लेते हैं। इससे कैसे बचा जावे?

जो बातों की टोपी पहनाने में माहिर होता है, उसकी बातों को हम सच मान लेते हैं वा मानने लग जाते हैं, इसमें कहीं अपनी नाराजगी भी मिल जावे तो बघार और लगा देते हैं, नाराजगी को आप यहाँ स्वार्थ भी कह सकते हैं, फिर गणेश जी ने दूध पिया वा पी रहे हैं तो दूध पिलाने निकल ही पड़ते हैं, और जोर-शोर से प्रचार-प्रसार भी करते हैं कि पुण्य लूट लो, मनोवांछित कामनाओं की पूर्ति कर लो, यह सुअवसर कभी पुनः मिले वा न मिले, कभी विचार भी नहीं करते हैं कि पत्थर, मिट्टी, मेंटल वा कागज के गणेश जी कभी दूध नहीं पीते है, कभी दूध पी भी नहीं सकते हैं। परन्तु लाखों ने पिलाया है, लाखों पिला रहे थे, यह भी झूठ नहीं है परन्तु यह भी शाश्वत सच है कि गणेश जी दूध पी ही नहीं सकते हैं, इसलिये पूर्ण विचार करके ही झूठ वा सच मानना चाहिए, स्व सामर्थ्य न्यून हो तो विद्वानों की सहायता लेनी चाहिए, अपने ही कपोल-कल्पित वा बहकाये हुए झूठ को सच नहीं मानना चाहिए अपितु सच को ही सच मानना चाहिए, यही तो विवेकशीलता है, यही तो आर्यत्व है। गोबर गणेश को दूध पिलाना बुद्धिमत्ता तो नहीं कही जा सकती

है। आगे भी लोग दूध पिलाते रहेंगे वा पिलाने का प्रयत्न करते रहेंगे, लोग पिलायेंगे भी, परन्तु आर्यों को इस धूर्तलीला से बचना ही होगा। पृथक् रहना ही होगा। आर्य संगठन सत्य सिद्धान्तों पर आधारित है, स्वविवेक कार्य न करे तो संगठन के विवेक को मानना ही चाहिये, उसी के दिशानिर्देश के अनुसार कार्य करना चाहिये। तभी शर्मिन्दगी, निराशा, अपराध बोध, संगठन वा आर्यों की हानि से उपजे हुए पाप से बचा जा सकता है, ऋषि दयानन्द के समय में वा पश्चात् हजारों लोग ऐसे हुए हैं जिन्होनें आर्य समाज का बहुत अहित किया हैं, हम उन्हें रोक ही नहीं पाये, हम टूट वा बदनामी के डर से समझौते पर समझौते करते रहे और वे सिद्धान्त वा संगठन की हानि पर हानि करते रहे, यह फूट रोग भी हमें आनुवंशिक में ही मिला है। हम अपने आर्यों में यह रोग पनपने नहीं देंगे, न पनपने देना चाहिये, इस रोग का समूल नाश करना ही चाहिए, लक्षण मात्र दृष्टिगोचर होते ही इसका विनाश आवश्यक है, अन्यथा रोगी को ही ले डूबेगा, यदि यह अधिक बढ़ गया है तो रोगी को ही पृथक् करना होगा अन्यथा संगठन ही रुग्ण होता रहेगा। आर्य दृढ़ रहेंगे, विवेकशील रहेंगे, सत्य-असत्य को विचारेंगे तो अन्य आचार्यों के सहाय्य से सत्य का बोध हो ही जायेगा, चाहे भ्रम वा झूठ के बादल में कितना ही सच को ढ़को, वह सत्य सूर्य चमकेगा ही और बादल को छिन्न-भिन्न कर सबको प्रकाशित करेगा और शीतरूपी निराशा वा झूठ को दूर करेगा, परन्तु इस हेतु धैर्य, सत्य की जिज्ञासा और अन्वेषण, संगठन पर विश्वास तथा ईश्वर की आज्ञा का पालन संगच्छध्वं, संवदध्वं करना ही होगा। यही एक मात्र फूट, विघटन, अलगाव, भटकाव, शोषण, स्वार्थसिद्धि, साम्प्रदायिक प्रवृत्ति, नास्तिकता वा विनाश को रोकने का उपाय है। ईश्वर पर विश्वास एवं ईश्वर की कृपा से संगठन के साथ-साथ चलने से ही हम हजारों वर्षों के इस आनुवंशिक रोग को मिटाकर समाज वा राष्ट्र की तरफ बढ़ सकते हैं अन्यथा आर्य ही बने रहना मुश्किल होगा। इसलिए आचार्य समूह का निर्णय मानना ही श्रेयस्कर वा उन्नति का साधन है। ऐसा भी न हो कि इतनी समस्याएँ आयेंगी तो

आर्यीकरण ही न किया जाए। **न हि दोषाः सन्तीति परिभाषा न कर्तव्या लक्षणं वा न प्रणेयम् । न हि भिक्षुकाः सन्तीति स्थाल्यो नाधि श्रीयन्ते न च मृगाः सन्तीति यवा नोप्यन्ते ॥** (**महाभाष्य** ४/१/१) 'दोष हैं' इसलिए परिभाषा नहीं करनी चाहिए अथवा लक्षण नहीं करना चाहिए, यह नहीं होता है। भिक्षुक हैं, इससे क्या बटलोई चूल्हे पर नहीं चढ़ाई जाती है (क्योंकि भिक्षा देनी पड़ेगी।) मृग हैं इसलिए जौ नहीं बोये जाते हैं (क्योंकि वे खा जायेंगे।) ऐसा नहीं होता है। इसी तरह समस्याएँ आयेंगी, दस्यु प्रवृत्ति वाले लोग भी आयेंगे तब भी आर्यीकरण करना ही होगा और समस्याओं को भी दूर करना होगा। दस्युओं को भी हटाते रहना होगा।

आर्य करोड़ों वर्षों तक चक्रवर्ती राज्य के अधिकारी थे, पराधीन नहीं हुये, क्या आर्य कभी पराधीन नहीं होते हैं? कौन से गुण थे जिनके कारण आर्य राज्य के अधिकारी थे? गुलाम कभी नहीं हुए, क्या यह शाश्वत नियम है कि आर्य गुलाम नहीं होते हैं? देखने में, सुनने में तो ऐसा नहीं आता है, इसलिए संशय हो रहा है। क्या आर्य का ऐसा स्वरूप आज भी सम्भव है?

अहम् भूमिम् अददाम् आर्याय। = **अहम् आर्याय भूमिम् अददाम्।**

मैं आर्य अर्थात् श्रेष्ठ, श्रमशील मनुष्य के लिए भूमि को देता हूँ। इस ईश्वर आज्ञा के अनुसार भूमि अर्थात् राज्य आर्यों के लिए ही होता है अर्थात् आर्य राज्य करने के लिए हैं, गुलाम बनने के लिए नहीं, इस आज्ञा को मानने वाला, पालन करने वाला गुलाम कैसे हो सकता है? भूमि पर ही राज्य होता है, भूमि आर्यों की है। करोड़ों वर्षों तक इस आज्ञा पालन के अनुसार आर्य शासन करते हुए चक्रवर्ती अर्थात् चारों तरफ राज्य करते रहे हैं। यह केवल भारत के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार के लिए है। यहाँ एक विशेषण ऋषि ने और दी है वह है श्रमशील। आलसी, प्रमादी, बहाने-बाज, शेखचिल्ली की तरह स्वप्न देखने वाले, ठग, दूसरे के कार्य

को अपना बताने वाले कपटी, दूसरे के श्रम को खाने वाले धूर्त, राज्य बर्बाद कर सकते हैं, बना नहीं सकते हैं, चला नहीं सकते हैं, यह घर, परिवार, संगठन में भी लागू होता है, ऐसे अपने को आर्य कहते, कहलवाते भर हैं, आर्य के भेष में दस्यु ही होते हैं। जब दस्यु ही आर्य हो, फिर विनाश में क्या सन्देह है? बिना पुरुषार्थ के राज्य नहीं बनाया जाता है, दो चार वर्ष के परिश्रम से भी राज्य नहीं बनता है, उसके लिए पुरुषार्थ करने का स्वभाव हो, वह श्रमशील हो, अनवरत मृत्युपर्यन्त पुरुषार्थ, यही तो स्वभाव होता है, स्वभाव छूटता नहीं है। श्रम का स्वभाव छूटा तो पराधीनता सम्मुख खड़ी मिलेगी, कोई दूसरा परिश्रमी न हो तो कुछ समय चल जाता है परन्तु दूसरा परिश्रमी आया तो आलसी, प्रमादी अर्थात् आर्य गुण से हीन आर्य नामधारी वा सामान्य जन पराधीन किये ही जाते हैं। पराधीन बना ही लिये जाते हैं, पराधीन हो ही जाते हैं। आर्य पराधीन क्यों नहीं होता है? आर्य के गुण ही उसको पराधीनता से बचाते हैं, आओ! इन गुणों को समझने का प्रयत्न करते हैं। आर्य वैदिक सिद्धान्तों को ग्रहण करने वाला ही होता है, वैदिक सिद्धान्त एक ही होते हैं, अनेक नहीं होते हैं, उनकी व्याख्या भी अलग-अलग सिद्धान्त नहीं बना सकती है, व्याख्या समझाने का तरीका अलग-अलग अच्छा, उससे अच्छा हो सकता है, सिद्धान्त को तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता है जैसे सगुण का अर्थ गुण सहित है, इस को सगुण स्वरूप की व्याख्या कर के साकार नहीं किया जा सकता है। निर्गुण का अर्थ गुण रहित है, इसकी व्याख्या कोई भी गुण नहीं करके, उसे शून्य वा निराकार नहीं किया जा सकता है। व्याख्या उस सिद्धान्त को समझाने के लिए होती है, नये सिद्धान्त वा झूठे सिद्धान्त गढ़ने के लिए नहीं होती है। इसलिए आर्य सिद्धान्त एक ही होते हैं, सभी आर्यों के लिए समान ही होते है, जैसे मूर्तिपूजा सभी के लिए निषिद्ध है, कोई व्याख्या करे कि जिसको सत्यासत्य कि समझ है यदि वह करे तो उसमें फँसेगा नहीं, मूढ़जन के लिए तो ईश्वर

को जानने की सीढ़ी है, परन्तु वह खाई है, उसमें फँस जायेगा। विद्वान् यदि करता है तो वह फँसेगा नहीं, इसलिए मूर्ति-पूजा कर सकता है, तो यह तर्क भ्रमजाल है, यह व्याख्या मूर्खता के अलावा क्या है? विद्वान् जब सत्यासत्य जानता है तो मूर्ति पूजा करेगा ही क्यों? यदि विद्वान् नहीं है तो खाई में गिरने से कौन रोक सकेगा? परन्तु सामान्य जन सोचने लगते हैं जैसे साम्प्रदायिक ग्रन्थ पढ़ने की अनुमति विद्वान् को रहती है, वह असत्य छोड़ सकता है, उसी तरह मूर्ति पूजा की भी अनुमति होगी, परन्तु ग्रन्थ पढ़ना और मूर्तिपूजना दोनों अलग-अलग कार्य हैं। वह मात्र पढ़कर खण्डन निमित्त विषय संग्रह कर रहा है, यहाँ वह मूर्ति पूजा कर रहा है, चाहे उसे भगवान माने वा नहीं, मानता है तो विद्वान् नहीं, नहीं मान कर भी पूजा कर रहा है तो धूर्त, स्वार्थी, ठग और कपटी के अलावा और क्या हो सकता है? लोग भी कितने भोले होते हैं, उनको तर्क सिखलाया जाता है कि अभी कर रहे हैं, आगे जाकर छोड़ देंगे, अगर नहीं करेंगे तो व्यापार का नुकसान हो जायेगा, नहीं करेंगे तो जीतेगें कैसे? राजनीति में सबको करना पड़ता है और वह भोला-भाला मानस इनकी बातों में आ जाता है और इनके संग लग आर्य धर्म को खोकर इन के गुट में ही हो जाता है, इस तरह के अनेकों तर्क, प्रमाण, मजबूरी, नीति बताये जाते हैं और बहकाये जाते हैं। लोग भी अविद्या और स्वार्थ के कारण इनके समर्थक हो आर्य जन का नुकसान करते हैं। स्वयं तो खाई में कूदते ही कूदते हैं, आर्य जनता में भ्रम पैदा कर देते हैं तो जो अनुकरण मात्र कर रहा है, उस का बड़ा अहित हो जाता है, स्वार्थपूर्ति करने की सामर्थ्य इनमें अधिक होती है, आर्य जन जब तक राज्य व्यवस्था को नहीं संभालते है तब तक इनमें सिद्धान्त की दृढ़ता सर्वाधिक होती है, हितपूर्ति की सामर्थ्य कम ही होती है। 'आर्य सिद्धान्त एक होते है तो कहीं पर भी आर्य होंवें, वे एक ही होते हैं' उनमें सहोदरभाई से भी अधिक आदर, सहयोग, स्नेह और विश्वास होगा। आर्य ईश्वर को जानते, मानते

और ग्रहण करते हैं तो सर्वज्ञ, चेतन, एक, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी की छत्रछाया में परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, विश्वासघात, वैर, विरोध को त्याग संगठित रहेंगे। वे वेद की आज्ञा संगच्छध्वं को मानते हैं, तो संगठित ही रहेंगे। संगठित रहने पर सामूहिक सामर्थ्य उत्पन्न होता है, इन्हीं से कुल और राज्य बनते हैं, ईश्वर को मानने के कारण उनमें परस्पर विश्वास, त्याग, बलिदान, सहयोग रहता है, जो इनमें आर्य भेषधारी दस्यु होते हैं, जिनको अकेले पहचानना, पृथक् करना कठिन होता है, परन्तु संगठन की संयुक्त सामर्थ्य से यह पहचान भी होती रहती है और उन्हें अलग भी करते रहना पड़ता है, ये लोग नये-नये रूप बनाकर आते रहते हैं; छिद्र ढूंढकर, छिद्रों का सृजनकर, उन्हें बरगलाकर धोखा देते रहते हैं, जो आर्य इनके झांसे में आ जाते हैं, उनका भी अति नुकसान करते हैं, अपना तो करते ही करते हैं, बिना संगठित रहे, इनसे छुटकारा होना सम्भव नहीं है। आर्य संगठित रहता है, इसलिए फूट, वैमनस्य, वैर के अभाव में कौन इन्हें पराजित कर सकता है? यदि शत्रुपक्ष प्रबल है तो हार जायेंगे ही जायेंगे, चमत्कार नहीं बचाता है, पराजित होना ही पड़ता है, परन्तु आर्य सिद्धान्तवादी होते हैं; हारने के उपरान्त भी हार नहीं मानते हैं, पुनः संगठित हो, सामर्थ्य बढ़ा संघर्ष करते हैं और इनमें चाहे जितनी बार यह हो, अन्ततः जीतते ही जीतते हैं और ऐसी व्यवस्था करते हैं कि अल्प सामर्थ्य के कारण आगे पराधीन न होना पड़े, सामर्थ्य की वृद्धि करते हैं। 'आर्य सामर्थ्यशाली ही होते हैं,' छली, कपटी, विश्वासघाती नहीं होते हैं। मध्य काल में यवनों, मुगलों, अंग्रेजों से पराधीन होने पर लाखों ने उनकी वृत्ति स्वीकार करके उनके तरफ से अपने ही लोगों के रक्त बहाये, लाखों लोगों ने उन आततायियों के मत को स्वीकार किया, जो आज करोड़ों में है। कुछ मुठ्ठी भर देशभक्त लोग लड़ते रहे, कटते रहे, मरते रहे, स्वाधीनता की अग्नि हृदय में जलाये रखी, छोटे-मोटे राज्य बनाये, लड़े फिर मरे और फिर

अधीनता स्वीकार की, इसका कारण इतिहास उठाकर देखिए तो ज्ञात होगा कि आर्य सिद्धान्त, आर्य संस्कृति, आर्यहित प्रायः लुप्तप्राय था, हम संगठित थे ही नहीं, कोई आजादी के लिए लड़ रहा है तो मुगल को प्रतिनिधि बना रहा है, कोई उसके नाम से इकट्ठा होकर लड़ रहा है, उन्नीसवीं शताब्दी की परिस्थितियाँ, वैश्विक जन मानस, आततायियों के अत्याचार, शोषण की अतिवादिता और हजारों किलोमीटर दूर से प्रशासन चलाने की विवशता के कारण हमें शासन सौंपा गया, कोई आर्य एक विचारधारा से अनुप्राणित हो संगठित होकर आततायियों को भगाकर स्वाधीन कराया गया हो, ऐसा नहीं है। आर्य कभी भी विधर्मी नहीं बनता है, आर्य कभी भी पराधीनता नहीं स्वीकार करता है क्योंकि वह आत्मा और पुनर्जन्म को मानता है, वह अमर है, मर ही नहीं सकता, कोई मार भी नहीं सकता है, दूसरा शरीर फिर मिलेगा, वह संघर्ष पर संघर्ष करता है, बलिदान देता है तब आर्य कहाता है। एक आर्य भी जीवित रहता है तो वह आर्य विद्या से अन्य आर्यों को जन्म देता है, उन्हें संगठित करता है, रखता है और फिर लड़ता है, तब तक यह उपक्रम करता रहता है, जब तक वह जीत न जाय, आर्य पीढ़ी पर पीढ़ी बलिदान देकर संघर्ष करता है, ऐसे दुर्धर्ष आर्य को कौन और कब तक पराधीन रख सकता है, कुछ आर्य वेशधारी दस्यु इन सिद्धान्तों को जान जनता को बरगला कर धन ऐंठ सकते हैं, गुट बना सकते हैं, स्वार्थ पूर्ति कर सकते हैं और करेंगे, ऐसे लोग आर्यों में घुसकर आर्यों का ही विनाश करते हैं, उनमें ही परस्पर फूट, अविश्वास, संशय, भ्रम और किंकर्त्तव्यविमूढ़ता उत्पन्न करते रहते हैं, पहले भी किया है, ऐसे लोगों को पहचान कर अलग भी करते रहना चाहिये, इस अति आत्मविश्वास में नहीं रहना चाहिये कि आर्य में तो होंगे ही नहीं, इसका तात्पर्य सभी को शंकालु हो नहीं देखना चाहिए, परन्तु प्रवृत्ति देखते ही सतर्क हो उसे अलग करना चाहिए, अकेले की सामर्थ्य प्रायः कम होती है तो संगठन का सहयोग लेकर ऐसे विनाशक

विधर्मियों, स्वार्थियों, फूट डालने हारों को पृथक् करना ही चाहिए, हमेशा इन परिस्थितियों में संशय में न पड़कर केन्द्रीय संगठन के साथ ही होना चाहिये, केन्द्रीय संगठन के साथ ही चलना चाहिये पहले भी आर्य इन नियमों का पालन करते थे और निर्माण कर पाते थे। अन्यथा व्यक्तिवादी बन अलग-अलग गुट में विभक्त होकर फूट का शिकार हो खण्ड-बण्ड हो जाते थे, फिर पछताने से कुछ नहीं होता है, संभलने में शताब्दियाँ लग जाती हैं, सफल होने में भी यही स्थिति है, इस लिए हमेशा दृढ़, सतर्क, संघर्षशील, संगठित और सिद्धान्तवादी ही होना चाहिए। आर्य कभी भी गुलाम नहीं होता है, आर्य मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक, आर्थिक और सामाजिक बल से सम्पन्न होता है, वह कभी भी मनमुखी, उच्छृंखल, वा स्वच्छन्द नहीं होता है अपितु संगठित रहता है, जैसे उसका घर, परिवार उसी तरह अपितु उससे बढ़कर आर्यों का संगठन होता है। आर्यों का संगठन एक बृहद् आर्य परिवार का ही स्वरूप तो है, जो आर्य अभ्युदय के लिए सबकी सम्मिलित सामर्थ्य और बुद्धिबल से संघर्ष करता है। हाँ यदि आर्य संख्या बल में, सामर्थ्य में कम हैं और शत्रुपक्ष बहुत है, प्रबल है, तो निश्चित पराजय हो सकती है, शेख चिल्ली की तरह स्वप्न देखने और सोचने मात्र से कि हम कभी हार ही नहीं सकते, यह नहीं होता है।

परन्तु पराजय होने पर भी 'आर्य, और आर्यों को बनाता है, सामर्थ्य बढ़ाता है, फिर संघर्ष करता है और जीतता है। यही सुनिश्चितता है, आर्य सिद्धान्त, आर्य संगठन और अनवरत संघर्ष ही हमें विजय दिलाता है। आर्य को अधिक समय तक पराधीन नहीं रखा जा सकता है। आर्य को ही समस्त भूमि-पृथ्वी दी गयी है, ये ही इसके नैसर्गिक उत्तराधिकारी हैं। करोड़ों वर्षों तक राज्य करने का मूल मन्त्र यही है और आर्य फिर बन रहे हैं, आर्य फिर बढ़ रहे हैं, आओ! संगठित होवें, बलिदानी बनें, संघर्ष पर संघर्ष करें और स्वराज्य

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो ऽराव्णः॥
सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः। इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः॥

-ऋग्वेद ९/६३/५,६

इन्द्रम्। वर्धन्तः। अप्ऽतुरः। कृण्वन्तः। विश्वम्। आर्यम्। अपऽघ्नन्तः। अराव्णः॥

सुताः। अनु। स्वम्। आ। रजः। अभि। अर्षन्ति। बभ्रवः। इन्द्रम्। गच्छन्तः। इन्दवः॥

अन्वयः- इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः, विश्वमार्यम् कृण्वन्तः बभ्रवः अराव्णः अपघ्नन्तः सुताः, इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः स्वम् रजः अनु आ अभ्यर्षन्ति।

पदार्थः - (इन्द्रम्) समर्थं युवानं। बालकं वा इन्द्रियस्वामिनं जीवं, इन्द्र इति पदनामसु पठितम् (निघण्टु ५/४) अनेन गन्ता प्रापको विद्वान् जीवो गृह्यते, सर्वैश्वर्यप्राप्तिर्हेतोर्वा, इन्द्रियाद्यैश्वर्ययुक्तभोजको वा, योगैश्वर्यमिच्छुकोर्वा, ऋजेन्द्रा० इति उणादिसूत्रे निपात्यते। (वर्धन्तः) वर्धयन्तः इत्यर्थः व्यत्ययेन धातोश्शतृ। (अप्तुरः) प्रजाः, आप्नोति व्याप्नोति सर्वान् पदार्थान् इति विग्रहे आप्लृ व्याप्तौ इत्यस्मात् आप्नोतेर्ह्रस्वश्च, तु प्रत्ययः, धातोर्ह्रस्वश्च, प्रजा वा अप्तुरित्याहु -गोपथ०उ० ५/९, (कृण्वन्तः) कुर्वन्तः, व्यत्ययेन श्नु। (विश्वम्) सर्वम्, विश्वम् सर्वम्। निघण्टु ३/२२, यद्वै विश्वं सर्वं तत्। -श० ३/१/२/११, (आर्यम्) -श्रेष्ठम्, सकलशुभगुणकर्मस्वभावेषु वर्त्तमानम् जनम्, सर्वोपकारकं मनुष्यम्, ईश्वरस्य पुत्रवद्वर्तमानम्, विद्याधर्मसामर्थ्ययुक्तम्, आर्यसिद्धान्तसम्पन्नजनम्। ऋ गति प्रापणयोः धातोर्ण्यत् प्रत्ययः, अर्य इति ईश्वरनामसु पठितम् (निघण्टु २/२२) तस्येदम्, इत्यण्। (अपघ्नन्तः)- हिंसन्तः, हन हिंसागत्योः इति, (अराव्णः)- अदन् शीलान् अनार्यान् दस्यून् वा दुष्टमनुष्यान्, राति ददाति स रावा, न रावा अरावा तान् कृपणानदनशीलान्, अधार्मिकान्

मनुष्यान् अयं शब्दार्थः पाहि नो अग्ने इति मन्त्रेऽपि द्रष्टव्यः। (सुताः)- षु-प्रसवैश्वर्ययोः इत्यनेन, निष्पादिताः जनाः, आर्याः वा (अनु) पश्चात् (स्वम्) स्वकीयम् (आ) समन्तात्, सर्वतः (रजः) लोकं स्थानं वा भूरञ्जिभ्यां कित् इत्यनेनासुन् किच्च। इमे वै लोका रजांसि (शत० ६/३/१/१८) (अभि) अभितः अर्षन्ति प्राप्नुवन्ति ऋषि गतौ अत्रविकरणव्ययत्येन शप्। (बभ्रव) सत्य धारकाः अध्यापकोपदेशकाः, विद्वांसः, आचार्याः वा डुभृञ् धारणपोषणयोः इत्यस्मात् कुर्भ्रश्च इति सूत्रेण कुप्रत्ययो द्वित्वं च। बिभर्ति सर्वमिति। अयमर्थः अरं मा.... ऋ० ४/३२/२४ मन्त्रेऽपिद्रष्टव्यः (इन्द्रम्)- राजानम्, इन्द्रः क्षत्रम्। श० १०/४/२/५ ऐन्द्रो वै राजन्यः। तै० ३/८/२३/२ इन्द्रो वै राजन्यः। तै० ब्रा० ३/८/२३/२ (गच्छन्तः) प्राप्नुवन्तः (इन्दवः) उनत्ति आर्द्रीं करोति पदार्थानिति विद्यया कर्मणा वा आर्द्रीभूताः मनुष्याः ऐश्वर्ययुक्ताः आर्याः वा। सोमो वै राजेन्दु। ऐ०ब्रा० १/२९, इन्दुरिन्धतेरुनत्तेर्वा निरुक्त १०/४१, उन्देरिच्चादेः उणादि सूत्रेण उ प्रत्यय आदेश्चेकादेशः। सोमो वा इन्दुः। शत० २/२/३/२३, इन्दुरिति यज्ञनामसु पठितम्। निघण्टु ३/१७, अयं शब्दः ऋ० ७/३१/९ मन्त्रे व्याख्यातः ॥

अन्वय :- यदा अप्तुरः प्रजाः समर्थयुवानं विद्यया वर्धयन्तः, बभ्रवः आचार्याः तं सकलञ्च आर्यम् कुर्वन्तः, विद्यया कर्मणा च सम्पन्नाः द्विजातयः सुताः आर्याः दस्यून् अपघ्नन्तः, ऐश्वर्येण सम्पन्नाः आर्याः इन्द्रं राजानं प्राप्नुवन्ति, तदैव स्वकीयं लोकं राष्ट्रं वा आसमन्तात् अनुगच्छन्ति।

व्याख्याः- इन दोनों मन्त्रों में आर्य निर्माण और उसका कार्य क्या हो तथा उसका परिणाम क्या होगा? साथ ही साथ उस कार्य का लक्ष्य क्या हो? यह भी कहा गया है। हम सर्वप्रथम लक्ष्य निर्धारित करें कि हमें यह कार्य किसलिए करना है, फिर उसके प्रमुख संसाधन क्या हैं, उसका निर्णय करें अथवा इसे इस रूप में समझ सकते हैं कि आर्य बनायेंगें तो किसको

बनायें, ये क्या करेंगे और फिर उपलब्धि क्या होगी? इन मन्त्रों का सामाजिक विधा में यही अर्थ होगा, मन्त्रों का भिन्न विधा में तो अलग अर्थ हो सकता है, परन्तु एक ही विधा में अलग-अलग अर्थ नहीं होते हैं। एक ही शब्द के प्रभाव रूप में दो-तीन अर्थ तो हो सकते हैं जैसे विद्या प्राप्ति को बुद्धि वर्धक के रूप में और ऐश्वर्य के रूप में भी लिया जा सकता है, इसमें संशय नहीं करना चाहिये। यह केवल इसलिए कहा गया है कि कोई यह न समझे कि एक ही मन्त्र के भिन्न-भिन्न और अनगिनत अर्थ हो सकते हैं, अर्थ करने की प्रणाली भी शास्त्र जैसे निरुक्त आदि ने निर्धारित की हुई है, यह केवल कपोल-कल्पना, अनुमान वा तुकबन्दी से नहीं की जा सकती है। व्याकरण, निरुक्त, कल्प, दर्शन और ब्राह्मण ग्रन्थों के विद्वान् थोड़ा परिश्रम करें तो यह रहस्य उन्हें समझ आ जायेगा और सत्यार्थ कर सकेंगे, अन्यथा काल्पनिक अर्थ के अलावा कुछ हाथ न लगेगा। आइये मन्त्रार्थ देखते हैं- हमने लक्ष्य बना लिया कि आर्यावर्त्त बनाना है तो क्या करें? वह यहाँ रजः शब्द से है जिसका अर्थ लोक होता है, हमने लक्ष्य बना लिया कि हमें आर्य बनाना है तो इससे क्या होगा? इसके लिए स्वं रजः अर्थात् अपना लोक अर्थात् अपना राज्य जिसे स्वराज्य भी कहेंगे, है, तब इसके लिए उपाय क्या होंगे? वह आर्य है। आर्य कौन बन पायेगा? कौन बना पायेगा? अप्तुः अर्थात् प्रजा जो हित-अहित समझता है, जो जानता है कि उसका, समाज का हित किसमें है, वही प्रयत्न करता है, वह जानता है कि जब तक आर्य नहीं बनेगें तब तक हम जीवन के उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकते हैं, यदि इसे व्यक्तिगत भी जीवन लक्ष्य चाहिये तो ऐसा वातावरण-परिस्थिति चाहिए कि वह उपासना आदि करते हुये जीवन यापन करके मोक्ष को प्राप्त कर सके तो उसे आर्य राज्य चाहिये, वह जानता है कि सबसे बड़ा साधन आर्य राज्य है तो उसके लिये वह प्रयत्न करता है तब वेद मन्त्र उसे प्रकाशित करता है कि समर्थ युवा वा बालक ढूँढे, जिसकी विद्या बढ़ाई जा

सके, समर्थ नहीं होगा तो विद्या ग्रहण नहीं कर पायेगा। बालक गुरुकुल में विद्या वृद्धि हेतु पढ़ेंगे, परन्तु जब परिस्थितियाँ वर्तमान काल जैसी हों तो युवाओं को पढ़ाना ही पड़ता है, इसीलिये यहाँ इन्द्र शब्द है, समर्थ है उसे; जो विद्या ग्रहण करने में ही असमर्थ हो, उसे पढ़ाना, पढ़ने के लिये लाना दोनों व्यर्थ हैं, इसीलिये निरुक्तकार ने कहा है कि

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम, गोपाय मां शेवधिष्टे हमस्मि,
असूयकायानृजवेयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्॥

प्रजा ने निश्चय किया है कि इस समर्थ बालक वा युवा की विद्या बढ़ानी है, यहाँ यह भी ध्यान रहे कि यह एक ही बार करके लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होगी अपितु शतृ प्रत्ययान्त अनवरत क्रिया का द्योतक है अर्थात् हमेशा योग्य बालक को विद्या वृद्धि के लिये लाते रहना होगा, सैंकड़ो, हजारों, लाखों, करोड़ों को- केवल संख्या में ही नहीं अपितु काल में भी- आज, कल, परसों .... आगे भी, लायेगा भी कौन? जनता नहीं! वह हित-अहित नहीं पहचानती है वह तो केवल भीड़ होती है। प्रजा ही ऐसा कर सकती है। यदि प्रजा नहीं है तो यह उपक्रम शुरु ही नहीं होगा। शुरु होने पर यह बन्द नहीं होना चाहिये। प्रजा को ऐसे युवा वा बालक की योग्यता बढ़ाने का प्रयत्न करना ही चाहिये, तब उसे विद्या कौन देगा? उसकी योग्यता कौन बढ़ायेगा? बभ्रु कहते हैं विद्वान् को, आचार्य को, अध्यापक को, उपदेशक को, बिना इनके भी उनकी उन्नति नहीं की जा सकती है। आचार्य उन्हें विद्या देता है, श्रेष्ठ बनाता है, तब उसे आर्य कहते हैं। क्या केवल एक को ही आर्य बनाये तो कार्य हो सकता है? नहीं हो सकता है, इसके लिये ही विश्वम् कहा गया है अर्थात् सभी को आर्य बनाओ। वह मनुष्यमात्र को आर्य बनाने का प्रयत्न करता है, लक्ष्य रखता है, तो वैसे ही आर्य बन जायेंगे, नहीं प्रजा उनमें से भी योग्य का चयन करके विद्या ग्रहण कराने के लिये लाती है, तब वह आर्य बना पाता है। क्या एक

बार बना दिया बस? नहीं, यहाँ भी अनवरत कार्य है, लगातार बनाना ही पड़ता है अर्थात् लाखों, करोड़ों को और अगले दिन, मास, वर्ष में, यहाँ भी वही प्रत्यय है। यदि लाना अनवरत है तो बनाना भी अनवरत ही होना चाहिये, नहीं तो एक भी रुका तो दोनों निरर्थक हो जायेंगे। इसलिये इसमें कभी विराम वा विश्राम नहीं है। एक-एक को छाँटकर लाना है। परन्तु प्रजा है बहुत तो बनाने में विश्वम् है अर्थात् सभी को बनाना है, एक को ही दूसरी बार ले आया तो उसे भी बनाना पड़ेगा, इसलिये भी विश्वम् है। जब आर्य बन गये तो वे करेंगे क्या? आर्य बनने के साथ आर्य जीवन का लक्ष्य पता ही चल जाता है तो उसमें आने वाली सबसे बड़ी जो कठिनाई है, उसको दूर करना जरूरी है, जो आपके कार्य को, उपलब्धि को, समृद्धि, विचारधारा को, संगठन को सर्वाधिक नुकसान पहुँचाते हैं; उन्हें ही अरावा कहा गया है, इसी को हम दस्यु भी कहते हैं, जो बिना कुछ किये ही छल, कपट, विश्वासघात, कुटिलता, विरोध और धूर्तता से सब कुछ हथिया लेना चाहते हैं, इनको ठग भी कहते हैं इन्हें बिना हटाये, इन्हें बिना रोके, इनका बिना विनाश किये, आर्य आगे बढ़ नहीं सकते हैं, ये दीमक वा ऊदबिलाव की भाँति सारा पुरुषार्थ हड़प कर जाते हैं, चट कर जाते हैं, परिश्रम आर्य करे और फल दस्यु भोगे तो उन्नति तो यहीं तक रह गयी, इसीलिए कहा गया है कि जो आर्य बनें, उनमें जो बुद्धि तथा बल के ऐश्वर्य से अधिक सामर्थ्य हो, उनको सुत कहा गया है, ये बनाये जाते हैं, निष्पादित किये जाते हैं, सामान्यतः तो सभी आर्य सुत कहे ही जाते हैं, यहाँ सुत का अर्थ लौकिक पुत्र नहीं है अपितु सामर्थ्यशाली आर्य है, जिनका बड़े परिश्रम से निर्माण किया गया है। लोक में यहीं से पुत्र अर्थ में चला गया होगा क्योंकि 'विद्यायोनि सम्बन्धेभ्यः' इत्यादि सूत्रों से निश्चित है ही कि विद्या से भी पुत्र बनता ही है। सुत आर्य इन दस्युओं का संहार करें अर्थात् विनाश करें, क्या एक ही आर्य ऐसा कर सकता है तो यहाँ सुताः बहुत्व में है अर्थात् बहुत से

* समाप्ति / अंत

समर्थ आर्य ही दस्यु का संहार कर सकते हैं, क्या एक ही दस्यु होता है? नहीं, अनेकों होते हैं, यहाँ ये बहुत्व में है, तभी कहा गया है अराव्णः अर्थात् अनेकों दस्युओं को विनाश करते हुए, यदि हम बौद्धों की भाँति दया दिखायेगें तो विद्या, धन, बल, राज्य सभी कुछ खो देंगे, ये विधर्मी, दस्यु सब कुछ छीन लेगें और इतिहास में देखें तो पायेंगे कि यही हुआ है। क्या एक बार इन्हें हटा दिया वा संहार कर दिया तो इतिश्री हो गयी? नहीं, यहाँ भी अनवरत क्रिया है अपघ्नन्तः अर्थात् ऐसे दस्यु उत्पन्न होते रहेंगे वा बाहर से आते रहेंगे और हमें उनका संहार करते रहना होगा, हम निश्चिंत होकर नहीं बैठ सकते हैं, निश्चिंत हुए नहीं कि दीमक की भाँति ये अरावा-दस्यु हमारा धर्म, विद्या, धन, राज्य सब कुछ चट कर जायेंगे और हम डरावा मात्र रह जायेंगे, इसलिए आर्यों को दस्युओं का संहार हमेशा करते रहना होगा, भीतर के दस्यु वा बाहर के दस्युओं में से छोड़ना किसी को भी नहीं है। प्रजा आर्य बनाने के लिए आती है, आचार्य आर्य बनाते हैं, तब आर्य अरावों का संहार करते रहता है अर्थात् इसे शब्दों में कहें तो आनयन, निर्माण और संहार यह होता रहता है। करते ही रहना पड़ता है। तब सामर्थ्य बनती है, अर्थात् आर्य सामर्थ्यशाली होते हैं, सामर्थ्य दोनों रूप में है- संख्या और समृद्धि अर्थात् बल में। दस्युओं, अरावों, अधार्मिकों, दुष्टों के होते हुए सामर्थ्य बन ही नहीं पाता है, इतने संहार के बाद आर्य सामर्थ्यशाली हो जाते हैं, तब इन्हें इन्दु कहा जाता है और ये अनेकों होते हैं तभी यहाँ इन्दवः पद बहुवचन में है, अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता है इस का मतलब हुआ कि अनेकों चने जब फूटते है तो भाड़ भी टूट जाते हैं, इसलिए कोई आर्य सोचे कि मैं तो अकेला ही भतेरा हूँ, संगठन की क्या जरूरत है? तो वह मरता ही मरता है। सामर्थ्यशाली आर्यगण तब अपना राजा चुनते हैं, जो राज्य व्यवस्था में आर्यों के हित की पूर्ति कर सके, यहाँ नेता मात्र के लिए नहीं कहा है अपितु अनेकों नेताओं में से जो सबसे समर्थ और योग्य हो, उसको

यहाँ इन्द्र कहा गया है और वह एक ही होता है, अनेकों नहीं होते हैं, इसलिए यहाँ इन्द्र पद कर्म के एकवचन में ही है, बिना इस तरह की योग्यता के प्रगति नहीं हो सकती है, क्या एक बार-चुन लिया, तब वंश परम्परा शुरु वा हमारे कार्य की इतिश्री हो गयी? नहीं, यहाँ भी शतृप्रत्ययान्त अनवरत कार्य है अर्थात् उसे योग्य होना ही चाहिए, योग्य रहना ही चाहिए, अयोग्य हो गया तो हटाओ, उस स्थान पर पुनः योग्य को स्थापित करो, उसके अभाव में योग्य को ही जो इन्द्र हो उसे स्थापित करो, यह भी लगातार करना ही पड़ेगा चाहे वह २, ५, १०, ५० वर्ष में ही क्यों न हो, अर्थात् योग्य है तो अनेकों वर्षों तक उस स्थान पर रहे, उसके बाद फिर योग्य को ही उसके स्थान में नियुक्त करना पड़ेगा, सृष्टि लम्बी है, इसीलिए यहाँ भी लगातार वाली क्रिया है। यहाँ इन्द्र शब्द दो बार आया है, प्रथम सामर्थ्य बनाना है जिसका उसके लिए; क्योंकि बिना सक्षम को क्या सिखायेंगे, पढ़ायेंगे, द्वितीय सामर्थ्यशाली के लिए जो आर्यों में अर्थात् इन्दु संज्ञक आर्यों में भी श्रेष्ठ हो, योग्य हो उसके लिए इन्द्र शब्द आया है, ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इसी प्रकार का वर्णन किया गया है। राजा की प्राप्ति के बाद ही राष्ट्र आता है लोग सोचते हैं कि राष्ट्र बनने के बाद राजा बनाते हैं अपितु सत्य यह है कि राजा अर्थात् सक्षम नेतृत्व वाला आर्य ही राष्ट्र बनाता है, नहीं तो संघर्ष कौन करेगा, संघर्ष को एक दिशा में लोक निर्माण की दिशा में वही तो ले जायेगा। तब वह इन्द्र रूपी आर्य ही लाखों-करोड़ों आर्य के साथ लोक प्राप्त करता है, राष्ट्र का निर्माण करता है, आर्यावर्त बनाता है, कैसा लोक? अपना, क्षणभंगुर, अन्य का? वह अपना राज्य अर्थात् स्वराज्य प्राप्त करता है, आ समन्तात् अर्थात् अच्छी तरह से, इसको इस रूप में समझें कि संख्या आर्यजन की हो न, आर्य समाज हो न, तो वह व्यवस्था किसके लिए और क्या करेगा अर्थात् व्यवस्था तो समाज-परिवार-व्यक्ति की उन्नति के लिए होती है, यहाँ पूरा वर्ग ही अलग है जैसा है तब वैसा

करेगा अर्थात् बकरीद पर बकरे की व्यवस्था वा घर-घर शराब (लॉकडाऊन में होम डिलिवरी) पहुँचाने की व्यवस्था करेगा। ऐसी सैकड़ों प्रत्यक्ष का अप्रत्यक्ष व्यवस्थाएँ होती है। इसीलिए पहले आर्य हेतु सक्षम व्यक्ति का संचय, आर्य का निर्माण, दस्यु का संहार एवं सामर्थ्यशाली योग्य का नेता बनना, तब राज्य बनता है। तब व्यवस्था किसकी करेगा? आर्यों की, आर्य परिवारों की, आर्य समाजों की करेगा। क्या करेगा? आर्यों के सिद्धान्त के अनुसार उनके जीवन-यापन और उनके जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सभी उपाय करेगा। यह तभी सम्भव है जब प्रजा और शासक दोनों आर्य हैं। राजा तो स्वराज्य प्राप्त करता है परन्तु यह केवल अकेले का ही नहीं है, अपितु प्रजाजनों का है, इसलिए क्रिया पद अभ्यर्षन्ति बहुवचन में है, हमने राज्य व्यवस्था के लिए राजा का चयन किया, राष्ट्र तो सभी का है, इस तरह के राष्ट्र को ही आर्यावर्त्त कहते हैं। ऐसी प्रजा और राजा अपने चतुर्दिक विधर्मियों, दुष्टों और अरावों का संहार करती रहती है, उन्हें भी आर्य बनाती रहती है और राष्ट्र को दस्युविहीन तथा विरोधीहीन कर देती है, तो यही चक्रवर्ती राज्य कहलाता है, सुदूर कहीं विधर्मी राज्य हो तो हो, अपने चारों तरफ मुख्यतः पड़ोसी राज्य ऐसा न हो, वह भी धीरे-धीरे एक आर्यत्व में ही सम्मिलित होना चाहिए, अर्थात् वह भी आर्यावर्त ही होना चाहिए, इसलिए यहाँ रजः एक वचन में है, बहुत्व में नहीं है और स्वाभाविक भी है जब वहाँ आर्य ही होंगे तो उसके आर्यावर्त्त होने में क्या सन्देह है? एक भी आर्य है तो वह उम्मीद, आशा और विश्वास कभी नहीं छोड़ता है कि वह अपना स्वराज्य नहीं प्राप्त कर पायेगा, अपितु वह स्वराज्य स्थापना के लिए हजारों बार प्रयास करता है, असफल रहता है, पुनः हजारों बार प्रयत्न करता है और करेगा, हर बार अपनी त्रुटियों को दूर करते हुए अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ेगा, इसलिए आर्य कभी भी निराशावादी, हतोत्साहित और किंकर्त्तव्यविमूढ़ नहीं होता है परन्तु वह निरर्थक,

सिद्धान्तविहीन, स्वनिर्मित सिद्धान्त वा स्वतन्त्र विधा से कार्य नहीं करता है अन्यथा यदा कदा स्वार्थ पूर्ति तो हो जायेगी परन्तु लक्ष्य कभी सम्भव ही नहीं होगा।

सिद्धान्तानुसार अब आर्यमात्र को प्रक्रिया यही अपनानी पड़ेगी कि प्रथम करोड़ों आर्यों का निर्माण, परिवारों एवं समाजों का निर्माण और विरोधियों, दस्युओं का संहार अर्थात् या तो उन्हें श्रेष्ठ बनाओ वा विनाश करो। एक सक्षम नेतृत्वशाली आर्य के मार्गदर्शन में राज्य के लिए संघर्ष और स्वराज्य की स्थापना अर्थात् आर्यावर्त्त की स्थापना करे। इसका द्वार एक ही है और वह अनवरत आर्यों का निर्माण है। आर्य एक दूसरे आर्य से कभी भी छल, कपट, ईर्ष्या, द्वेष, विश्वासघात, वैर, विरोध, ठगी, कुटिलता और धूर्तता नहीं करता है, वह एक होता है। एक सिद्धान्त होने के कारण सहोदर भाइयों से भी अधिक विश्वसनीय और सहयोगी होता है। सर्वदा संगठित रहता है। तभी लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है। यही आर्यावर्त्त की प्राप्ति का मूलमन्त्र है।

(<u>जय आर्य - जय आर्यावर्त</u>)

॥ ओ३म् ॥

विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

आर्या

प्रकाशक : राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा
आर्य समाज भवन, शिवाजी कॉलोनी, रोहतक, हरियाणा